

BHAVAN'S LIBRARY

This book is valuable and
NOT to be **ISSUED**
out of the Library
without Special Permission

श्रीमाध्वगौडेश्वरग्रन्थमाला-२६।३३ ॥

• श्रीश्रीगौरांगमठाप्रमुर्जयति •

ग्रन्थरत्नपञ्चकम्

- | | |
|------------------------------|----------------------------|
| (१) श्रीराधाकृष्णगणेशदीपिका, | (२) श्रीकृष्णलीलास्तवः, |
| (३) श्रीगौरगणेशदीपिका, | (४) श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुमः, |
| (५) श्रीब्रजविलासस्तवः | |

क्रमतः
ग्रन्थरचयितारः

- | | |
|---------------------------------|--------------------------------|
| (१) श्रीश्रीमद्रूपगोस्वामीपादः, | (२) श्रीश्रीमनातनगोस्वामीपादः, |
| (३) श्रीकविकर्णपूरमहोदयः, | (४) श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिजी, |
| (५) श्रीमद्वरधुनाथदासगोस्वामीजी | |

अर्थसहायकः-

श्रीमुरलीधर आइदान, कलकत्ता ।

Sal/VV
RUP

अनुवादक तथा प्रकाशकः-

कृष्णदास,

कुसुमसरोवरवाले ।

प्रथमावृत्ति
१००० }

शुभसमय-श्रीअक्षयतृतीया
सम्बत् २०११

{ नौछावर
१॥)

सर्वाधिकारसुरक्षित है ।

कृतज्ञतास्वीकार



[१] बीकानेर के सेठ, कलकत्तानिवासी, गौरगनजीवन, श्रीमान् हनुमानदास जी राठी तथा श्रीमान् गोपालदास जी । आप दोनों की हार्दिक सोहाव्रता और परम आग्रहता से हम इस ग्रन्थ-रत्नपञ्चक के प्रकाशन में समर्थ हुए ।

[२] श्रीमान् मुरलीधरआइदान जी । आप ने इन ग्रन्थों का प्रकाशन में सम्पूर्ण अर्थ सहायता देकर चिरवाचित किया ।

[३] श्रीहरिदासदासजी महोदय । आप प्राचीन गोस्वामि-आचार्यों के द्वारा विरचित अनेक (लगभग शताधिक) ग्रन्थों के प्रकाशक हैं । आप ने “श्रीकृष्णलीलास्तव” का निजकृत टीका तथा पगानुवाद के साथ प्रथम बार प्रकाशन किया है ।

[४] भीयुक्त परमपूज्य गोस्वामी रासबिहारी जी शास्त्री । आप ने गौरगणोद्देशदीपिका, संकल्पकल्पद्रुम तथा व्रजविलासमन्वय का अनुवाद संशोधन कार्य में सहाय देकर परम उपकार किया ।

[५] पं० श्रीनारायणदेव कौशिक जी, मथुरा गौघाट के निवासी । आप ने श्रीकृष्णलीलास्तव तथा राधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के अनुवाद संशोधन कार्य में सहायता दी ।

[६] श्रीगुरु-गौरांगगण—जिन की कृपाश्रितता से हम इन ग्रन्थों के प्रकाशन में समर्थ हुए ।:



मुद्रक:-रमनलाल बंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा ।

श्रीगुरुपरम्परा

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभुजी

|

श्रीश्रीनित्यानन्दप्रभुजी

|

श्रीश्रीज्ञान्दवाठाकुराणीजी

|

श्रीश्रीवीरचन्द्रप्रभुजी

|

श्रीश्रीरामचन्द्रगोस्वामी

|

श्रीश्रीकिशोरीमोहनगोस्वामी

|

श्रीश्रीराधावल्लभगोस्वामी

|

श्रीश्रीराधारमणुगोस्वामी

|

श्रीश्रीराधामाधवगोस्वामी

|

श्रीश्रीसत्यानन्दगोस्वामी

|

श्रीश्रीराधिकाप्रसादगोस्वामी

|

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यगोस्वामी

|

श्रीश्रीनित्यराधागोस्वामी

|

श्रीश्रीशंकरारण्यगोस्वामी

|

श्रीश्रीराधारमणचरणदासजी (धावाजीमहाराज)

|

श्रीश्रीरामदासबाबाजीमहाराज

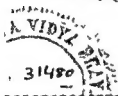
(गौरगुणगायक तथा संकीर्तन प्रचारक)

|

(प्रकाशक)

श्रीश्रीमौरगदाघरौ विजयताम्

चन्द्रावलीप्रभृति-नव्यलतावलीपु
 वृन्दावनेऽनघरत्नं विहरन् समन्तात् ।
 राधा-सुवर्णनलिनी-गुणगान्धलेश-
 माद्यन्मना विजयतामिह कृष्णभृङ्गः ॥ १ ॥
 कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तनपरै प्रेममृताम्भोनिधौ
 धीराधीरजनप्रियौ प्रियकरौ निर्भत्सरौ पूजितौ ।
 श्रीचैतन्यकृपाभरौ भुवि भुवो भारावहतारकौ
 वन्दे रूपसनातनौ रघुयुगौ श्रीजीवगोपालकौ ॥ २ ॥
 श्रीरूपेण प्रचलकरुणाशालिना दर्शितं यन्-
 मादङ्गमुद्यप्रकृति-जनता-श्रेयसे रागवत्सर्म् ।
 तस्मिन् तेषां रतिरतितरां वर्त्तते सारभाजां
 तेषां पादाम्बुजनतिमती कोटिशः स्याज्जनिर्भे ॥ ३ ॥



हरिदासदास बाबा,
 हरिवोलकुटीर,
 गवह्वीप ।

यद् पुस्तक तथा प्रकाशित अन्य पुस्तकै
 मिलने का पता—

- १—श्रीरामनिवासदेवान की दुकान, सयामनशालग्राम जी मन्दिर
 के नीचे (लोडंवाजार) वृन्दावन ।
 अनुपस्थिति में—मन्दिर के भीतर ।
- २—मोतीरामगुप्ता भगवानभजनाभ्रम, बल्लीगंज, वृन्दावन ।
- ३—पद्मेश्यामगुप्ता बुक्सेलर, पुरानासदर, वृन्दावन ।
 श्रीलाल बुक्सेलर, असकुंडापाट, मथुरा ।

— समर्पण-पत्र —



“हा वत्स केवलचन्द”

तुम्हारी प्रेरणा का फल यह
 “ग्रंथरत्नपंचक” अथवा “दिव्यपंचामृत”
 रमिकों को आनन्द देता हुआ तुम्हारी
 आत्मा को प्रेम प्राप्त करावे ।



— हनुमानदास राठी

श्रीश्रीरूपसनातन की जीवनी

कर्णाटकदेश के अवीश्वर, भारद्वाज गोत्रीय, यजुर्वेदीय ब्राह्मण "सर्वज्ञ" जी के अनिरुद्ध हुए। उन के रूपेश्वर और हरिहर नाम के दो पुत्र थे। हरिहर जी के राज्यलालसा के इच्छुक होकर रूपेश्वर जी ने नीलाचल की यात्रा की तथा बर्द्धमान के निकटवर्ती शिखरदेश के राजा महेन्द्रसिंह के साथ परिचय-बन्धुत्व की स्थापना की। पश्चात् वे वहाँ के मन्त्री हुए। वहाँ रूपेश्वर जी का पद्मनाभ नामक पुत्र हुआ। पद्मनाभ की पत्नी का नाम रमादेवी था। पद्मनाभ जी स्वशुर और पिता जी का परलोक हो जाने पर शिखरदेश त्याग कर नवहट्ट (नैहाटि) ग्राम में आकर वास करने लगे। वहाँ उन के पाँच पुत्र और १८ कन्या हुईं। सब से कनिष्ठ पुत्र का नाम मुकुन्द था। उन मुकुन्ददेव के पुत्र कुमारदेव हैं। हरिना-रायण विशारद महाशय की कन्या रेवती के साथ कुमारदेव का विवाह हुआ था। कुमारदेव के श्रीसनातन-श्रीरूप-श्रीअनुपम तीन पुत्र हुए। श्रीसनातन जी का आविर्भाव काल आनुमानिक १४१० शकाब्द तथा श्रीरूप जी का १४११ मतान्तर में १४१५ शकाब्द है। श्रीसनातन जी अल्पावस्था में ही अध्यापक शिरोमणि विद्यावाचस्पति के निकट सर्व्यशास्त्र का अध्ययन कर व्युत्पन्न हुए। उस समय गौडनगर हुसेनसाह पातसाह की राजधानी थी। अनेक देशों से कृतविद्यगण का वहाँ आगमन रहा। अतः तीनों भ्राता अनायास सर्वविद्या में पारदर्शी हो उठे।

एक दिवस कथा प्रसंग वश हुसेनसाह ने मुरसीद को मेरा गौडराजत्व कब तक रहेगा यह बात पूछी। उस समय सिद्ध फकीर साहन्यामतुल्ला अली ने कहा वत्स ! हुसेन ! जब तक सनातन-रूप भन्त्रित्व पद में नियुक्त रहेंगे, तब तक तुम्हारा नृपासन रहेगा। पीछे वे चैतन्यदेव का दर्शन लाभ कर विषय से धीतभ्रष्ट हो अ-

न्यत्र चले जाने पर तुम्हारे गौडराजत्व की अवनति होगी। हुसेन-शाह श्रीसनातन-रूप के अनुसन्धान के लिये उत्सुक होकर इधर उधर लोगों को भेजने लगा। इस से पहले उसने हिंगा नामक पदाति को माधाइपुर नामक स्थान में बिना कुछ कह कर भेजा था। हिंगा माधाइपुर जाकर इधर उधर घूमने लगा। उस समय श्रीसनातन जी ने अपने घर में बैठ कर श्रीरूप के साथ शास्त्रालाप करते थे। उन्होंने उस को देखा तथा इस प्रकार घूमने का कारण पूछा। हिंगा किस कारण से घूमता था, उस का उत्तर नहीं दे सका। सनातन ने फिर हिंगा से पूछा कि जब तुम को बादशाह ने भेजा, तब वे कहाँ थे। उस ने कहा एक मन्दिरा का उपरि भाग बनने में बाकी पड़ा है। उसे देख कर उतरते हुए मुझे भेजा। परन्तु भेजने के समय किस लिये भेजता हूँ, उसे नहीं कहा। तब श्रीरूप ने दो-चार-राजमिस्त्री देकर हिंगा को बादशाह के निकट भेजा। बादशाह राज मिस्त्री के साथ हिंगा को देख कर आश्चर्य हुआ तथा दोन घाता के परामर्श से यह कार्य हुआ है इस का अवगत किया।

बादशाह ने केशव छत्रि नामक कोतवाल को भेज कर शिविका (पालकी) द्वारा दोनों भ्राता को राज-दरबार में लाकर तथा दोनों का परिचय प्राप्त से मुख्य हो सनातन को मन्त्रित्व तथा श्रीरूप को उपमन्त्रित्व पद में नियुक्त किया। दोनों बाहर राजकार्य की परिचालना करने लगे तथापि अन्तर में वैष्णव पण्डितों के साथ भाग-धत्तादि भक्तिशास्त्र की आलोचना करते थे। श्रीगोविन्दसेवा में उन का मुख्यमय जीवन धीतता था। सनातन के सेवा-विग्रह श्रीराधा मदनमोहन मूर्त्ती अभी भी रामवेलि ग्राम में विराजमान है। वे दोनों निज आंगन में व्रजभाव लक्ष्मीपति के लिये राधाकुरण्ड-श्याम-कुरण्ड-अष्टसरियों का कुरण्ड, कुञ्ज-निकुञ्ज, गोवर्द्धनादि का निर्माण करा कर भाव आस्वादन के द्वारा समय वितरित थे। अभी

भी वहाँ राधाकुण्डश्यामकुण्डादि मौजूद हैं। एक दिवस रात्रि में स्वप्नयोग में श्रीगोराङ्गदेव ने दर्शन देकर आज्ञा की, सनातन ! अब विलम्ब की आवश्यकता नहीं है। तुम सब ब्रज की मञ्जरी हो। जीव उद्धार के लिये मनुष्य देह में अवतीर्ण हुए हो। शीघ्र ही दोनों ब्रज के लिये गमन करो। वहाँ लुप्र तीर्थों का उद्धार तथा भक्ति शास्त्रों का प्रणयन करो। महाप्रभु के अन्तर्धान हो जाने पर सनातन जी विपण्य चित्त से अष्ट सात्त्विक भावों से विभावित होकर स्वप्न वृत्तान्त के सोच में बैठे हुए, उस समय श्रीरूप आकर उन से मिले। दोनों ने परामर्श कर श्रीनवद्वीप में महाप्रभु के निकट दैन्यपत्र भेजा।

श्रीमन् महाप्रभु वृन्दावन गमन का छल कर रामकैलि में आकर केलिकदम्ब तल में बैठे हैं। उस समय श्रीरूप-सनातन दोनों दीनातिदीन वेप में आकर प्रभु के चरण में गिर गये। प्रभु ने उठा कर आलिङ्गन दिया तथा दोनों से भिक्षा की। बड़ा भारी उत्सव हुआ। भक्तगण प्रभु के अवराभूत महाप्रसाद का ग्रहण कर परम आनन्दित हुए। प्रभु का आगमन हुसेनशाह ने भी सुना। श्रीरूप-सनातन से परिचय पाकर महाप्रभु के स्वच्छन्द विहार के लिये सर्व प्रकार की व्यवस्था कर दी। अब तक यहाँ गौराङ्गदेव के आगमन उपलक्ष्य में उग्रैष्ठ संक्रान्ति के दिन महोत्सव होता है।

श्रीमन् महाप्रभु के दर्शनावधि श्रीरूप-सनातन की विषय में विशेष वितृष्णा हो गई। निरन्तर दोनों भ्राता श्री गौराङ्गदेव के रूप-गुण में विभोर होकर भूरने लगे। लोगों के मुख से श्रीमन्-हाप्रभु का वृन्दावन में गमन सुन कर उन का चित्त चञ्चल हो उठा। श्रीरूप गौराङ्गदेव के दर्शन की लालसा से अवीर होकर कनिष्ठ भ्राता अनुपम के साथ गृह त्याग कर प्रयाग में महाप्रभु से मिले। प्रभु ने प्रेमालिङ्गन के द्वारा दोनों को कृतार्थ कर सनातन की

वार्त्ता पूछी तथा श्रीरूप जी को निज शक्ति सञ्चारित कर वृन्दावन जाने के लिये आदेश दिया ।

श्रीरूप तथा अनुपम के गृहत्याग के उपरान्त सनातन जी विचित्र चित्त होकर दिन रात हा गौराङ्ग ! ऐसा कह कर काँदने(रोने) लगे । राजकार्य परिचालना उस से शिथिल हो उठी ।

हुसेनशाह के गौडदेश में राजा होने के पहले अलाउद्दीन हुसेन-शाह गौड का अधीश्वर रहा । उस के आधीन में सुबुद्धिराय नामक जागीरदार रहते थे । सैयद वंशजात हुसेन खाँ उस समय उन की नौकरी करता था । सुबुद्धिराय ने किसी जलाशय खनन करने का भार उसे दिया था, परन्तु उस में हुसेन खाँ की त्रुटि देख कर उस के उरुदेश में कठोर चावुक का प्रहार किया । पश्चात् जब हुसेनशाह राजा हुआ, तब उस की रानी ने उस चिन्ह को देख कर सुबुद्धिराय को प्राणवध के लिये राजा से अनुरोध किया । हुसेनशाह निज पोष्टा सुबुद्धिराय के प्राणवध के लिये नहीं सम्मत हुआ । उधर रानी ने भी अपने हठ में आकर अपने प्राण त्याग का भय दिखाया । हुसेन शाह दोनों संकट में उपाय शून्य होकर केशव छत्रि को दबिरखास (सनातन) को बुलाने के लिये आदेश दिया । उस समय अन्धकार रात्रि थी, आकारा घनघटा में छा गया था । मार्ग बड़ा दुष्कर था । सनातन जी गौराङ्ग विरह में व्याकुल हो कर हाथ हताश कर रहे थे । उस में फिर दोनों भ्राता का विरह आग से हृदय जलता जा रहा था । राजा की आज्ञा सुन कर शिविका योग से राजदरबार में उपस्थित हुए । आपाततः समस्त विषय सुन कर नाना कौशल तथा विनती के साथ रानी को समझाया । परन्तु उस का हठ परिवर्तन नहीं हुआ । परचात् सुबुद्धिराय की जाति नारा कर देने की सम्मति रखी गई । सनातन जी मन में विचार करने लगे—ब्राह्मण जाति प्युत होकर पश्चात् प्रायश्चित्त कर शुद्ध हो सकता है ।

रानी को प्रबोधित कर सनातन जी अपने घर फिरते थे । उस समय मार्ग में वृत्तमूल के पर्णकुटीर से एक फकीर तथा उस की पत्नी का कयालाप उन ने सुना । पत्नी फकीर से पूछने लगी—इस दुःसमय घोर अन्धकार में कौन आ रहा है । फिर कहती है बोध होता है, एक कुम्भुर आ रहा है । फकीर ने कहा उस की क्या गरज पड़ी है । वह तो किसी गृहस्थ के घर सोता रहा होगा । पत्नि ने फिर भी पूछा ? तो कौन आ रहा है । फकीर ने कहा—निश्चय कोई पराधीन आ रहा है । उन के वार्त्तालाप का श्रवण कर सनातन जी लज्जित हुए तथा रूप, अनुपम की प्रशंसा करते हुए अपने को शत धिक्कार देने लगे । अब सनातन जी महाप्रभु के लिये अधीर हो गये । उन का चित्त व्याकुल हो उठा । उस समय श्रीरूप गोस्वामी का एक पत्र उन्हें मिला । यह पत्र गुप्त भाव से लिखा गया था । पत्र में इस प्रकार श्लोक था “यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी, रघुपतेः क्व गतोत्तरकौशला” इत्यादि । कोई कोई कहते हैं कि श्रीरूप ने आठ अक्षर लिख कर विषय त्याग करने के लिये सूचना की । यथा “शु, हि, रा, सू, य, पा, कु, कम् । इस का अर्थ सनातन ने इस प्रकार किया, शु-शुम्भनामक दैत्यराज, हि-हिरण्यकशिपु नामक दुर्दान्त दैत्येन्द्र, रा-लङ्केश्वर रावण, सू-सूर्यवंश, ■-यदुवंश, पा-पाण्डवगण, कु-कुरुपति दुर्योधन, कं-कंसराजा । इन प्रत्येक के प्रताप से एक दिन पृथिवी कम्पायमान होती थी । किन्तु वर्त्तमानमें ये सब कहाँ चल दिये । अतएव अविलम्ब से विषय त्याग उचित है ।

पत्र पाठ से उन की मानसिक ज्वाला अधिक बढ़ने लगी । वे विषय परित्याग का सङ्कल्प कर राजदरवार में गमन विरत होकर घर में बैठ भागवतगणों के साथ भागवत प्रसंग में समय बिताने लगे । सनातन जी को राजदरवार में अनुपस्थित देख कर पातसाह ने वार्त्ता जानने के लिये पदातिक भेज कर सुना कि वे अस्वस्थ

हैं। क्योंकि सनातन ने उस को अस्वस्थता का बहाना दिखाया। जब पातसाह ने वैद्य भेज कर उस के द्वारा सुना कि सनातन जी के शरीरमें कोई अस्वस्थता नहीं है, वे राजकार्य चलानेमें अपने को अक्षम कह रहे हैं, तब वह स्वयं उपस्थित होकर सनातन से कहा—द्वि-रत्नास ! तुम्हारे तीन दिन की अनुपस्थिति में हमारे राजकार्य में महान् बिगड़झलता हो गई है। अतः शीघ्र चल कर कार्य समाधान कीजिये। सनातन ने कहा अब मेरी राजकार्य में क्षमता नहीं रही। आप तो दूसरा मन्त्री रख लीजिये। पातसाह ने बहुत कष्ट अनुरोध किया। परन्तु उन्होंने उपेक्षा की। उस से पातसाह क्रोधित होकर कहने लगा—तुम्हारे भैया रूप साकरमल्लिक मेरा चाकला (प्रवेश) नष्ट कर दरवेश होकर पलायन किया। तुम भी ऐसा करना चाहते हो। अस्तु ! ऐसा कह कर उसने सनातन को धन्दी कर “सेख हवु” नामक जमादार को रक्षा के लिये नियुक्त किया। उस समय पुरन्दरवसु मन्त्री आसन में संरुद्ध हुए। उधर पुरन्दरवसु के फनिष्ठ भ्राता भीकान्तवसु उड़ीसा से कर संग्रह कर गौड़देश को भेजते थे। वहाँ से ऐसा संघाद आया कि उस के दुर्व्यवहार से प्रजागण कर न देकर उसे विताड़ित किया है।

गौड़पति ने इस संघाद को सुन कर क्रोधित हो पुरन्दरवसु की प्रत्येचना से युद्ध के लिये उड़ीसा यात्रा की। अब सनातन जी कारागार में रुद्ध होकर दुःसह यन्त्रणा को गौराङ्ग अनुराग से मुरमय मान कर अन्तर में गौराङ्ग संग मुर ख आस्वादन करने लगे। ये युक्तिबलसे महर्षि सुवर्ण मुद्रा प्रदान के द्वारा सेर हवु को वश में कर गृहल से मुक्त हुए। गुरु-ब्राह्मण, कुटुम्ब, अनियियों में धन का विभाग कर प्रातःकाल भृत्य ईशान के साथ गौराङ्ग दर्शन के लिये यात्रा कर हावासधाना घाट में उपस्थित हुए। भ्रातृ का मास था। गंगा में भरपूर जन रहा। आप ने गंगा को प्रणाम कर

पार हो घृन्दावन के उद्देश्य में यात्रा की। पातोड़ा पर्वत में पार्वतीय
 भूँआ जाति की वस्ती में पहुँचे। उन में से कोई गणक अपनी भा-
 पा में निज गण के लिये कहने लगा कि इन के पास अष्ट सुवर्ण
 मुद्रा हैं। इन को कपट प्रेम दिग्वा कर आतिथ्य करा कर एकान्त में
 प्राण बध करके मुद्राओं को लेना है। सनातन ने उन से घृन्दावन
 का मार्ग पूछा। उन सब ने बड़ा सन्मान दिग्वाकर रात्रि वास करने
 को कहा। राजमन्त्री सनातन जी बड़े चतुर थे। उन के मन में
 कुछ सन्देह हुआ। वे ईशान से पूछने लगे। तुम्हारे साथ कुछ
 पाथेय है क्या? ईशान ने एक मुद्रा का गोपन कर सात सुवर्ण
 मुद्रा दिग्वाई। सनातन ने उन मुद्रा को लेकर भूँआ के अधिपति
 को दे दिया। उन सब ने विस्मय प्राप्त तथा कुछ सनातन जी के
 स्वभाव से आर्द्र हृदय होकर पद्म्यन्त्र की कथा सुनाई। सनातन जी
 वहाँ रात्रि निवास कर भूँआ गणों के निर्देश मार्ग से चलने लगे।
 आप ने ईशान से और कुछ पाथेय रखने का प्रश्न किया। फिर भी
 ईशान ने मार्ग सम्बल के लिये एक मुद्रा दिग्वाई। इस से सनातन
 जी व्यथित होकर ईशान को गृह के लिये विदाई देकर अकेले गौ-
 रांगानुरांग के द्वारा घृन्दावन के लिये चलने लगे। पार्वत्य हिमजन्तु
 समाकुल मार्ग में सनातन जी निर्भय होकर हा गौराङ्ग ! कहते हुए
 चल रहे थे। उन के कुमुम सुकोमल चरण दोनों से रक्त भाव हो
 रहा था। परन्तु उस का कोई भ्रूत्पे नहीं। वे तो निज प्राणवल्लभ
 महाप्रभु गौराङ्गदेव के दर्शनार्थ चले जा रहे हैं। इस प्रकार गमन
 करते हुए दशम दिक्पथ के सायन्ध में क्षाजीपुर नामक ग्राम में पहुँचे
 तथा वहाँ एक तमालतला में बैठ कर गौरगुणानुवाद करते रहे।
 वहाँ उन के ग्राम्य सम्बन्धी श्रीवान्तसेन नामक भगनीपति ने जो
 कि पातसाह के लिये घोटक क्रय करने के लिये वहाँ नियुक्त थे, उन
 को देखा। सनातन का वेश मलिन था। वे निरन्तर गौराङ्ग गुण-

गान में विभोर थे। परचात् परिचय पाकर श्रीकान्त ने उनको अपने घर जाने के लिये बहुत कुछ आप्रह किया। परन्तु सनातन जी किसी भी प्रकार सम्मत नहीं हुए। श्रीकान्त ने एक भोट कम्बल लाकर सनातन जी को दिया। वे उस कम्बल को लेकर वाशी अभिमुख में गमन करने लगे। काशी में उपस्थित होकर सनातन ने सुना कि महाप्रभु वहाँ चन्द्रशेखर जी के गृह में विराजमान हैं। सनातन जी पुलकित होकर चन्द्रशेखर जी के बहिर्द्वार के एक प्राचीर में पीठ लगा कर बैठे रहे। उधर महाप्रभु ने चन्द्रशेखर को कहा तुम्हारे द्वारदेश में एक वैष्णव का आगमन हुआ है। तुम उन को ले आओ। चन्द्रशेखर जी ने प्रभु की आज्ञा से बाहिर जाकर किसी वैष्णव को नहीं देख प्रभु से कहा। पश्चात् प्रभु का इङ्गित से दर-वेश रूपी सनातन को प्रभु के निकट लाया। महाप्रभु सनातन को प्रांगन में देखते हुए बाहु प्रसार कर आलिङ्गन करने के लिये धा-यित हुए। सनातन जी संशोचित होकर पीछे को भागने लगे। परचात् महाप्रभु जी बल पूर्यक उन को आलिङ्गन कर निज पार्श्व में बैठा कर गंगमार्जन करते हुए रूप-अनुपम की कथा कहने लगे। तपनमिश्र जी ने मध्यान्हभिक्षा के लिये प्रभु का निमन्त्रण किया। महाप्रभु जी सनातन को भद्र कराने के लिये इङ्गित करने लगे। सनातन जी भद्र होकर गंगास्नान कर प्रभु के समक्ष आये। प्रभु ने निज हस्त से सनातन जी को तुलसी मालादि पहराय दिया। महाप्रभु जी मध्यान्ह क्रिया के लिये विष्णुमन्दिर में प्रविष्ट हुए। सनातन जी तपनमिश्र जी से एक जीर्ण वस्त्र लेकर कीपीन-बहि-र्वास रूप से पहरने लगे। प्रभु सनातन का वेशावलोकन कर ईपत हांस्य करते हुए भोट-कम्बल की तरफ बार बार दृष्टिपात करने लगे। सनातन जी प्रभु का मनोभाव जान कर एक गौड़ीया को भोट कम्बल दे उस से जीर्ण कन्या लेकर पहरने लगे। उस से प्रभु

ने प्रसन्न होकर कहा—श्रीकृष्ण प्रभु ने तुम्हारे विषय—व्याधि को दूर किया। वे अवशेष व्याधि क्यों रखेंगे, अच्छा ही हुआ। इस से सब कोई परिहास कर सकते हैं कि “भोट फ़व्वल शरीर में उस में फिर माधुकरी भिन्ना।” मिश्र गृह में प्रभु ने भोजन किया तथा शेष अधरामृत सनातन को दिलाये।

उस के उपरान्त महाप्रभु जी ने श्रीप्रकाशानन्द-सरस्वती को स्वप्नभाव से मायावाद से उद्धार कर वैष्णव किया। उस समय काशीवासी सकल महाप्रभु का गुणानुवाद करने लगे। महाप्रभु जी दो मास पर्यन्त काशी में रह कर श्रीसनातन जी को जीवतत्त्व, ईश्वरतत्त्व, भक्तितत्त्व, प्रेमतत्त्व, व्रजतत्त्व, रसतत्त्व प्रभृति शिक्षा देकर सुदृढ़ किया तथा निज शक्ति सञ्चार कर वैष्णवस्मृति करने के लिये आदेश देकर उस का सूत्र निर्देश किया। ये सब कथा श्रीचैतन्यचरितामृत में सविस्तार वर्णित हैं। पश्चात् प्रभु ने सनातन जी को सर्वशक्ति सञ्चार कर योग्यपात्र बनाय, घृन्दावन में जाकर लुप्रतीर्थों का उद्धार और भक्ति शास्त्रों के प्रणयन के लिये आदेश दिया। श्रीप्रभु की आज्ञा पाकर सनातन जी प्रयाग तथा आगरा होकर घृन्दावन में पहुँचे तथा वहाँ कुछ दिन निवास कर फिर महाप्रभु की दर्शन लालसा से नीलाचल के लिये यात्रा की। मार्ग में मारिखण्ड के दूषित जल से उन के शरीर में कण्डू (खुजली) हो गई। वे श्रीकृष्ण प्राप्ति न होने के दुःख से जगन्नाथदेव का रथारोहण दर्शन कर रथचक्र के नीचे दब कर प्राणत्याग करने के लिये मन में विचार कर नीलाचल में उपस्थित हुए तथा भुवन-पावन श्रीहरिदास ठाकुर के निकट रहने लगे। सनातन जी दीनता से अपने को नीच जाती, नीचसंगी मानते हुए जगन्नाथ जी के मन्दिर में नहीं जाते थे। उन के देहत्याग का संकल्प जान कर एक दिवस महाप्रभु ने उस से उन को समझाय कर विरत किया तथा

सनातन जी को आलिंगन कर निज देह कर के अङ्गीकार किया । प्रभु स्पर्श से उन की कण्ठ (राज) चली गई तथा परम तेजशाली हुए । एक समय ज्यैष्ठ मास का मध्याह्न काल में टोटा-यमेश्वर से तप्त बालुका के ऊपर देकर सनातन जी प्रभु दर्शन में पहुँचे । पाँव में बड़े बड़े फफोले हो गये । परन्तु सनातन का भ्रूक्षेप नहीं । प्रभु ने उन की आत्मद्वीपता सुन कर प्रसन्न हुए तथा प्रेमालिंगन के द्वारा सम्पूर्ण स्वस्थ किया । नीलाचल में कुछ दिवस रह कर सर्व-भक्त का आशीर्वाद ले प्रभु आज्ञा से वृन्दावन के लिये चल दिये ।

वृन्दावन में श्रीरूपगोस्वामी जी से मिल कर लुप्ततीर्थों के उद्धार की चेष्टा में निरन्तर व्यस्त रहे । एक दिवस शृङ्गारघट में महाप्रभु के द्वारा उपविष्ट लुप्त-तीर्थों की उद्धारचेष्टा में चिन्तित होकर शयन कर रहे थे । किसी ने स्वप्न छल में आकर कहा— सनातन ! तुम लुप्ततीर्थों के उद्धार की चिन्ता मत करो । वह सब काल्प्य धीरे धीरे होगा । मेरा कार्य मैं करूँगा, तुम केवल उपलक्ष्य मात्र हो । स्वप्न प्राप्त होकर सनातन जी प्रसन्न हुए । बाराहपुराण, स्कन्दपुराणादि अशेष शास्त्रा का समन्वय कर मथुरा-महिमा नामक एक ग्रन्थ का सङ्कलन किया । तीर्थों की खोज होने लगी । साथ ही साथ असंख्य भक्ति ग्रन्थों की रचना हुई । उन के कुछ समय पश्चात् जब कि महाप्रभु की अन्तर्द्वान लीला हुई उस समय छै गोस्वामी जी के साथ महामहिम श्रीमन्नारायणभट्ट जी का भी संसर्ग हुआ । वे गदावर पण्डित गोस्वामी जी के शिष्य कृष्णदास ब्रह्मचारी जी के प्रिय शिष्य हैं । ब्रज तीर्थ उद्धार के विषय में उन भी भी महान् महत्ता है । नि सन्देह श्रीरूप-सनातन-श्रीनारायण भट्ट आदि गौडीय आचार्यों ने ब्रजतीर्थों का उद्धार कर ब्रज की परम महत्ता चारों ओर फैलाई तथा असंग्रह ब्रजसम्बन्धी ग्रन्थों की रचना कर ब्रज का रहस्य सबको दिखलाया है । सनातनजी पल-

मूल-शाक इत्यादि से यथा लाभ से सन्तुष्ट हो कर कभी वा चर्वण, कभी वा विप्रगृह से माधुकरी भिक्षा करते हुए वृन्दावन में मदन-टेर नामक स्थान में मौनी हो कर सदा सर्वदा भजन करने लगे। चंगभाषा के भक्तमाल में कथन है कि—दिल्लीश्वर आकबरसाह सनातन की गुणगरिमा श्रवण से मुग्ध हो कर वहाँ शिविर स्थापन कर सनातन जी के दर्शन के लिये उन के निकट उपस्थित हुए। सनातन ने अपना मौन भंग नहीं किया। पश्चात् बादशाह के यत्-किञ्चित् अर्थ अंगीकार करने के लिये बार बार आप्रह से इङ्गित किया कि अपने कुटीर यमुना तरंग से भग्न प्राय हो गया है। इस का संस्कार कर दीजिये। जमुना की घाट के ऊपर यह कुटीर था। बादशाह ने देखा घाट समूह स्पर्शमणि समूह से विरचित है। बादशाह लज्जित हो कर “सनातन जी जिस अतुल वैभव के अधिकारी हैं” उस की प्रशंसा करता हुआ तथा सनातन जी की स्तुति कर प्रार्थन सम्पादन में असामर्थ्य जनाता हुआ दिल्ली के लिये प्रत्यावर्त्तन किया। श्रीरूप ने “चादुपुष्पाञ्जलि” नामक निज स्तोत्र में वेणी व्यालाङ्गनाफणा की उपमा देकर श्रीराधिका की वेणी का वर्णन किया है। सनातन जी सर्पिणी के साथ वेणी की उपमा देख कर अति दुःखित हुए। एक समय वे राधाकुण्ड के अग्निकोण में मदनान्दोलन नामक नित्य-विलासकुञ्ज के दर्शनार्थ पहुँचे। उस समय उन्होंने वहाँ देखा कि श्रीमती राधा श्याम-रसाल वृक्ष के भूलना में मूल रही हैं। उन की पृष्ठ वेणी लम्बायमान होकर ठीक नागनी के प्रति रूप धारण कर रही है। वेणी फणिनी के दर्शन से सनातन जी आश्चर्य्य हो कर श्रीरूप की कविता की भूयसी प्रशंसा करने लगे तथा प्रेमआतिशय्य से सात्त्विक भावावली में विभूषित हो कर भूतल में लुण्ठित हुए।

सनातन जी वृन्दावन से भिक्षा के लिये मथुरा में जाते थे।

वहाँ एक चौबे की ब्राह्मणी जो कि वात्सल्यरस की मूर्ति थी उसने
 वात्सल्य भाव से आकृष्ट होकर मदनमोहन जी—पञ्चवर्षीय
 बालक के साथ क्रीड़ा करते थे तथा दोनों मातृ सम्बोधन करते थे।
 एक दिन मदनमोहन जी बालक के साथ क्रीड़ा कर रहे थे। सना-
 तन जी माधुकरी के लिये जा रहे थे। उन्होंने उन बालक मदनमो-
 हन जी को देख कर कुछ आश्चर्य हो परिचय पूछा। बालक
 ने कहा हम ब्रजवासी बालक हैं। हमारा नाम मदनमोहन है। आगे
 उस मौहल्ला के उस मकान में हमारा वास है। सनातन जी ने उस
 ब्राह्मणी के घर पर जाकर देखा कि ब्राह्मणी पाक कर रही तथा दन्त
 धावन करती हुई उस दन्त काष्ठ से भात चलाने लगी। इस प्रकार
 अवैध सदाचार देख कर सनातन ने पूछा, ब्रजमाई! आप किस
 के लिये रमोई कर रही हो। ब्राह्मणी ने उत्तर दिया। मेरे दो बालक
 हैं, उन के लिये बालभोग की रमोई कर रही हूँ। सनातन ने कहा
 माता! यह रन्धन तुम्हारा अवैध हो रहा है, इस से अपराध हो
 सकता है। आगामी कल से स्नानादि कर पवित्र हो कर बालक
 दोनों के लिये रमोई करना। दूसरे दिन स्नानादि सदाचार करती
 हुई रमोई करने लगी। उस से अपरान्ध हो गया। लुधा से पीड़ित
 होकर मदनमोहन जी ने सनातन से कहा गोसाईं जी! तुमने माता
 को सदाचार उपदेश देकर मुझे लुधा से कानर किया। मैं तो ब्रज-
 पामियों के अछिष्ट से परिपालित हूँ। क्या तुम इस बात को नहीं
 जानते हो। सनातन ने विस्मित होकर माता से कहा—माता जी!
 अब तो आप पहले की तरह रन्धनादि कर बालक दोनों को प्यवाना।
 स्नानादि सदाचार की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कह कर सनातन
 जी चलने लगे। मार्ग में मदनमोहन जी ने कहा, गोसाईं जी!
 मैं तो आप के मंग में चलेगा और आप के पास रहेगा।
 सनातन ने कहा मैं तो वृक्षजल नियामी, कंगाल, माधुकरी जीवी

हूँ। मैं किस प्रकार आप की सेवा कर प्रसन्न करूँगा। मा यशोदा नवलक्ष्म धेनु के दुग्ध, सर, नयनीत से तृप्त नहीं कर सकी। ऐसा कह कर सनातन जी वृन्दावन चल दिये। उधर ब्राह्मणी को स्पर्जन से मदनमोहन जी ने कहा-मा। मैं कल से भिक्षुक गोसाईं जी के साथ वृन्दावन में रहूँगा। ऐसा सुन कर ब्राह्मणी न्याकुल होकर रोदन करने लगी। पर दिन सनातन जी का आगमन होने पर मदनमोहन जी उन के साथ वृन्दावन चलने लगे तथा उन को कहा-मैं विप्रद्वैत से आप के पास अग्रस्थान करूँगा और भोग के लिये तुम जो कुछ दोगे उसे भोजन कर तृप्त होऊँगा। इस से सनातन जी ने स्वीकृत होकर माधवीलता के कुंज में उन को स्थापन किया तथा प्रत्यह अँगकडी (घाटी) का भोग धरा। एक समय अलवण वनशाग भोग घरने पर मदनमोहन जी ने कहा-गोसाईं जी 'किञ्चित् लवण नहीं होने पर मैं भोजन नहीं कर सकता। सनातन ने कहा-मैंने पहले से ही कहा था कि तुम्हारा उपद्रव नहीं सह सकता हूँ। मैं वनवासी हूँ लवण कहाँ से प्राप्त करूँगा। मदनमोहन जी ने कहा-तुम्हारी सम्मति प्राप्त होने पर मैं अपनी प्रयोजनीय सामग्री आहरण कर लूँगा। सनातन ने कहा-जैसी तुम्हारी इच्छा है सो कीजिये। उस समय ऐसा हुआ कि-मुलतान देश का एक सौदागर बहुमूल्य व्यनसाय द्रव्य नौका में चढा कर मथुरा जा रहा था। मदनटेर के निकट यमुना की चढा में उस की ग्यारह नौकाएँ रुक गई। उसने सब कुछ युक्ति-कौशल कर लिये। किन्तु समस्त चेष्टा व्यथा हो गई। वह बड़ी विपद में पड़ गया। अब मदनमोहन जी ने बालकरूप बन कर सौदागर को बुला कर कहा यहाँ मदनटेर पर सनातन गोस्वामी जी हैं। उन की कृपा से तुम्हारी नौकायें चल सकती हैं। ऐसा कह कर अन्तर्धान हो गये। सौदागर ने सनातन जी के निकट आकर सकल वृत्तान्त सुनाया। सनातन ने कहा-इस

माधवीकुञ्ज के मध्य में वह बालक विराजमान है। उस ने अपने मन्दिर तथा सेवा परिचर्या बढ़ाने के लिये इस प्रकार भंगी की है। सौदागर ने मदनमोहन के निकट मूलधन तथा लाभ से अधिक धन सब का उपहार देने के लिये संकल्प किया। उस समय नौका-गण मुक्त हो गईं। उस व्यवसाय में सौदागर ने प्रचुर अर्थ लाभ किया। पश्चात् उन अर्थों के द्वारा सनातन जी के आदेशानुसार मन्दिर निर्माण तथा सेवा की व्यवस्था कर दी।

बीरभूम जिला के एक दरिद्र ब्राह्मण कन्यादायमस्त हो कर काशीधाम में शिव की उपासना करता था। एक समय दैववाणी हुई कि तुम शीघ्र घृन्दावन में सनातन गोस्वामी जी के पास गमन करो वहाँ तुम्हारी सव्यार्थ सिद्धि होगी। ब्राह्मण दैववाणी का श्रवण कर काशी से घृन्दावन आकर सनातन जी के पास निज प्रार्थित विषय का निवेदन करने लगा। सनातन जी ने कहा—मेरा एक रात गाँठ युक्त कन्या तथा रज के कन्या मात्र सम्बल (धन) है। मैं अर्थ कहाँ से प्राप्त करूँगा। ब्राह्मण सनातन जी के वचन सुन कर तथा उन की अवस्था देख कर शिर में कराघात करता हुआ रोदन करने लगा। उस समय सनातन जी का स्मरण हुआ कि उन ने यहूदिवस पहले यमुना में स्नान करने के समय एक स्पर्शमणि (पारस) की प्राप्ति की थी। उसे बाग्रहस्त से घालुका-पत्रों के द्वारा ढक कर रख आये थे। पश्चात् उन ने ब्राह्मण को लेकर तर्जनी संकेत के द्वारा स्नान को दिखाया। ब्राह्मण स्पर्शमणि प्राप्त होकर परमानन्द के साथ देश के लिये गमन कर रहा था, सनातन का प्रभाव उस के ऊपर इस प्रकार पड़ा कि मार्ग में उस ने सोचा गोसाईं जी के निकट अवश्य उस से कोई अरुण द्रव्य है, जिससे कि इस स्पर्शमणि का परस करने को भी नहीं चाहते हैं। अस्तु वह क्या पस्तु दे ? उसे अवश्य ज्ञात करना चाहिये। ऐसा विचार कर

उसने सनातन जी के पाम आ कर उत्कृष्ट मणि की प्रार्थना की। सनातन जी के इङ्गित से स्पर्शमणि को जल में फेंक कर मदनमोहन जी का चरण दर्शन किया। सनातन जी ने उस को शिक्षादि देकर आत्मसात् किया। सनातन जी का चरित्र अगाध असीम सागर रूप है। ग्रन्थ वृद्धि के भय से हम यहाँ से विरत होते हैं।

नन्दग्राम में स्थिति के समय एक दिवस श्रीरूप गोस्वामी जी श्रीसनातनगोस्वामी जी के पास आये। सनातन जी की इच्छा हुई युगल सरकार की भोग लगाकर श्रीरूप को पचावैं। इधर उस इच्छा की पूर्ति के लिये स्वयं श्री राधिका जी ने एक मनोहर बालिका रूप धारण कर स्त्रीर भोग की समग्र सामग्री ला कर उन्हें दी। दोनों अधरामृत पाये। स्त्रीर का स्वाद बहुत कुछ अद्भुत देख कर भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए इस का रहस्य श्रीरूप ने पूछा। श्री सनातन जी ने उत्तर में समस्त सुनाया। श्रीरूप ने गोस्वामी जी से कहा कि फिर कभी ऐसा न हो। इस से स्वामिनि जू का दुःख हुआ है। वे स्वयं परिश्रम उठाकर सामग्री लाईं। हमारे सुख के लिये उन को दुःख उठाना पड़ा है।

एक समय श्रीरूपगोस्वामी जी का समाज में हरि गुण यश का गान हो रहा था। सब कोई भाव में डूब कर वेसुख हो कर मूर्च्छित होने लगे परन्तु श्रीरूप धीर-स्थिर ऐसे ही बैठे रहे। इस से सब कोई उन को प्रेम विकार नहीं होने के कारण आश्चर्या-न्वित हुए। श्री कर्णपूरगोस्वामि जी ने उन के पास में जा कर देखा कि आप का श्वास अति तपायमान था। उस से कविकर्णपूर का शरीर में आग लग कर फफोले पड़ आये। इस प्रकार प्रेम रीति देख कर सब कोई आश्चर्यान्वित हुए।

श्रीरूपगोस्वामी जी ने नन्दगाँव के पास टेरेकदम्ब में कुछ दिन भजन किया। वहाँ आपकी भजन कुटी मौजूद है। उस समय

श्रीसनातन जी पावनसरोवर के निकट एक वृक्ष के नीचे रहते थे। वहाँ भी उनकी भजन कुट्टी मौजूद है। उनकी अयाचित वृत्ति थी। कोई आकर कुछ दूध दे जाये तो उसे ले लेते थे। एक समय ऐसा हुआ कि तीन चार दिन पर्यन्त दूध मिला नहीं। चौथे दिन एक सावले किशोर रूप बनकर श्रीहरि न सीर प्रसाद स्नाकर उन्हें दिया। आप ने उस बालक की सुन्दरता देख पूछा "बाला ! तुम वहाँ रहते हो। आपने उत्तर दिया कि मैं चार भाई हूँ। अभूक मेरा प्राम है। सनातन जी ने उस गात्र में जाकर उन का घर लोग को ढूँढा परन्तु उस का पता नहीं पाया। वे चारों दिशाये झूढ़न लगे तथा नेत्रों से आसू पहाने लगे। श्रीसनातनजी कभी घृन्गान, कभी गोरुधन, कभी धा राधाकुण्ड, कभी वा महाउन, कभी नन्दग्राम में रहते थे। इन स्थानों में उन का भजन कुट्टीर मौजूद है। वे प्रतिदिन गोरुधन की परिक्रमा करते थे। वृद्धवयस में जब स्नात कोस परिक्रमा करने में असमर्थ हुए तब एक दिन एक सुन्दर रूप-शला बालक आ कर उन को एक श्रीकृष्ण पदाकिन गोरुधनशिला दे कर उस की परि-
 क्रमा करने का इन्देश कर अ-तर्धान हुए। सनातन जी शेष जी-
 वन में उस शिला की परिक्रमा करते थे। यह शिला वर्तमान
 भीराबागमोहर मन्दिर घृन्गान में विराजमान है। सनातन जी ने
 अपनी मदनमोहनजी की सेवा का भार गदाधर पण्डित गोस्वामी
 जी के शिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी से दिया था। उन्हीं के शि-
 ष्य महामहिम श्रीनारायणभट्ट जी हैं।

श्रीसनातन जी बड़े अमायिक प्रकृति के लोग थे। वे ब्रजवासियों के साथ खूब मिलते थे। जनगसिगाण उन को यथेष्ट भक्ति भद्रा करते थे। सनातन जी एक बार जिस ग्राम को जाते थे, वहाँ के लोग उन्हे सह्य में नहीं छोड़ने को चाहते थे। ब्रजमण्डल में अनेक ग्राम में उन का बैठक तथा भजन स्थान मौजूद है।

उन के द्वारा विरचित ग्रन्थावली—(१) “बृहद्भागवतामृत”, (२) हरिभक्तिविलास की “दिक्प्रदर्शनी” टीका, (३) “वैष्णव तोपणी” नामक दशमस्कन्ध की टिप्पणी, (४) लीलास्तव वा दशमचरित । इस के अतिरिक्त “लघुहरिनामामृतव्याकरण ” नामक एक व्याकरण उन के द्वारा विरचित है । वर्तमान प्रकाशित हरिनामामृत व्याकरण का यह संक्षेप ऐसा निश्चय किया जाता है । महामुने जी ने जिस प्रकार सूचना की थी उन्हीं सूत्रके अनुसार श्रीपाद सनातन जी ने पहले लघुहरिभक्तिविलास की रचना की । यह ग्रन्थ अभी भी वृन्दावन श्रीराधारमण जी के गोस्वामिपादों के घर में, अन्यत्र भी विराजमान है । इस ग्रन्थ को लेकर श्रीयुक्त गोपालभट्टगोस्वामी जी ने उनकी आज्ञा तथा सहायता से परिवर्तन-परिवर्द्धन कर बृहद्-आकार में हरिभक्तिविलास नाम से प्रणयन किया ।

यह ग्रन्थ श्रीसनातनगोस्वामी जी की “ दिक्प्रदर्शनी ” टीका के साथ तथा वंगानुवाद के साथ बंगाल में अनेक संस्करणों में प्रकाशित हो चुका है । महाराज छत्रपुर के द्वारा भी यह हिन्दी अनुवाद के साथ देवनागरी अक्षर में दो भाग में प्रकाशित हुआ है । वैष्णवों का महान् धर्मग्रन्थ इस की महिमा वर्णन करना पृष्ठपेशण मात्र है । यह ग्रन्थ अति विशाल है । वैष्णवतोपणी नामक दशमस्कन्ध की टीका अति सरस गाम्भीर्य भावमयव्याख्या से विरचित है । ताडशवाली बगीची वृन्दावन से अष्टटीका के साथ देवाक्षरमें तथा त्रिपुराधिपति मणीन्द्रनन्दीराय बहादुरके द्वारा अनेक टीकाओं के साथ बंगाल में और श्रीरामनारायणविद्यारत्न “बहरमपुर” के द्वारा चार टीका के साथ बंगाल में, अन्यत्र भी यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है । “बृहद्भागवतामृत” ग्रन्थ भी उक्त ताडशवाली बगीची से स्वकृत टीका के साथ देवनागरी अक्षर में पहले प्रकाशित हो चुका है । यह ग्रन्थ अति सरस परमचतुरता के साथ रचित

किया गया है। इस की महिमा वैष्णवसमाज में परम प्रसिद्धि है। सिद्धान्तिक सरसता के साथ ब्रज व श्रीकृष्ण का तत्त्व जानने में यह अद्वितीय ग्रन्थ है। इस की रचनापरिपाटी में बृहस्पति की भी बुद्धि वृत्ति कुण्ठित हो गई है। ग्रन्थकार ने स्वयं ही इस की टीका की। इस लिये मूल श्लोकों का भाव परिस्पष्ट हो रहा है। हाल में श्रीनिम्बार्कदीपि पथिक, उद्धारचेता, सेठ रतनलाल जी के द्वारा हिन्दी-अनुवाद के साथ इस का प्रकाशन हुआ है। वैष्णवसमाज इन महानुभाव के श्रेणी हैं तथा हार्दिक धन्यवाद भी देते हैं। बंगाल में भी कई संस्करण से इस का प्रकाशन हो चुका है।

" लीलास्तव व दशमचरित " में स्तवात्मक दशम स्कन्धीय लीलाओं का क्रम से वर्णन है। श्रीगोस्वामिचरन ने इसमें १०८ नमस्कार के द्वारा दशम लीलाओं का स्तवाकार में संक्षेपरूप से ग्रन्थन किया है। श्रीनवद्वीपधामनिवासी श्रीहरिदासदास महोदय के द्वारा यह ग्रन्थ वैष्णवसमाज को प्राप्त हुआ है। आप ने निज कृत टीका तथा सरस बंगानुवाद के साथ बंगाल में इसका प्रकाशन कर वैष्णव समाज का महान् उपकार किया। उक्त महोदय ने गौड़ेश्वर-सम्प्रदाय के प्राचीन आचार्यों के द्वारा विरचित अनेकानेक अप्रकाशित ग्रंथों का प्रकाशन कर वैष्णवसमाज का जो महान् उपकार किया है, उस से वैष्णव समाज विशेषतः गौड़ीयवैष्णवगण उन का चिर श्रेणी रहेगा। कलकत्ता निवासी धीकनेरके सेठ श्रीमान् हनुमानदास जी राठे तथा श्रीगोपालदास जी इन दोनों सज्जनों की परम आप्रहता से हम उत्सुक होकर इस ग्रन्थ को हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने में समर्थ हुए। श्रीयुक्त हरिदासदासमहोदय के द्वारा विरचित टीका तथा बंगानुवाद का आधार लेकर इस का हिन्दी अनुवाद किया गया है। उक्त महोदय ने इस में श्रीयुक्त सनातन जी की विस्तृत जीवनी देकर यदा भारी प्रभाव डाला है। उसी जीवनी की

छाया का अवलम्बन कर हम भी यहाँ पर विस्तृत जीवनी लिखने में समर्थ हुए। अवशेष-में हम उन महोदय को विशेष हार्दिक धन्यवाद देकर उन गोस्वामिचरण के चरित्र लिखने में विरत होते हैं। क्योंकि श्रीयुक्त सनातन गोस्वामी के चरित्र अति अगाध समुद्ररूप हैं। उन का पार कौन पा सकता है।

श्रीरूपगोस्वामी जी श्रीविग्रहों का प्रकाशन के लिये वृन्दावन के वन वन में नाना प्रकार अनुसन्धान करते हुए एक समय अति विषण्ण बदन में यमुना के तट पर बैठ कर अश्रुपात कर रहे थे। उस समय एक परम सुन्दर ब्रजवासी ने आकर उन को स्नेह पूर्वक रोदन का कारण पूछा। श्रीरूप जी ने उसे समस्त कारण कहा। वह गोस्वामी जी को गोमाटीला के पास ले कर कहने लगा कि यहाँ एक गौ आकर नित्य पूर्वान्ध में दुग्धन्नाय करती है। तुम जैसा विवेचन हो वैसा विधान करो। उस की बात सुन कर तथा मधुरमूर्ति दर्शन कर श्रीरूप मूर्च्छित हो गये तथा चेतना पा कर वहाँ किसी को नहीं देखा। वे ब्रज वासियों को बुला कर कहने लगे यहाँ श्री गोविन्द जी विराजमान हैं। परचात् बालक-वृद्ध सब के द्वारा उस स्थान का खनन कर योगपीठ के मध्यगत कोठी मन्मथमोहन श्री-गोविन्द जी का विग्रह प्राप्त किये। श्रीगोविन्ददेव का प्राकट्य वार्त्ता सुन कर असंख्य लोग उल्लासित होकर उपस्थित हुए। बड़ा स-मारोह के साथ “गोविन्दजी” का अभिषेक हुआ। उस के परचात् नीलाचल से काशीश्वरब्रह्मचारी नामक महाप्रभु के पार्षद ने गौर-गोविन्द नामक दूसरा विग्रह भेजा। श्रीरूप उस “चैतन्यदेव” का विग्रह को लेकर महान् भक्ति के साथ गोविन्ददेव के दक्षिणपार्श्व में स्थापना कर सेवा करने लगे। उस समय वृन्दावन में केवल कृष्णमूर्ति समूह प्रकटित हुए, परन्तु रावामूर्ति आविष्कार का विशेष उल्लेख नहीं है। पुरीधाम से जगन्नाथदेव के मन्दिर में चक्रवेध ना-

मक स्थान में श्रीराधिकाविग्रह रहा । स्वप्नादेश के अनुसार पुरी के राजा भीमतापसु के पुत्र पुरुषोत्तमजानाके द्वारा वह भेजा गया तथा श्रीगोविन्द जी के वामभाग में सिंहासन पर वह रावामूर्ति विराजमान हुई । श्रीरूप के “श्रीगोविन्द” श्रीसनातन के “श्रीमदनमोहन” तथा श्रीमधुपण्डित के “गोपीनाथ” आदिक विग्रह समूह श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वरुनाभ जी के द्वारा निर्मित किये गये हैं जो कि इन महा-नुभावों से प्रकटित हुए । वर्तमान श्रीगोविन्द तथा श्रीगोपीनाथ जी जयपुर में और श्रीमदनमोहन जी करोली में विराजमान हैं ।

श्रीरूप-सनातन जी की घृन्दावन में स्थिति इस प्रकार की थी—

अनिकेतन दुँहे बने यन वृत्तगण ।
 एक एक वृत्ततले एक रात्रि शयन ॥
 विप्रगृहे स्थूल भिक्षा काँहा माधुकरी ।
 शुष्क रुटि चाना चावाय भोग परिहरि ॥
 करोया मात्र हाते कन्या छिड़ा बादिर्वास ।
 कृष्णनाम कृष्ण कथा नर्त्तन उल्लास ॥
 सार्द्ध सप्त प्रहर कृष्णभजन चारिदण्ड शयन ।
 नाम संकीर्त्तन प्रेमे सेहो नहे कोन दिन ॥
 कमु भक्तिरस शास्त्र करये लिखन ।
 चैतन्य कथा शुने करे चैतन्य चिन्तन ।

(श्रीचैतन्यचरितामृते)

श्रीरूप-सनातन जी के बारे में भक्तमाल के टीकाकार श्री-प्रियादास जी ने कहा है कि—

घृन्दावन प्रजमूषि जानव न कोऊ प्राय,
 दई दरसाय जैसी शुक् मुग गाई है ।
 रीति हूँ उपासना की भागवत अनुसार,
 लियो रससार सो रसिक सुखदाई है ॥

आज्ञा प्रभु पाय पुनि “गोपीरर” लगे आय,
 बिये ग्रन्थ भाय भक्ति भौति सत्र पाई है ।

एक एक बात में समात मन बुद्धि जन,

पुलकित गात दग मरी सी लगाई है ॥ (३५८ क०)

अर्थात्-श्रीनवभूमि वृन्दावन को उस समय प्राय कोई नहीं जानता था । श्री रूप-सनातन दोनों भक्ता ने श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु जी के अनुशासन से वहाँ आकर वैसा ही दिया दिया कि जैसा श्रीशुन्देव जी ने वर्णन किया है । आप दोनों ने उपासना की रस-राशि रीति भी श्रीभागवत के अनुसार प्रकाश की । जो रसिकजनों को अति सुखदाई है । उन्हीं की ही कृपाकटाक्ष से आज प्रेम की पोथी पढ़ी जाती है ।

श्रीरूपगोस्वामी जी के द्वारा विरचित ग्रन्थावली—(१) भक्ति-रसामृतसिन्धु, (२) उज्ज्वलनीलमणी, (३) दानमेलिकौमुदी, (४) श्रीलघुभागवतामृत, (५) श्रीदू सद्गूत, (६) उद्धयसन्देश, (७) निदग्धमाधवनाटक, (८) ललितमाधवनाटक, (९) नाटकचन्द्रिका, (१०) पञ्चावली, (११) स्तवमाला, (१२) सामान्य-विरुदावलीलक्षण, (१३) श्रीकृष्णाभिषेक, (१४) मथुरामाहात्म्य, (१५) निवृज्जरहस्यस्तव, (१६) श्रीरावाकृष्णगणोद्देशदीपिका (प्रस्तुत)

(१) भक्तिरसामृतसिन्धु—१४६३ श्लोक में इसका प्रणयन हुआ था । इस में पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर चार विभाग हैं । पूर्वविभाग में स्थायिभाव-उत्पादक सामान्यभक्ति, साधनभक्ति, भाव तथा प्रेमभक्ति भेद से चारि लहरी, दक्षिणविभाग में विभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी तथा स्थायिभाव भेद से पाँच लहरी, पश्चिमविभाग में मुख्यभक्तिरसरूपण नामक शान्तरस, प्रीति वा दास्यभक्तिरस, प्रेयो वा सरयभक्तिरस, वात्सल्यभक्ति-रस तथा मधुरभक्तिरस भेद से पाँच लहरी, उत्तरविभाग में गौण-

हास्य, अद्भुत, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स भक्तिरस, रसों की मैत्रवैरस्थिति तथा रसामास ये नौ लहरी हैं। इस में सर्व समेत २१४१ श्लोक हैं। इस की श्रीपाद जीवगोस्वामी जी विरचित “दुर्गमसगमनी” श्रीमन् मुकुन्ददासगोस्वामिरुत “अर्थरत्नाल्पदीपिका” तथा श्रीलविश्वनाथचक्रवर्त्तिजी कृत “भक्तिसारप्रदर्शिनी” ये तीन टीका हैं। “श्रीरामनारायणप्रियारत्न के द्वारा बहरमपुर से जीवगोस्वामिरुत टीका तथा बंगानुवाद के साथ, श्रीयुक्तदामोदरलाल जी शास्त्री महोदय के द्वारा काशी से उक्त टीका के साथ देवाचर में, श्रीयुक्त हरिदासदास महोदय के द्वारा उक्त तीन टीका तथा प्राचीन छन्दबद्ध बंगभाषा पयार के साथ बृहदाकार में बंगाचर में प्रकाशित हुआ है। श्रीराधागोविन्द के अप्राकृत रसपरिपाटी जानने के लिये यह ग्रन्थ सर्वोपरि प्राथमिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को बिना देखे कोई वृन्दावन का मधुमय रसरज्य में प्रवेश नहीं कर सकता है।

(२) उज्ज्वलनीलमणि—वास्तविक यह ग्रंथ भक्तिरसामृतसिन्धु का उत्तराश है। भक्तिरसामृतसिन्धु में जिस शृङ्गाररस का अगाध, अपाररूप से उद्देश्य किया गया है, इस में उस का विशालरूप से वर्णन है। इस में राधागोविन्द के शृङ्गाररस का परिपाटी के साथ सविस्तर वर्णन है। इस में नायकभेद, सहायभेद, श्रीहरिप्रिया, श्रीराधा, नायिकाभेद, यूथेश्वरीभेद, दूतीभेद, सतीभेद, हरिवल्लभा, उद्दीपनविभाव, अनुभाव, सात्त्विक, व्यभिचारी, स्थायिभाव, शृङ्गारभेद, ये पन्द्रह प्रकरण हैं। श्लोक संख्या १४५३ हैं। इस की श्रीजीवकृत “लाचनरोचनी” तथा श्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ति जी कृत ‘आनन्दचन्द्रिका’ टीका है। इस का श्रीशचीनन्दनविद्यानिधि के द्वारा विरचित ‘उज्ज्वलचन्द्रिका’ नामक बंगपयार में पद्यानुवाद है। यह ग्रंथ मूल तथा दोनों टीका के माय सानुवाद बंगाचर में श्रीरामनारायण विद्यारत्न के द्वारा, बम्बई निर्णयसागर प्रेस से मूल तथा दोनों टीका

के साथ देवाक्षर में प्रकाशित हुआ है। रावागोविन्द के दिव्य शृङ्गाररस को अवगत करने के लिये यदि हृदय में इच्छा है तो इस का सरस अवलोकन अवश्य करें।

(३) दानमेलिकौमुदी—यह उपरूपक भेद के अन्तर्गत “भाणिका” नामक एकांक नाटक है तथा १४७१ शाक में इस की रचना हुई है। ललितमाधव नाटक का पाठ से जब श्रीदासगोस्वामी जी की प्रबल विरहदशा अत्यन्त बढ़ गई थी उस समय उनका शरीर धारण असम्भव हो उठा तब उन को सुस्थ करने के तथा रसान्तर में प्रवेश कराने के लिये हास्यपूर्ण दानलीलात्मक इस की रचना की गई थी। यह ग्रन्थ बहरमपुर से टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

(४) लघुभागवतामृत — इस में दो खण्ड हैं। पूर्वखण्ड का नाम कृष्णामृत और उत्तरखण्ड का नाम भक्तामृत है। कृष्णामृत में श्रीकृष्ण के विविध स्वरूपों का सविस्तार निरूपण है। स्वयंरूप, तदेकात्मरूप के विलास तथा स्वांश रूप से दो भेद, आवेश, प्रकाश, अवतारतत्त्व, अवतारलक्षण, प्रथम द्वितीय-तृतीय भेद से त्रिविध पुरुषावतार, त्रिविध गुणावतार, पञ्चीस लीलावतार, चौदह मन्वान्तरावतार, चार युगावतार, अन्य प्रकार से फिर आवेश-प्राभञ्ज-वैभवावस्थ तथा परावस्थ भेद से चार प्रकार अवतार, ग्यारह प्राभञ्ज अवतार, एककीस वैभवावस्थ अवतार, नृसिंह-दाशरथीराम-श्रीकृष्ण भेद से तीन प्रकार परावस्थ अवतार, श्रीकृष्ण का पूर्णतमत्व, उन के ब्रज - मधुपुरी-द्वारका-गोलोक चार धाम का विचार, समस्त अवतारों से श्रीकृष्ण का माहात्म्य अधिक, अवतारों का देह देहि भेद निरासन, लीलानित्यता, लीलाओं का भेद विचार ये सब विशेष रूप से विवेचित हुए हैं। द्वितीयखण्ड में भक्तों का श्रेणी विभाग, श्रीराधिका का सर्वश्रेष्ठत्व ये सब विचार सन्निवेशित हैं। वस्तुतः

श्रीपादसनातनगोस्वामि ने “वृद्धद्वागवतामृत” ग्रन्थ में कथाच्छल से जिन सिद्धान्तों का लिपिवद्ध किया है उन्हीं को ही श्रीरूपगोस्वामि चरण ने इस ग्रंथ में प्रमाणों के द्वारा सुदृढ़ किया है। इस की श्रीलवलदेवविद्याभूषणकृत ‘सारङ्गरङ्गदा’ तथा श्रीवृन्दावनतर्कालङ्कारकृत “रसिकरङ्गदा” नामक दो टीका प्राप्त होती हैं। यह ग्रंथ विद्याभूषणकृत टीका के साथ वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई से देवनागराक्षर में, विद्याभूषणकृत टीका के साथ सानुवाद बंगाल में श्री अतुलकृष्णगोस्वामि के द्वारा, वृन्दावनचक्रवर्तीकृत टीका के साथ सानुवाद बंगाल में श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा, दोनों टीका के साथ सानुवाद बंगाल में श्रीगौरसुन्दरभागवतदर्शनाचर्य के द्वारा प्रकाशित हुआ है। साङ्गोपाङ्ग श्रीकृष्ण तत्त्व जाननेके लिये यह सर्वोपरि ग्रन्थ है।

(५) हंसदूत—यह कविवर कालिदास जी कृत “मेघदूत” की भाँति अति अद्भुत दूतकाव्य है। इस में विशेषता यह है कि यह श्रीराधागोविन्द के अप्राकृत विप्रलम्भरस का उद्घरण किया गया है। श्रीललिता जी, विरहविधुरा श्रीराधिका की दशाओं का वर्णन करती हुई एक हंस के लिये मथुरापुरी में श्रीकृष्णके पास भेज रही हैं। यदि विरहरस का अनुभव करने में इच्छा है तो इस ग्रन्थ को अवश्य देखें। इसका अवलोकन करने पर प्राकृतरस से चित्रित मेघदूत फीका पड़ जायेगा। इस में १४२ श्लोक हैं। शिखरिणी छन्द से इस की रचना की गई। यह ग्रन्थ जीवानन्दविद्यासागर के द्वारा सम्पादित नागराक्षर में, मूल तथा टीका के साथ श्रीराधाचरणगोस्वामि वृन्दावनके द्वारा नागराक्षर में, श्रीविभासप्रकाशगांगुलीमहाराय जी के द्वारा मूल-टीका तथा सानुवाद बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

(६) उद्धवसन्देश—इस में मन्दाक्रान्ता छन्द से विरचित १३१ श्लोक हैं। नायक शिरोमणि श्रीकृष्ण मथुरा से उद्धव जी को

दूत बनाकर विरहविधुरा गोपाङ्गनाओं को सान्त्वना देने के लिये भेज रहे हैं। भागवत जी में इस का सामान्य रूप से निर्देश है। उसी को स्फुट कराने के लिये श्रीरूप ने इस की रचना की। किस को किस प्रकार संवाद देकर सान्त्वना देना है तथा किस मार्ग में किस प्रकार जाना है इन सब बातों को श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को समझाया था इस में इस का सरस वर्णन है।

यह ग्रन्थ श्रीजीवानन्दविद्यासागर के द्वारा नागराक्षर में, श्री-मधुसूदन तत्त्ववाचस्पति के द्वारा “भक्तिप्रभाकार्यालय” आलाटी से टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

(७) विदग्धमाधवनाटक—इस की रचना—समाप्ति—१४५५ शकाब्द में है तथा इस में सात अंक हैं। प्रथमांक में वेणुवादन-विलास, द्वितीय में मन्मथलेख, तृतीय में राधिकासंगम, चतुर्थ में वेणुहरण, पञ्चम में श्रीराधिकाप्रसादन, षष्ठ में शरदविहार तथा सप्तम में गौरीतीर्थ में दोनों का विहार वर्णित हैं। ऐसे ही तो श्री-रूप का कवित्वमाधुर्य समस्त दिशाओं में फैला हुआ है, उस में फिर श्रीराधाकृष्ण के अनन्त सौन्दर्य माधुर्यमय रससागर की अनन्त तरंगावली से परियुक्त हो रहा है। प्रायिक और कादाचि-त्किश्लीला का समावेश कर एक नाटक रचना करने की इच्छा प्रन्थकार की पहले रही। पश्चात् सत्यभामादेवी तथा श्रीमन् महा-प्रभु की आज्ञा से दोनों नाटक की रचना की। विदग्धमाधव में ब्रजलीला का वर्णन है। इस में धीरोदात्त तथा लालित्यगुण युक्त श्रीव्रजेन्दनन्दन नायक और श्रीकृष्णभानुनन्दिनी श्रीराधा प्रधान नायिका हैं। स्वयं महाप्रभु ने इस के श्लोकों का आस्वादन किया तथा श्रीरामानन्दराय, श्रीस्वरूपगोस्वामि आदिक भक्तों को आस्वा-दन कराया। यदि अभिनय रूप से श्रीराधाकृष्ण लीलाका आस्वादन करने की इच्छा है तो श्रीरूपगोस्वामी के द्वारा विरचित इस विद-

प्रथमाय नामक नाटक का अलोकन कीजिये। यह ग्रन्थ श्रीराम-नारायणविद्यारत्न के द्वारा टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाल में, नागालक्ष्मी में निर्णयसागरप्रेस बम्बई से, श्रीसत्येन्द्रनाथसु के द्वारा वसुमती आफिस से बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

यह ग्रन्थ प्रेमानन्दरस का अत्युन्नत तरंगमय महासागररूप है। इसमें ६४ कलावारी श्रीविदग्धमाधव नायक रूपसे निर्णीत हुए हैं। इसका श्रीविश्वनाथचरणतीर्त्तजी के शिष्य श्रीकृष्णदेवसार्धभौम के द्वारा विरचित टीका तथा यदुनन्दनठाकुर विरचित "रसदम्ब" नामक पद्यानुवाद है।

(८) ललितमाधवनाटक—पुरलीला को ब्रजलीला के आचरण में रखने के लिये इस की रचना हुई है। यह आकार में तथा घटनासन्निवेश में विदग्धमाधव से बृहत् है। पात्र-पात्री की संख्या भी इस में अधिक है। इस में विप्रलम्भरस का चूडन्त प्रतिपादन किया गया है और चतुर्थाङ्क में गर्भाङ्क का सन्निवेश है। पौर्णमासीदेवी ने भरतमुनि के निकट प्रार्थना कर एक अपूर्व रूपक नाटक की सृष्टि की। पश्चात् नारद जी ने उसे तुम्बुरु को दान किया और तुम्बुरु ने गन्धर्वों को सिगाया। उद्धव जी तथा पौर्णमासी के प्रयत्न से मथुरा में उस का अभिनय हुआ है। इस में ब्रजलीला का अभिनय है। विरहातुर स्वयं श्रीकृष्ण इस गर्भाङ्क के दर्शक हैं। उस में निज रूपमाधुर्य में विमोहित होकर उस का आस्वादनार्थ श्रीकृष्ण ने राधासारूप्य की वाञ्छा की। फलतः उन को गौरागरूप से अवतीर्ण होना पड़ा।

प्रथमाङ्क में—सन्ध्याकालीन विहार—असव, द्वितीय में शङ्खचूड-वध, तृतीय में श्रीकृष्ण का मयुरागमन, श्रीकृष्ण के लिये श्रीराधिका का विरह, श्रीराधिका के लिये सगियों का विरह, सगियों का पारस्परिक विरह, चतुर्थ में श्रीराधाभिसार, पञ्चम में चन्द्रावलीलाम,

पष्ठ में ललिताउपलब्धि, सप्तम में नववृन्दावनसंगम, अष्टम में नववृन्दावनविहार, नवम में चित्रदर्शन, दशम में पूर्णमनोरथ वर्णित है। इस की रचनाकाल १४५६ शकाब्द है। इस का श्रीनित्यानन्दवंशोद्भव श्रीस्वरूपगोस्वामि विरचित "प्रेमकदम्ब" नामक पद्यानुवाद है। श्रीजीवगोस्वामि जी के शिष्य श्रीराधाकृष्णदास जी टीकाकार हैं। कोई कोई इस के टीकाकार भीचक्रवर्ती जी हैं, ऐसा कहते हैं। यह ग्रन्थ मूल-टीका-अनुवाद के साथ श्रीरामनारायण-विद्यारत्न के द्वारा बंगाल में, श्रीसत्येन्द्रनाथवसु के द्वारा बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

(६) नाटकचन्द्रिका—विदग्धमाधव और ललितमाधव के लक्षण, उदाहरण तथा लक्ष्य विषयों का समन्वय के लिये इस की रचना हुई है। नाटकों का प्रत्येक (समस्त) लक्षण ललितमाधव में व्यक्त है। इसीलिये ग्रन्थकार ने इस में प्रायः सर्वत्र ललितमाधव का उदाहरण दिया है। यह ग्रन्थ भरत जी का नाट्यशास्त्र तथा शिगभूपाल का रसार्णवमुधाकरादि प्राचीन नाट्यशास्त्रों की विचारधारा से लिखा गया है। भरतमुनि के साथ अमत होने के कारण साहित्यदर्पणीय प्रक्रिया प्रायः परित्याग की गई है। नाटकों के समस्त लक्षण इस में सुन्दरता से सन्निवेश किये गये हैं। वैष्णवसमाज में नाट्यरीति ज्ञात करने में यह सर्वोच्च ग्रन्थ है। इसकी विद्याभूषण की टीका है ऐसा सुना जाता है। यह ग्रन्थ श्रीरामविहारी-सांख्यतीर्थ, काशिमबाजार निवासी के द्वारा अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

(१०) पद्यावली—इस में प्राचीन तथा ग्रन्थकार के समसामयिक १२५ जन कवियों के द्वारा विरचित ३८६ श्लोकों का समाहृत किया गया है। ग्रन्थकार के निजरचित पद्य प्रायः ३४।३५ संग्रह में हैं। श्रीरूपगोस्वामी ने निज इच्छा से पद्यों को श्रेणीबद्ध

कर के प्रकरणरूप से सन्निवेश किया है। आप उपसंहार में स्वयं सूचित करते हैं कि प्रथाकारमे सन्निवेश के कारण श्रीजयदेव अथवा विल्वभंगल आदि की कविताओं को वाद देकर, जिन के ग्रन्थान्तर में सन्निवेश नहीं है अथवा जो इतस्ततः विरार के पड़े हुए हैं अथच श्रुतिधर भक्तों के मुख से जो सुने गये हैं, उन सब का एकत्र कर हम समावेश करते हैं। इस में श्रीराजागोविन्द के विभिन्न रस की वपासना रूप श्लोकों का समावेश है। यह- ग्रन्थ मूल, टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाल में श्रीरामनारायणविद्यारत्न जी के द्वारा, डाक्टर सुशीलकुमार दे, डाका विश्वविद्यालय के द्वारा नागराक्षर में, यम्बई वेङ्कटेश्वरप्रेस से नागराक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(११) स्तवमाला—यह ग्रन्थ पहले इतस्ततः विज्ञित अवस्था में रहा परचात् श्रीपादजीवगोस्वामी ने उन सब का एकत्र मालाकार में गूँथ कर स्तवमाला नाम धरा। पहले महाप्रभु के तीन अष्टक, पश्चात् श्रीकृष्ण के १५ स्तव, श्रीराविका के ६, श्रीयुगलकिशोर जी के ४, गोविन्दविरुदावली, नन्दोत्सव से लेकर कंसवध पर्यन्त अष्टादश छन्द, श्रीगोवर्द्धनोद्धार, पुनः बस्त्रहरण, श्रीरसक्रीड़ा, स्वयमुत्प्रेक्षितलीला, रणविहता, श्रीललितोक्त तोटकाष्टक, चक्रयन्त्रादि चित्रकाव्य, गीतावली, लीलाष्टक, यमुनाष्टक, गोवर्द्धनाष्टक, दो घृणावनाष्टक, श्रीकृष्णनामाष्टक सन्निवेशित हैं। यह ग्रन्थ श्रीरामनारायणविद्यारत्न के द्वारा मूल-टीका तथा अनुवाद के साथ बंगाल में, यम्बई निर्णयसागरप्रेस से देवनागराक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(१२) सामान्यविरुदावलीलक्षण—साहित्यदर्पणकार ने विरुद का लक्षण इस प्रकार किया है “गद्यपद्यमयी राजस्तुतिर्विरुद-मुच्यते। अर्थात् गद्य पद्यमयी राजस्तुति विरुद है। जैसा कि विरुदमणिमाला। श्रीगोस्वामिचरणों ने भी राज राजेश्वर श्रीकृष्ण-

चन्द्र अथवा भगवान् श्रीगौरचन्द्र को काव्य के नायक बनाकर विरू-
 द में अनेक गुणगणिमा वर्णनमय विरुदावली की रचना की।
 वे सत्र गोविन्दविरुदावली, श्रीरामविरुदावली, गंगपालविरुदावली,
 निकुञ्जकेलिविरुदावली हैं। विरुद में छन्दों का अनक प्रकार भेद
 है। उन सब लक्षणों को ज्ञात कराने के लिये श्रीपादरूपगोस्वामि
 जी ने सामान्यविरुदावलीलक्षण नामक ग्रन्थ लिखा है। श्रीहरि-
 दासदास महोदय के द्वारा यह ग्रन्थ बंगाल में प्रकाशित हुआ है।

(१३) कृष्णभिषेक—यह ग्रन्थ श्रीहरिदामदास जी के द्वारा
 देवनागराक्षर में प्रकाशित हुआ है। श्रीकृष्ण की अभिषेकविधि
 इस से भली भाँति जानी जाती है। यह वैदिकप्रयोग से अलकृत
 हो रहा है। वैष्णवमात्र के यह परम आवश्यकीय स्मृति ग्रन्थ है।

(१४) मथुरामाहात्म्य - इस का उद्देश्य श्रीरूप सनातन जी
 की जीवनी में मैंने दिया है। सक्षेपतः ब्रजमाहात्म्य ज्ञात कराने में
 यह अत्युत्तम ग्रन्थ है। महाप्रभु के आवेरा से इस ग्रन्थ का सकलत
 हुआ है। इसमें अनेक शास्त्रप्रमाणों के द्वारा ब्रजमण्डल की महिमा
 दिखलाई गई है। श्रीहरिदासदास जी के द्वारा बंगाल में इस का
 प्रकाशन हुआ है।

(१५) निकुञ्जरहस्यस्तव—निकुञ्जविलास वर्णनात्मक ३२
 श्लोकों से यह स्तव सञ्चित किया गया है। श्रीपादराधिकानाथ गो-
 स्वामि जी ने रहस्यार्थप्रकाशिका नामक इस की टीका की। श्रीवं-
 शीयदनठाकुर महोदय के द्वारा बंगभाषा में त्रिपदीछन्द में इस का
 अनुवाद किया गया है। हाल में मैंने हिन्दी अनुवाक के साथ देवा-
 क्षर में इस का प्रकाशन किया है। ताडारवाली चण्डीची से बंगा-
 नुवाद तथा वशीयदनठाकुर जी के प्यार और श्रीराधिकानाथगो-
 स्वामी जी की टीका के साथ बंगाल में बहुत पहले यह प्रकाशित
 हुआ था।

(१६) प्रस्तुत) श्रीरावाकृष्णगणेशदीपिका-इस में दो खण्ड हैं। बृहत् और लघु। बृहत्खण्ड का रचनासमय १४७२ शकाब्द आचरणमास है। भजजनों के अनुसार श्रीकृष्ण की सेवा करने के लिये तथा भजजनों के आनुगत्य होकर सेवाप्राप्ति के लिये श्रीकृष्ण व्रत के परिकरों के आवश्यक सज्ज होकर परम आवश्यक है। इसी लिये ही श्रीपादरूपगोस्वामी जी ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। इस में सर्व्व समेत ४५८ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की महि-
मां मादृश तुच्छ व्यक्ति क्या वर्णन कर सकता है। रसिकों के समक्ष यह ग्रन्थ प्रस्तुत होकर मौजूद है। प्रेमी पाठकगण इसे आप ही आप अवगत कर लेंगे। इस का हिन्दी अनुवाद के साथ देवा-
क्षर में प्रकाशन की बहुत दिवस से इच्छा थी। आज गुरु गौरांग-
गणों की पुनीत कृपा से यह आशा फलवती हुई। इस समय इस का प्रकाशन करने का और एक प्रधान कारण यह है कि-यह ग्रन्थ लक्ष्मीविकटेश्वर कल्याण मुं.वाई में १८२८ शकाब्द, संवत् १९७३ में भाधुरचातुर्वेदिपण्डित श्रीकीर्त्तिचन्द्रशर्मा जी के द्वारा विरचित भाषानुवाद-अन्वय के साथ प्रकाशित हुआ है। बड़ी खेद की बात यह है कि प्रकाशक ने इस में से ३१६ श्लोकों को हटा कर केवल १३६ श्लोक से इस की पूर्ति की। दूसरी बात यह है कि इस के प्रारम्भ में श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु तथा नित्यानन्दप्रभु के चन्दनात्मक पहिला श्लोकों को उड़ा दिया गया तथा श्रीराधागोविन्द के चन्द-
नात्मक दूसरे श्लोक को अलग कर इस का प्रकाशन किया गया। सय से अधिक भूल यह है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन में ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामी जी के नाम का उल्लेख नहीं दिया गया है। आशा है प्रकाशक महोदय इन त्रुटियों को सुधार कर शुद्ध रूप से प्रकाशन करें। इस ग्रन्थ का इस प्रकार भ्रमात्मक प्रकाशन से गौड़ीयवैष्णव-
समाज का आन्तरिक दुःख रह गया है। इस में श्लोकों का ग्रन्थ

भी असंव्यस्त किया गया है। ४५८ श्लोकों से ३१६ श्लोकों को पृथक् कर देने पर इस ग्रन्थ की महत्ता-विलकुल उड़ गई। अस्तु पाठकगण इस का ध्यान पूर्वक अवलोकन करें। यह ग्रन्थ पहले बंगाल में कई संस्करण में बंगानुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है। श्रीपादजीवगोस्वामिकृत लघुतोषणी का उपसंहार में श्रीरूपगोस्वामी की ग्रन्थतालिका में तथा भक्तिरत्नाकर में श्रीरूप की ग्रन्थतालिका में, श्रीरूपगोस्वामी जी के द्वारा “प्रयुक्तख्यातचन्द्रिका” ग्रंथ का निर्देश देखा जाता है। अभी उस की उपलब्धि नहीं हुई है। श्रीयुक्त पुरीदास जी ने भी प्रायशः श्रीरूपगोस्वामी जी के समस्त ग्रंथ पाठभेद के साथ बंगाल में मूलमात्र प्रकाशित किया है।

परिशेष में हम मथुरा, गोघाट (लक्ष्मीगली) के निवासी पं० श्रीनारायणदेवकौशिक जी को धन्यवाद देते हैं कि आपने “श्रीलीलास्तव” और “श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका” इन दोनों ग्रन्थ के अनुवाद संशोधनकार्य में अपना अमूल्य समय लगाकर सहाय दे चिरवाधित किया। हम “श्रीसनातनगोस्वामिचरण के द्वारा विरचित “श्रीकृष्णलीलास्तव व दशमचरित”, श्रीपादरूपगोस्वामि महोदय के द्वारा विरचित “श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका”, (बृहत् तथा लघु दोनों भाग), श्रीपाद श्रीकविकर्णपूर महाशय जी के द्वारा रचित “श्रीगौरगणोद्देशदीपिका”, श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती जी के द्वारा विरचित “संकल्पकलद्रुम” तथा श्रीपाद श्रीरघुनाथदासगोस्वामिचरण के द्वारा मुरचित “श्रीब्रजविलासस्तव” इन पाँच ग्रन्थों को एक ही साथ एक ही जिल्द में सज्जित कर दिव्य पञ्चामृत रस की भाँति सानुवाद प्रकाशित कर रसिक समाज में उपस्थित करते हैं। आशा है प्रेमी रसिक समाज इस का सरस आस्वादन कर चिरवाधित करेंगे।

विनीत—

कृष्णदास (प्रकाशक)

गौडीयग्रन्थगौरवः—

ब्रजभाषा में प्रकाशित प्राचीन पुस्तकें—

- १—गदाधरभट्टजी की वाणी
- २—सूरदास मदनमोहनजी की वाणी
- ३—माधुरीवाणी (माधुरी जी कृता)
- ४—वल्लभरसिकजी की वाणी
- ५—गीतगोविन्दपद (श्रीरामरायजी कृत)
- ६—गीतगोविन्द (रसजानिवैष्णवदासजीकृत)
- ७—हरिलीला (ब्रह्मगोपालजीकृता)
- ८—श्रीचैतन्यचरितामृत (श्रीसुयलक्ष्यामजीकृत)
- ९—वैष्णववन्दना (भक्तनामावली) (घुन्दावनदासजीकृता)
- १०—बिलापकुसुमाञ्जलि (घुन्दावनदासजीकृता)
- ११—प्रेमभक्तिचन्द्रिका (घुन्दावनदासजीकृता)
- १२—प्रियादासजी की मन्थावली
- १३—गौराङ्गभूषणमञ्जावली (गौरगनदासजीकृता)
- १४—राधारमणरससागर (मनोहरजीकृत)
- १५—श्रीरामहरिप्रन्थावली (श्रीरामहरिजीकृता)

सानुवाद संस्कृतभाषा में—

- १—अर्चविधिः (संगृहित)
- २—प्रेमसम्पुटः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत)
- ३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता)
- ४—गोवर्द्धनशतक (विष्णुस्वामी सप्रदायाचार्य श्रीकेशवाचार्यकृत)
- ५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्दजीकृत)
- ६—नित्यक्रियापद्धति (संगृहित)
- ७—ब्रजभक्तिविलास (श्रीनारायणभट्टजीकृत)
- ८—निकुञ्जरहस्यस्तव (श्रीमद्वरुणगोस्वामिकृत)
- ९—महाप्रभुप्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मविनिर्गता)
- १०—स्मरणमङ्गलस्तोत्र (श्रीमद्वरुणगोस्वामिकृत)
- ११—नवरत्न (श्रीहरिरामन्यासजीकृत)
- १२—श्रीगोविन्दभाष्य (श्रीपादबलदेवजीकृत)

श्रीगौरगणोद्देशदीपिका और श्रीकविकर्णपूर

प्रस्तुत ग्रन्थकार श्रीपाद कविकर्णपूर गोस्वामी जी का जन्म जगदेश के काञ्चनपल्नी (काचडापाडा) नामक समृद्धिशाली ग्राम में १५ ४ स्त्रीष्टाब्द में हुआ था । पिता का नाम श्री शिवानन्दसेन था जो कि महाप्रभु गोरचन्द्र के परम अन्तरंग भक्त हुए । कविकर्णपूर का पहिला नाम पुरोदास था । उन के चैतन्यनास तथा रामदास नाम के दो आता और थे । वे दोनों भी महाप्रभु के परिकर में हुए । पतितपावन श्री प्रभु ने जीव उद्धारार्थ सन्यासाश्रम का ग्रहण कर माता की आज्ञा और भक्तों की युक्ति से नीलाचल धाम में वास कर परम मनोहर रागाभाव का आस्वादन किया । लाख लाख लोगों के साथ स्वीय श्रीकृष्ण नाम के सतीर्तन, उद्दण्डनृत्य, भक्त गाण्ठी एव श्रीचगन्ताः दर्शनादि में वे दिन का समय व्यपन करते थे तथा रात्रिमें स्वरूप, श्रीरामराय आदि परम अन्तरंग भक्तों के द्वारा रागाभाव का आस्वादन करते थे । श्रीकृष्ण के मथुरा गमन में श्रीरात्रिनाची की जो निरह दशा हाता थी आप निरन्तर उन्ही भाव में आनिष्ट रहते थे । आप के अग्रतीर्ण होने का प्रधान कारण तो इस रागाभाव का आस्वादन करना था । आप निरन्तर हाय हताश करत हुए रह उठते थे कहीं मेरे प्राणनाथ ? कहीं श्रीब्रजेन्द्रनन्दन ? कहीं जाऊँ कहीं पाऊँ, कौन उनका न्देश कहेगा । उनके बिना मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है, प्राण फूटता जा रहा है । यह दशा अति चमत्कार थी । आहार नहीं, निद्रा नहीं, वे निरन्तर व्याकुल रहत थे । कभी तो प्रेम विकार से कूर्माकार हो जाते थे । कभी वे तपायमान सुरणपिण्ड की भाँति श्रीश्रङ्ग वन जाता था । कभी वे हाथ पाँव के जाड (सन्धि) खुल जाने के कारण दीर्घाकार हो जात थे । बलिहारी प्रेम की परकाष्ठा, बलिहारी रागाभाव का आस्वादन, इसीलिये ही वे तो महाप्रभु नाम से प्रसिद्ध हुए । गुण्डिचायात्रा में जगन्नाथदेव के रथाम में आप

परिकरो से वेष्टित होकर मधुर नृत्य विनोद करते थे। उनका रथाप्र नर्तन अति अद्भुत था। रथ-यात्रा उपलक्ष में प्रभु का दर्शन तथा नृत्य विहार देखने के लिये प्रति वर्ष गौडदेश से हजारों श्रद्धे-
तादि भक्त गण शिवानन्दसेन की अध्यक्षता में आते थे। उन सब का मार्ग समाधान का भार प्रायः शिवानन्द के ऊपर रहता था। एक बार रथ-यात्रा के समय शिवानन्दसेन ने गौडदेश से आकर महा-
प्रभु का दर्शन किया। संग में उनकी गर्भवती पत्नी भी थी। प्रभु ने कहा शिवानन्द ! अब के तुम्हारा एक आश्चर्य पुत्र होगा। उस का नाम परमानन्ददास रखना। अतः पुरी में जन्म होने के कारण उनको सब कोई पुरीदास भी कहा करते थे। कुछ काल पश्चात् जब कर्णपूर ५ वर्ष वयस के थे उन के पिता ने हजारों भक्तों के बीच गौडदेश से आकर महाप्रभु का दर्शन किया। संग में बालक पुरीदास रहे। बालक महाप्रभु का दर्शन कर खेलते हुए उनके चरण में गिर गया। प्रभु ने कहा—परमानन्द ! हरि वह अर्थात् हरि कहो। बालक ने कुछ नहीं बोला। प्रभु ने स्वरूप से कहा, हे स्वरूप ! मैंने जगत् में हरिनाम की घोषणा की। सिंह व्याघ्र को भी हरि कहला कर नचाया। परन्तु बड़ी आश्चर्य की बात यह है कि यह शिवानन्द का पुत्र हरि नाम नहीं लेता।

स्वरूप ने कहा—प्रभु ! इसने आप के नाम को मन्त्र रूप मान लिया है। इसलिये आप के कहने पर भी वह नहीं कहता। बालक देखते देखते प्रभु के चरण का अंगूठा चूसने लगा। प्रभु उसके मुख में अंगूठा रख कर कहने लगे अब तो कुछ कहो। उस समय अपठित बालक ने कहा—

श्रवसो कुन्तलयमक्षोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।

वृन्दावनरमणीना मण्डनमखिल हरिर्जयति ॥

अर्थात्—ब्रजरमणियों के अखिल भूषण स्वरूप श्रीहरि की जय

हो। जो उनके कर्णों में नीलकमल, नेत्रों में काजर एवं वक्षः में इन्द्र-नीलमणिहार स्वरूप हैं। बालक के मुख से इस प्रकार श्रद्धाभुत श्लोक सुन कर भक्तगण परम विस्मित हो गये। प्रभु ने परम प्रसन्न होकर तब से उनका नाम कविकर्णपुर रखा। अंगुष्ठ लेहन के झल से प्रभु ने उन्हें निज शक्ति सञ्चार कर कवि मुकुटमणि बना दिया। इसके पश्चात् पुरीदासजी प्रभु कृपा से उनके परिकरों में महान् पंडित कविमुकुटमणि हुए। इस विषय की साक्षी उन के द्वारा विरचित श्रीआनन्द घृन्दावन-चम्पू है। ये पहले ब्रज में गुणचूड़ा सखी रहे। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ सकल ये हैं—(१) श्रीचैतन्यचन्द्रोदय-नाटक, (२) आनन्दघृन्दावनचम्पू, (३) श्रीचैतन्य-चरितमहा-काव्य, (४) प्रस्तुत श्रीगौरगणोद्देशदीपिका, (५) कृष्णान्धिकौ-मुदी, (६) अलङ्कारकौस्तुभ, (७) आर्याशतक।

(१) श्रीचैतन्यचन्द्रोदय नाटक—इस की रचना १४६४ श-फाब्द में हुई थी। महाप्रभु के अप्रकट होने के पश्चात् उनके विरह से पीड़ित उड्डिष्या के राजा श्रीप्रतापरुद्र जी की आज्ञा से इस नाटक का अभिनय हुआ था। इस में १० अङ्क हैं। अभिनय रूप से प्रभु-लीला का वर्णन होने का कारण यह ग्रन्थ सर्व चित्ताकर्षक हो रहा है। इस की परिपाटी अति मनोहर है। अभिनयरूप से प्रभु-लीला का आस्वादन करने वालों के लिये यह परम उपादेय ग्रन्थ है। इस में फिर गर्भाङ्क अति उपादेय वस्तु है। तृतीयअङ्क में गर्भाङ्क का निवेदन है। उस में प्रभु ने अद्वैतादि भक्तों के साथ ब्रजविहारी श्री-कृष्ण की दान-लीला का अनुकरण किया है। स्वयं आप राधिका बने, अद्वैत आचार्य्य को श्रीकृष्ण तथा श्रीवासपंडित को नारद व-नाया अन्यान्य भक्तगणों ने अन्यान्यरूप धारण किये। यह ग्रन्थ धन्वई से देवाक्षर में प्रकाशित हो चुका है। सानुवाद बंगाल में भी इस का प्रकाशन हो गया है।

(२) आनन्दवृन्दावनचम्पू—यह महाप्रभु की करुणाशक्ति से उत्थित वाग्निभूती रूप है। इस में २० स्तवक हैं। जिन में श्रीकृष्ण जन्म से लेकर रासलीला पर्यन्त अधिकन्तु होरीलीला का वर्णन है। दश-मस्कन्ध के पूर्वार्द्ध व्रजलीला का क्रम से यह ग्रन्थ निर्माण किया गया है। प्रथमस्तवक में श्रीवृन्दावन का वर्णन है। यह ग्रन्थ संस्कृत साहित्य भण्डार में सर्वोपरि है। पण्डित समाज में तथा भागवत वक्ताओं के समाज में इसकी परम प्रसिद्धि है। अधिक योलना पृष्ठपेशण मात्र है। वम्बई से देवाचर में यह ग्रन्थ पुस्तकालय में तथा मथुरा से खोला पत्रागार में श्रीचन्द्रवर्ती जी की सुतवर्तिनी टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है।

(३) श्रीचैतन्यचरितमहामय—गिरिधर छन्दोमय २० सर्गों में इस की रचना की गई है। महाप्रभु के अन्तर्धान के ६ वत्सर पश्चात् अर्थात् १४६४ शकाब्द में इस ग्रन्थ की समाप्ति हुई। प्रभु के पापद प्रवर, हनुमान् जी के अवतार श्रीमुरारिगुप्त विरचित कवचा का आधार लेकर इस की रचना की गई है। महाप्रभु का चरित्र जानने में यह अति अपूर्व ग्रन्थ है। इस का प्रकाशन बंगाल में हो चुका है।

(४) कृष्णान्धकौमुदी—यह ग्रन्थ अष्टकालीन लीला स्मरण के लिये परम उपयोगी है। श्रीराधागोविन्द की अष्टकालीन दैनन्दिनी लीला इस में सुन्दर रूप से वर्णन की गई है। इस की रचना परिपाटी भी अति अद्भुत है। श्रीयुक्त हरिदास दास जी के द्वारा बंगाल में इस का प्रकाशन हो गया है।

(५) अलङ्कारकौस्तुभ—यह काव्यप्रकाश तथा साहित्यदर्पण की भाँति एक अलङ्कार ग्रन्थ है। इस में विशेषता यह है कि श्रीराधा गोविन्द सम्बन्धी अप्राकृत रस को लेकर चित्रण किया गया है। इस में १० किरण हैं। प्रथम किरण में काव्य का सामान्य लक्षण

और विचार, द्वितीय में शब्दशक्ति अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनादि
वृत्ति का वर्णन, तृतीय में ध्वनि का निर्णय, चतुर्थ में गुणीभूत-
व्यङ्ग्य का वर्णन, पञ्चम में रम परिपाटी, षष्ठ में गुण का विवे-
चन, सप्तम में शब्दालङ्कार, अष्टम में अर्थालङ्कार समूह, नवम में
रीति का वर्णन, दशमकिरण में काव्य के दोषों का कथन है। यह
ग्रन्थ श्रीराधागोविन्द की रसरीति जानने में अति अद्भुत है।
बंगाल में श्रीचक्रवर्ती कृत सुचोविनी टीका तथा बंगानुपाद के
साथ यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। बम्बई निर्णयसागर से जो
अलङ्कारकौस्तुभ छपा है वह दूसरा है तथा उस के रचयिता कोई
विश्वेश्वर परिहृत है।

(६) आर्यशतक—यह ग्रन्थ आर्या नामक मात्रावृत्त के द्वारा
११६ श्लोको में विरचित है। इस में धीरललित श्रीकृष्ण की
गुणावली का वर्णन है। इस को स्तुतिकव्य भी कहा जा सकता
है। नवद्वीप निवामी श्रीयुक्त हरिदासदास महाशय के द्वारा इसका
प्रकाशन हो चुका है।

(७) श्रीगौराणोदेशगीपिका—इस में प्रज के परिकर
महाप्रभु लीला में जिस जिस परिकर के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, उन
का उद्देश्य किया गया है। बंगाल में यह ग्रन्थ कई संस्करणों में प्र-
काशित हो चुका है। परन्तु एतद्देशवासी महाप्रभु के भक्त व प्रेमी-
रसिकों के लिये यह विषय दुरुह रहा। बहुत दिन से इस को हिन्दी
अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा थी। गुरु-
गौराङ्गणों की कृपा मे उस आश की भी पूर्ति हुई।



श्रीसङ्कल्पकल्पद्रुम तथा श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती जी

प्रस्तुत ग्रन्थकार महामहोपाध्याय श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती जी का १५७६ शाक में मतान्तर १५८६ शाक में वंगदेश के मूर्शिदाबाद जिला सागरदीधि थाना के अधीन देवग्राम में जन्म हुआ था। उन के पिता का नाम श्रीनारायणचक्रवर्ती जी है। विश्वनाथ जी ने बाल्यकाल में प्राथमिक पाठ शेष कर सैदाबाद में आकर भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया। इस सङ्कल्पकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में आप ने अपनी गुरु प्रणाली का इस प्रकार उद्देश्य किया कि—बालुचर गा-म्भीला निवासी श्रीनरोत्तमठाकुर जी की शाखा श्रीकृष्णचरणचक्रवर्ती उन का परमगुरु तथा उनके पुत्र श्रीधरमणचक्रवर्ती जी दीक्षारु हैं। श्रीकृष्णचरण, सैदाबाद निवासी श्रीरामकृष्ण आचार्य के पुत्र बालुचर गंगानारायण चक्रवर्ती के दत्तपुत्र थे। वे परिणत वयस में सैदाबाद में वास कर भक्तिशास्त्र की अध्यापना करते थे। इन्हीं के पास विश्वनाथ जी ने श्रीभागवतादि भक्तिग्रन्थों का अध्ययन किया। ऐसा कहा जाता है कि यहाँ ही बैठ कर उन्होंने बिन्दु, किरण, कण आदिक ग्रन्थ का तथा अलङ्कारकौस्तुभ की टीका का निर्माण किया। अप्राप्त वयस में यद्यपि उन ने दारपरि-ग्रह किया था तां भी उस में वे बिन्दुमात्र आकर्षित नहीं हुए। परि-शेष में सकत परित्याग कर घृन्दावन के पथिक बन। घृन्दावन में आकर तत्कालीन वैष्णवसमाज के कण्ठधार हुए तथा बहुत वैष्णव-ग्रन्थों का निर्माण और बहुत वैष्णवग्रन्थों की टीका कर वैष्णव समाज का प्रचुर कल्याण साधन किया। उन का वेशाश्रय का नाम हरिवल्लभ था। वे प्रगाढ़ पण्डित, महादार्शनिक, परम भक्त, महान् रसवेत्ता, श्रेष्ठ कवि, वैष्णवचूणामार्ण, तत्कालीन् गौडीय वैष्ण-वों के अध्यक्ष रूप रहे। उस समय उन के नाम से यह श्लोक प्रसिद्ध हुआ है कि—

विश्वस्य नायरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात् ।

भक्तचक्रे वर्तितत्वात् चक्रवर्त्यारययाऽभवत् ॥

अर्थात् भक्ति मार्ग दिग्गजाने के कारण विश्व का नाय रूप तथा भक्तिचक्र में वर्तित रहने के कारण चक्रवर्त्ती उन का नाम पड़ा । वे जहाँ बैठ कर श्रीभागवत लिखते थे, वहाँ वर्षा जल नहीं पड़ता था । उन के उत्तर काल में गोवर्द्धन के सिद्ध कृष्णदास बाबाजी महाशय ने मानसगंगा में डूब कर-तीन-चार दिन पीछे श्रीचक्र-वर्त्तिपाद लिखित पुस्तक का जल स्पर्श रहित अवस्था में संप्रह किया था । श्रीचक्रवर्त्ती जी ने अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थ का निर्माण कर वैष्णव समाज का प्रचुर उपकार किया । वे श्रीरूपगोस्वामि जी के अवतार माने जाते हैं । उन के द्वारा रचित मूलग्रन्थ—(१) श्रीकृष्ण-भाष्यनामृत, (२) श्रीगौराङ्गलीलामृत, (३) ऐश्वर्यकादम्बिनी, (४) माधुर्यकादम्बिनी, (५) स्तवामृतलहरी, (६) भक्तिसामृतसिन्धुबिन्दु, (७) उज्ज्वलीलमणिकिरण, (८) भागवतामृतकण, (९) रागवर्त्मचन्द्रिका, (१०) गौरगणचन्द्रिका, (११) चमत्कारचन्द्रिका, (१२) प्रेमसम्पूट, (१३) ब्रजरीतिचिन्तामणि, (१४) क्षणदागीतचिन्तामणि । टीकाग्रन्थ—(१) सप्तम श्रीभागवत की “सारार्थदर्शिनी” (२) गीता की “सारार्थवर्षिणी” (३) उज्ज्वलीलमणि की “आनन्दचन्द्रिका”, (४) भक्तिसामृतसिन्धु की “भक्तिसारप्रदर्शिनी”, (५) गोपाल-तापनी की “भक्तहर्षिणी”, (६) ब्रह्मसंहिता की टीका, (७) दानकेलिकौमुदी की “महतो” टीका, (८) आनन्दचन्द्रावनचम्पू की “सुखवर्त्तिनी”, (९) अलङ्कारकौस्तुभ की “सुबोधिनी, (१०) हंसदूत की टीका, (११) श्रीचैतन्यचरितामृत की टीका, (१२) प्रेमभक्ति-चन्द्रिका की टीका इत्यादि ।

(१) श्रीकृष्णभाष्यनामृत—यह महाकाव्य मानस स्मरणोप-योगी श्रीराधागोविन्द का अप्रकालीय लीलात्मक है । इस में २०

सर्ग तथा सर्प ममेत १३०६ श्लोक हैं। १६०१ शाक में इस महाकाव्य की रचना हुई थी। इस ग्रन्थ में शिल्पशब्दों का प्रचुर प्रयोग रहने पर भी भीतर निगूढ़ शृङ्गाररस को न्यञ्जित किया गया है। अष्टमाल स्मरण प्रिय में यह अद्वितीय ग्रन्थ है। ताडशास्त्रिपति भक्तप्रवर घनमाली रायबहादुर की सहायता से यह 'ग्रन्थ ताडशास्त्रिपति घनमाली घृन्दायन में देवनागरी तथा उगाक्षर में प्रकाशित हो चुका है।

(७) गौराङ्गलीलामृत—महाप्रभु की अष्टकालीन लीलात्मक श्लोकों से विरचित यह अति सुद्वारा ग्रन्थ है।

(३) ऐश्वर्यकादम्बिनी—इस का नाम स्वयं ग्रन्थकार ने निरचित माधुर्यकादम्बिनी में उठाया है। इस में द्वैताद्वैतवाद का विचार है। अभी तक इस ग्रन्थ का अनुसन्धान नहीं प्राप्त है।

(४) माधुर्यकादम्बिनी—इस में आठ परिच्छेद अर्थात् आठ अमृतवृष्टि है। माधुर्यकादम्बिनी तो माधुर्यकादम्बिनी अर्थात् माधुर्य की घनघटा है। उगाक्षर में सानुवाद कई संस्करण में यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है। घृन्दायन चार सम्प्रदाय के श्रीरामदास शास्त्री जी के द्वारा देवाक्षर में सानुवाद प्रकाशित भी हुआ है। इस में श्रीरादरूपगोस्वामि के द्वारा निरचित भक्तिरसामृतसिन्धु के अन्तर्गत भक्तिभूमिका का सबिशेष सुन्दर रूप से वर्णन है। प्रेमी रसिक इस ग्रन्थ का अग्रस्थ अवलोकन करेंगे।

(५) श्रीस्तवामृतलहरी—इस में २८ स्तव का सञ्चय है। जो कि स्तवावली तथा स्तवमाला के अनुकरण में निरचित हुई है।

(१) श्रीगुरुतत्त्वाष्टक, (७) श्रीगुरुचरण स्मरणष्टक, (३) श्रीपरमगुरुष्टक, (४) परात्परगुरुष्टक, (५) श्रीनरोत्तमठाकुर महाशयाष्टक, (६) श्रीलोकनाथाष्टक, (७) श्रीशचीतन्दनाष्टक, (८) श्रीस्वरूपचरितामृत, (९) स्वप्नविलासामृत, (१०) श्री

गोपालदेवाष्टक, (११) श्रीमदनगोपालदेवाष्टक, (१२) श्रीगोविन्दाष्टक, (१३) श्रीगोपीनाथाष्टक, (१४) श्रीगोकुलानन्दगोविन्दाष्टक, (१५) स्वयंभगवत्नाष्टक, (१६) जगन्मोहनाष्टक, (१७) अनुरागवल्ली, (१८) श्रीवृन्दाष्टक, (१९) श्रीराधाध्यान, (२०) श्रीरूपचिन्तामणि, (२१) सकल्पकल्पद्रुम, (प्रस्तुत) (२२) निकुञ्जरेलिविस्तारवल्ली, (२३) श्रीसुरतकथामृत, (२४) नन्दीश्वराष्टक, (२५) वृन्दावनाष्टक, (२६) गोवर्द्धनाष्टक, (२७) श्रीकृष्णकुरङ्गाष्टक, (२८) गीतवली है। देवाक्षर में इस का प्रकाशन हो गया है।

(६) भक्तिरसामृतसिन्धुविन्दु—यह भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ का सारगर्भ सक्षेप सरल सरसूत गद्य में विरचित है। इस का देवाक्षर में प्रकाशन चारसम्प्रदाय वृन्दायन में हो गया है।

(७) उज्ज्वलनीलमणिकिरण—यह भी उज्ज्वलनीलमणि का सारगर्भ सक्षेप सरल गद्य ग्रन्थ है।

(८) भागवतामृतकण—यह लघुभागवतामृत ग्रन्थ का सारगर्भ सक्षेप सरल गद्य ग्रन्थ है। चार सम्प्रदाय वृन्दायन से सानुवाद देवाक्षर में प्रकाशित हुआ है।

(९) रागवर्त्मचन्द्रिका—रागमार्ग में जाने वाले रसिकसाधकों का यह ग्रन्थ अति सुन्दर तथा परमोपयोगी है। इस में रागमार्ग का सुन्दर सरल भाषा से विचार किया गया है। देवाक्षर में इस का प्रकाशन करने की इच्छा है।

(१०) गौराङ्गचन्द्रिका—इस में पहले अहं प्रहोपासना का निराकरण है।

(११) चमत्कारचन्द्रिका—यह श्रीराधागोविन्द की कौतुहल लीला रस से भरा हुआ है। श्रीकृष्ण विविधरूप धारण कर विविध छल से स्वामिनी जी से मिले हैं इस का इस में सरस वर्णन

है। ताडारामन्दिर-वृन्दावन से वंगान्तर में यह छप चुका है।

(१२) प्रेमसम्पूट-इस में श्रीकृष्ण ने देवाङ्गना रूप बन कर प्रिया जी से प्रेम की शिक्षा ली। अन्न के रसमण्डलि इस लीला का अनुकरण करते हैं। इस का देन चक्रवर्त्ती जी हैं। मैंने सानु-धाद देवाक्षर में इस का प्रकाशन किया है।

(१३) प्रजरीतिचिन्तामणि-आनन्द-वृन्दावनचम्पू का भाव लेकर संक्षेप-मञ्जाक्षर संस्कृत में रीतिगुण से इस की रचना की गई है। इस में तन्दीश्वर (मन्दग्राम) का सुन्दर वर्णन है। वंगान्तर में प्रकाशन हो गया है।

(१४) क्षणदोगीतिचिन्तामणि-इस में प्रतिपदा से लेकर प्रतिपदा पर्यन्त दोनों पक्ष की प्रत्येक तिथि में क्रम से अष्टकाल लीला का वर्णन है। यह वंगभाषा के पद्यों में संगृहीत है। इस में चक्रवर्त्ती जी के अधिकार पद्य हैं। पद्यों में अपना नाम हरिवल्लभ रखा है।

उन के द्वारा विरचित श्रीभागवत की टीका का नाम सारार्थ-दर्शिनी है। परिष्ठत समाज में इस की परम प्रसिद्धि है। चक्रवर्त्ती की टीका सब की आदरणीया इस लिये है कि यह परम रसमयी व्याख्या-अलङ्कार से समुक्त है। इस से भागवतरस का भली भाँति अनुभव होता है। यह देवाक्षर में अष्टटीका के साथ ताडारामन्दिर-वृन्दावन से प्रकाशित हुआ है। वर्तमान इस का वितरण शेष प्राय हो गया है। गीता की सारार्थवर्षिणी-टीका भी अति रसमयी भक्तिपक्षीय व्याख्या के द्वारा अलङ्कृत की गई है। रसमयी व्याख्या में यह सर्वोपरि है। देवाक्षर में इस का प्रकाशन परम आवश्यक है। चक्रवर्त्ती जी की सम्स्त टीकाएँ प्रायः वंगान्तर में प्रकाशित हो गई हैं। इन के द्वारा स्थापित विमह श्रीगोकुलानन्द जी वृन्दावन में विराजमान हैं। माघी शुक्ला पञ्चमी के दिवस श्रीराधाकुण्ड में

श्रीचक्रवर्त्ती जी अन्तर्हित हुए हैं। श्री वृन्दावन, पाथरपुर में इन की समाधि थी, जो वर्त्तमान गोकुलानन्द जी में अपसारित हुई है। बालुचर में इन के वशवर अभी भी मौजूद हैं। चक्रवर्त्ती जी ने रसिक समाज-वैष्णव समाज का महान् उपकार किया है। जीव-गोस्वामी जी के पश्चात् गौडीयसम्प्रदाय का जो पतनारम्भ हो उठा था उस का पुनः उद्धार चक्रवर्त्ती जी ने किया है।

गौडीयवैष्णव समाज में श्रीराधागोविन्द की परकीया उपासना की पद्धति महाप्रभु से लेकर अब तक चली आ रही है। पद्मपुराण के पातालखण्ड के वृन्दावनमाहात्म्य, सन्तकुमार-सहिता के छत्तीसमों पटल, भागवतादि निखिल शास्त्रों से तथा रस के आदि आचार्य-जयदेव आदिक महानुभावों के साहित्य और चण्डीदास-विद्यापति आदिक प्राचीन रसिकों की बालियों से यह सुसिद्ध है। श्रीजीव गोस्वामी जी के पश्चात् यह उपासना कुछ शिथिल ही पड़ गई थी। परन्तु श्रीचक्रवर्त्ती जी ने निज अकाट्य युक्ति व शास्त्र प्रमाणों से उस को सुदृढ़ कर दिया। महाप्रभु ने इस उपासना को परम स्थान दिया तथा श्रीरूप, सनातनादि गोस्वामियों के द्वारा उस का उद्घाटन करवाया। ऐसा कहा जाता है कि चक्रवर्त्ती के समय में कुछ पण्डितगणों ने परकीया उपासना के विषय को लेकर महान् बाध बितण्डा किया। परन्तु चक्रवर्त्ती जी ने निज प्रगाढ़ विद्वत्ता और अकाट्य युक्ति प्रमाणों के द्वारा उस को विचार के द्वारा परास्त कर सुदृढ़ कर दिया। पण्डितों ने वृन्दावन में एकान्त में भ्रमणकारी चक्रवर्त्ती के प्राणनारायण उग्रत हुए। परन्तु उन्होंने देखा वहाँ पर चक्रवर्त्ती जी नहीं हैं। कोई एक ब्रजमालिका निज दो तीन-सहचरी के साथ पुण्य वीन रही थी। पण्डितों ने पूछा ! लाली ! यहाँ चक्रवर्त्ती महात्मा को तुम ने देखा क्या ? बालिका ने कहा-देखा तो था, परन्तु कहाँ चल दिये होंगे। बालिका का कटाक्ष-भावभङ्गि-मन्दहास्य-

सौन्दर्य से परिडतगण मुग्व हो गये । उन्हें सेन का हृदय कोमल हो गया । परिडतों ने परिचय पूछने पर वालिका ने कहा मैं स्वामिनी श्री राधिका की सहचरी हूँ । इस समय स्वामिनी जी निज श्वसुरालय जावट में विराजमान हैं । उनसे पुष्प चयनार्थ मुझे भेजी है । ऐसी कहती कहती वह अन्तर्धान हो गई तथा निज पूर्वस्वरूप चक्रवर्ती रूप में लुप्ट हो गई । परिडतों ने चक्रवर्ती के धरण में गिर कर क्षमा प्रार्थना की । चक्रवर्ती जी के विषय में इस प्रकार अनेक आश्चर्य बातें सुनने में आती हैं । उनके द्वारा विरचित यह संकल्पकल्पद्रुम नामक ग्रन्थरत्न रसिका के समक्ष सानुवाद उपस्थित है । रसिक-समाज इसे कठहार कर लें तो मेरा यह परिश्रम सार्थक हो जायें । अष्टकाल स्मरण की परिपाटी से यह ग्रन्थ लिखा गया है । पूज्य गोस्वामी श्रीरासबिहारी शास्त्री महोदय ने अनुवाद का सशोधन कर अत्यन्त उपकार किया है ।



श्रीव्रजविलासस्तव तथा श्रीदासगोस्वामी जी

आनुमानिक १४१६ शकाब्दी में बंगदेश हुगलिजिला अन्तर्गत कृष्णपुरग्राम में हिरण्यमजुमदार के अनुज गोवर्द्धन के पुत्ररूप से प्रत्यकार श्रीपादरघुनाथदास जी का आविर्भाव हुआ था। इन के पिता-पितृव्य यद्यपि शुद्ध वैष्णव नहीं थे तो भी वैष्णव परापर परम सज्जन रहे। वे सप्रभात तालुक के बारलक्ष रुपैया के जागीरदार थे। श्रीरघुनाथ के दीक्षागुरु यदुनन्दन आचार्य्य हैं, जो कि श्रीअद्वैतप्रभु की शान्ता में हुए। अद्वैतप्रभु के वे अन्तरंग शिष्य होने के कारण श्रीचैतन्यगत प्राण रहे। श्रीरघुनाथ के वे कुलगुरु तथा कुलपुरोहित थे। चैतन्यचरितामृत में कहा है श्रीरघुनाथ नै बाल्यकाल में श्रीहरिदासठाकुर का संग और कृपालाभ प्राप्ति की। परम पावन प्रेमावतार श्रीमन् महाप्रभु जब रामकैलि होकर कानाह-नाटशाला से प्रत्यावर्त्तन कर शान्तिपुर श्रीअद्वैतप्रभु के घर पर आये, उस समय प्रभु के साथ रघु का साक्षात्कार हुआ। उन ने प्रभु का प्रेमावेश देख तप्तकाञ्चन की भाँति अङ्ग कान्ति वाले उन प्रभु के चरणों में आत्म समर्पण किया तथा अद्वैतप्रभु के द्वारा उच्छिष्ट प्राप्त होकर वे परम कृतार्थ हुए। उसी समय से उन का पूर्व भाव उच्छलित हो उठा। अब वे स्थिर न हो सके। नीलाचल जाकर प्रभु से मिलने के लिये व्याकुल हो गये। अब तो रघुनाथ अस्थिर होकर बार बार भागने लगे। पिता जी दूर से उन को धर लाते थे। इस प्रकार रघु का बार-बार पलायन देख कर एक दिवस उन की माता ने पिता से कहा—पुत्र को उन्माद हो गया है, उसे बाँध कर रखना चाहिये। पिता जी खेद प्राप्त होकर कहने लगे जब इन्द्र सम ऐश्वर्य्य और अप्सरा सम नारी बाँध नहीं सके, तब रज्जु-बन्धन से किस प्रकार बाँध सकता है। जन्मदाता पिता पुत्र का प्रारब्ध नहीं मिटा सकता है। इस के ऊपर चैतन्यचन्द्र की कृपा हुई है।

चैतन्यचन्द्र के पागल को कौन रोक सकता है। उस के परचात् नित्यानन्द प्रभु के साथ पाणिहाटी में रघुनाथ का मिलन हुआ। प्रभु ने रघु को सान्त्वना दी और उन से चिढ़ा महोत्सव कराया। रघुने राघव परिडत के द्वारा निज भाव व्यक्त कराया। हे प्रभु ! मैं बार-बार महाप्रभु के पास जाने के लिये पलायन करता हूँ, परन्तु पिता माता घर लौटा लाते हैं। मैं कर्त्तव्य शून्य हो रहा हूँ, आप की कृपा ही एक मात्र गौरचन्द्र प्राप्ति का सम्बल है। आप कृपा कीजिये। जिस से शीघ्र ही गौरचन्द्र के चरण प्राप्त करूँ। नित्यानन्द प्रभु ने निकट बुला कर कहा—रघुनाथ ! तुम ने जो चिढ़ा-महोत्सव कराया है, उसे महाप्रभु ने स्वयं आकर ग्रहण किया है। तुम पर कृपा करने के लिये ही उन का यहाँ आगमन हुआ है। जाओ निश्चिन्त होकर घर में रहो। अचिरात् प्रभु के चरण प्राप्त करोगे। श्रीरघु नित्यानन्दप्रभु का कृपा आशीर्वाद लेकर घर आये। “किस प्रकार महाप्रभु से मिलूँगा” निरन्तर उसी की चेष्टा रही। उस दिन से रघुनाथ घर के बाहर दुर्गामण्डप में शयन करने लगे। चार ओर रक्तकण्ण। किस प्रकार पलायन कर ‘सकूँ’ इस सोच में हैं। एक दिवस रघु के गुरुदेव यदुनन्दन आचार्य्य वहाँ आये। उन का ठाकुर सेवक सेवा छोड़ कर स्वतन्त्र हो गया था। उसी को वश में लाने के लिये रघु के पिता से निवेदन कर रघु को संग में लेकर चल दिये। रघु गुरुदेव के साथ कुछ दूर गये और “मैं उस भृत्य को वश में करादूँगा। आप निश्चिन्त हो घर जाइये” इस प्रकार कह कर वहाँ से फिर आये। तब रघुनाथ ने मन में विचार किया—यह गृह छोड़ने का सुन्दर अवसर है। अथ वहाँ से पूर्व मुख होकर नीलाचल के लिये चल दिये। मार्ग में इधर उधर देखते हुए प्रसिद्ध मार्ग छोड़ वन पथ में पन्द्रह कोस चल कर किसी गोप की घगीची में रहे। उस ने कुछ दूध पिलाया। इधर रघुनाथ के

चले जानेका महान् कोलाहल उठा। पिता ने ढूँढ़ने के लिये दश व्यक्ति भेजे तथा शिवानन्द जी के निकट विनती के साथ पत्र दिया। शिवानन्द जी भक्तों के साथ नीलाचल जा रहे थे। रघु को ढूँढ़ने वाले लोगों ने रघु को नहीं पाकर फिर आये। इधर रघु ने कभी चर्वण, कभी दुग्धपान, कभी रन्धन और कभी उपवास कर प्राण-मात्र धारण करते हुए बारह दिन में नीलाचल पहुँचे। मार्ग में तीन दिन मात्र भोजन किया था। नीलाचल में प्रभु भक्तगण के साथ विराजमान हैं। रघु दूर से प्रभु के चरण में गिरे। प्रभु प्रसन्न हुए। रघु से कहा अच्छा ही हुआ। समर्थ प्रभु ने तुम को विषय गर्त से निकाला है। रघुनाथ को मलिन देख कर प्रभु ने स्वरूप गोस्वामी से “स्वरूप ! अब से रघु तुम्हारा हुआ। तुम इस को अपने पास रखो” ऐसा कह कर रघु का हाथ देकर स्वरूप गोस्वामी को सौंपा। तब से ‘स्वरूप के रघु’ ऐसी सब कोई कहने लगे। श्री-रघु पहले कुछ दिन सिंहद्वार में खड़े होकर जो कुछ भिक्षा मिलती थी, उस को गृहण करते थे। प्रभु ने सुन कर कहा अच्छा ही है, रघु वैराग्य धर्म का पालन करता है। कुछ दिन के पीछे उस वृत्ति को छोड़ कर छत्र में माधुक्री माँगने लगे। प्रभु ने निज गोवर्द्धन-शिला और गुञ्जमाला को रघु के लिये अर्पण किया। जिन्हे शङ्करानन्द सरस्वती जी ने वृन्दावन से लाकर प्रभु को दिया था। रघुनाथ जल, तुलसी देकर आदर के साथ सेवा करने लगे। उन का चरित्र अति विस्तृत है। विशेष जानने की इच्छा हो तो चैतन्य-चरितामृत-भक्तमालादिक ग्रन्थ देख लें। उन्होंने नीलाचल में रहकर सोलह वर्ष पर्यन्त महाप्रभु की अन्तरंग सेवा की। जब महाप्रभु ने अन्तर्धान लीला की तथा उन के शिष्यागुरु श्रीस्वरूप गोस्वामीजी का अन्तर्धान हो गया, तब वे अत्यन्त आत्महारा होकर व्याकुल भाव से गोवर्द्धन में भृगुपात करने की इच्छा से वृन्दावन

आये। घृन्दावन में आकर उन्होंने श्रीरूप-सनातन की चरणवन्दना की। दोनों भ्राता ने उन को समझा कर शरीर त्याग नहीं करने दिया तथा अपने पास में रखा। दोनों ने महाप्रभु की यावतीय अन्तरंग-बहिरंग लीला का अवलोकन उन के मुख से निरन्तर सुना। घृन्दावन में दासगोस्वामी की स्थिति व वैराग्यनिष्ठा इस प्रकार हुई। उन्होंने अन्न जल का त्याग पहले से ही तो किया था, अब केवल दो-तीन पल मात्र मट्टा पान कर शरीर धारण करने लगे। नित्य घैष्णवोंके लिये दो हजार प्रणाम, सहस्रदण्डयत्न, लक्ष नाम जप, रात्रि दिन राधाकृष्ण की मानससेवा, एक प्रहर महाप्रभु का चरित्र वर्णन, तीन सन्ध्या राधाकुण्ड में स्नान, प्रजवासी घैष्णवों का आलिङ्गन, साढ़े सात प्रहर भक्ति का साधन, केवल चारिदण्ड शयन करते थे, और वह भी कदाचित् नहीं हां पाती थी।

आप ने एक दिवस मानसिक सेवा में प्रियाप्रियतम को मानसिक खीर भोग लगा कर स्वामिनी जी का अधरामृत प्राप्त किया। उस से उन का शरीर कुछ अस्वस्थ हो गया तथा नाड़ियाँ भारी हो गईं। ऐसे ही तो वे पहले से रुग्ण रहते थे। श्रीचिट्ठल जी ने दो वैद्य लाकर उन्हें दिखाया। वैद्य ने कहा इन्होंने खीर खाई है, जिससे इन की नाड़ियाँ भारी हो रही है। सब कोई आश्चर्यान्वित हुए। चिट्ठल जी ने एकान्त में इसका रहस्य पूछा। उन ने मानसिक सेवा की बात सुनाई। रघुनाथ गोस्वामी जी ने जो उत्कट वैराग्य का याजन किया वह जगत् में परम आदरणीय महान् आदर्शरूप है। राधिकानिष्ठा में दास गोस्वामी जी का सर्वोच्चस्थान है। वे करुणारस का मूर्त्तिमान स्वरूप थे। विश्व की चरमावस्था उन्हीं के द्वारा प्रकट हुई है।

विधि मार्ग तथा रागमार्ग में भगवान की दो प्रकार की प्राप्ति है। जिसमें शास्त्र-सद् आचरणदिकों का विधान है उस को विधि उपा-

सना और जिसमें केवल लोभ ही प्रवर्तित रहता है, उसे रागमार्ग की उपासना कहते हैं। परन्तु दोनों का परस्पर कुछ ससर्ग अग्र्य रहता है। त्रिभि एव ऐसी वस्तु है जो कि अन्य उच्छृङ्खल मार्ग से साधकों के चित्त को खींच कर केवल भगवान् में लगा देती है, जिसे साधन भक्ति कहते हैं। दूसरी रागमार्ग की उपासना में रुचि ही प्रधान रहती है, जिसे प्रेमाभक्ति कहते हैं। विविध भक्ति का याजन करते हुए साधकों के चित्त में फलरूपा प्रेमामक्ति का उदय होता है। पहिले में ही कोई विविधमार्ग को छोड़ कर रागमार्ग में प्रवेश नहीं करता है। क्योंकि उस में पतन का भय और प्रत्ययाय की सम्भावना अग्र्य रहती है। पद पद में उच्छृङ्खलता भी आ जाती है। इस से इष्ट भगवत् वस्तु से अन्यत्र मनोऽभिनिवेश हो जाता है। इसी लिये सब कोई पहले शास्त्र मार्ग का अग्रलम्पन कर प्रभु की भक्ति साधना में प्रवर्तमान होते हैं। रागमार्ग में विधि की संकोचता हो जाती है। फलतः भक्त विविधमार्ग की अवस्था को छोड़ कर रागमार्ग में अपन को प्रवर्तमान करता है। जन हृदय में प्रचुर राग हो तो हम विधि को छोड़ सकते हैं। नहीं तो नहीं। राग भक्ति तो रानमदल स्वरूपा है। दूसरी विधिभक्ति उस की सुन्दर परकोटा अर्थात् गढ़ रूपा है। भक्ति कल्पवृक्ष के पत्तों का चिक्कण कोमल-सरस युक्त भीतर का अंश रागमार्ग है और कुछ कर्कश-रूखा बाहिर अंश विविधमार्ग है। जन तक रुचि उपासन नहीं होती है, तब तक सब के लिये विविधमार्ग की उपासना अवश्य कर्तव्य है। नित्य परिकर श्रीराधिकादि ब्रज-गोपियों का प्रारम्भ से ही अनुराग रहता है, जिस को रागात्मिका भक्ति कहते हैं। इस में शास्त्रयुक्ति की अपेक्षा नहीं रहती है। गौडीय वैष्णवगण प्रायशः विधिभक्ति का लेने हुए रागमार्ग में प्रवर्तित होते हैं। यहाँ प्रस्तुत विषय यह है कि ब्रज के रहस्य को अग्रगत करान के लिये श्रीरूप

सनातनादि गौड़ीय आचार्यों ने ब्रज-सम्बन्धि अनेकानेक ग्रन्थ की रचना की है। इस विषय में भक्तमालकार श्रीनामा जी ने कहा है “ब्रजभूमि-रहसि राधाकृष्ण भक्त तोष हेतु उद्धार कियो” इत्यादि।

श्रीरूपगोस्वामि चरण ने वाराहपुराण, आदिपुराण, स्कन्दपुराण आदि समस्त शास्त्रों का आधार लेकर “मथुरामहिमा” नामक एक ब्रज सम्बन्धि ग्रन्थ का आविष्कार किया है। श्रीनारायणभट्ट गोस्वामि चरण ने भी ब्रजसम्बन्धी असंख्य ग्रन्थ लिखे हैं। उन के द्वारा विरचित “ब्रजभक्तिविलास” नामक ग्रन्थ ब्रज माहात्म्य को अवगत कराने में अत्युत्तम सर्वोपरि ग्रन्थ है। जो कि हाल में ही प्रकाशित हुआ है। साथ ही साथ श्रीरघुनाथदास गोस्वामि चरण ने भी राग-मार्ग प्रवर्तित भक्त-रसिकों के लिये “ब्रजविलासस्तव” नामक इस ब्रज सम्बन्धिस्तव की रचना कर परम उपकार किया है। यह एक ऐसा ग्रन्थ है कि इसे रसिक प्रेमी कण्ठ कर लेवें तथा ब्रज में उन्हीं स्थानों में जाकर “बस बास” प्रदक्षिणादि के साथ विलाप करते हुए पाठ कर प्रणाम व वन्दना करते रहे। ग्रन्थकार ने इस स्तव के १०३ संख्यक श्लोक में ऐसा ही निर्देश किया है। उन्होंने “श्रीस्तव-अन्तर्गत १०७ श्लोकात्मक यह “ब्रजविलास” नामक स्तवरातन है, जो कि सानुवाद प्रेमी रसिकों के समक्ष उपस्थित है। पहले “स्तव-विलास” के अन्तर्गत “विलापकुसुमाञ्जली” भी श्रीवृन्दावनदास जी के द्वारा विरचित छन्दवद्ध ब्रजभाषा के साथ प्रकाशित हो गई है। “ब्रजविलासस्तव” ब्रजपरिक्रमा देने वाले निष्किञ्चन रागमार्गीय वैष्णव प्रेमियों की परम उपादेय वस्तु है। मेरी आशा तो बहुत दिनों से थी कि यह सानुवाद प्रकाशित हो। आज गुरु-गौरांगगणों की पुनीत कृपा से मेरी आशाश्रिता फलवती हुई है। श्रीवृन्दावन-निवासी पूज्य गोस्वामि श्रीरसविहारी शास्त्री महोदय ने अनुवाद

का संशोधन कर परम उपकार किया है। श्रीदासगोस्वामि के द्वारा विरचित तीन ग्रन्थ हैं। स्तवावली, मुक्ताचरित्र, दानकेलिचिन्तामणि हैं। स्तवावली में २६ स्तवों का ग्रन्थन किया गया है। (१) श्रीशचीसून्यष्टक, (२) श्रीगीराङ्गस्तवकल्पतरु, (३) मनः शिखा, (४) प्रार्थना, (५) गोवर्द्धनाश्रयदशक, (६) गोवर्द्धनवासप्रार्थनादशक, (७) श्रीराधाकुण्डाष्टक, (८) ब्रजविलासस्तव, (९) विलापकुसुमाञ्जली, (१०) प्रेमपूराभिवस्तोत्र, (११) प्रार्थना, (१२) स्थनियमदशक, (१३) श्रीराधिका-अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, (१४) श्रीराधाष्टक, (१५) प्रेमान्मोजमरन्दाख्यस्तवराज, (१६) स्वसङ्कल्पप्रकाश स्तोत्र, (१७) श्रीराधाकृष्णोज्ज्वलरसचेलि, (१८) प्रार्थनामृत, (१९) नवाष्टक, (२०) गोपालराजस्तोत्र, (२१) श्रीमदनगोपालस्तोत्र, (२२) श्रीविशाखानन्दवस्तोत्र, (२३) मुकुन्दाष्टक, (२४) उत्कण्ठादशक, (२५) नवयुवद्वन्द्वदिदृक्षाष्टक, (२६) अभीष्टप्रार्थनाष्टक, (२७) दाननिर्वर्त्तनकुण्डाष्टक, (२८) प्रार्थनाश्रयचतुर्दशक, और (२९) अभीष्टसूचन है। यह ग्रन्थ सटीक बंगालुवाद के साथ श्रीरामनारायण विद्यारत्न के द्वारा बहुरमपुर से बंगालूर में प्रकाशित है।

दूसरा मुक्ताचरित है। यह एक अद्भुत रसमय हास्य परिहास-त्मक बागविलास वैभवरूप है। श्रीकृष्ण ने कृपक वनकर मुक्ताओं का रोपण किया इस का वर्णन है। इस प्रकार की रचना परिपाटी अन्यत्र साहित्य भण्डार में अभाव है। सानुवाद बंगालूर में यह ग्रन्थ देवकीनन्दन प्रेस वृन्दावन से प्रकाशित हो चुका है। तीसरा ग्रन्थ दानकेलिचिन्तामणि है। यह भी हास्य परिहासमय श्रीराधागोविन्द की दानलीला वर्णनमय परम अद्भुत ग्रन्थ है, श्रीनवद्वीपनिवासी श्रीहरिदासदास महोदय के द्वारा यह ग्रंथ बंगालूरमें प्रकाशित हो गया है। श्रीचैतन्यचरितामृत में कविराज गोस्वामि ने ऐसा कहा

है—श्रीचैतन्यलीला रत्नसार का भांडार श्रीस्वरूप गोस्वामी हैं। उन्होंने उन लीला-रत्नों को श्रीरघुनाथ के कण्ठ में रख दिया। उन के मुख से जो कुछ सुना है उसे विस्तार पूर्वक लिख कर भक्तगणों को भेंट करता हूँ। श्रीचैतन्यचरितामृत की मिति श्रीदास गोस्वामि जी का उपदेश तथा उन के द्वारा प्रभुलीला का वर्णन है। महाप्रभु के द्वारा प्रदत्त श्रीगोषर्द्धन शिला पहिले राधाकुण्ड में पर्याप्त धृन्दायन गोकुलानन्द जी में विराजमान रही। अब यह शिला विप्रदे धृन्दायन "भागवत निवास" (रमणरेती) पण्डित बाबा के आश्रम में विराजमान हैं। प्रभु प्रसन्न होकर दासगोस्वामी जी का आदर कर के प्रदान किया था। उसे महाप्रभु हृदय में धारण करते थे तथा नयन जल से भिगेते थे, आज यह श्रीगोषर्द्धनरीला रघुनाथ के राधा गिरधारी करके वैष्णव समाज में प्रसिद्ध है।

श्रीराधाकुण्ड के मानसपावन घाट में दासगोस्वामी जी की समाधि है। प्रतिवर्ष आश्विनी शुक्ला द्वादशी तिथि में वहाँ दासगोस्वामी जी का तिरोधान उत्सव होता है। सेवा प्राकट्य और हृत्ताम्र का दिन निर्णय नामक ग्रन्थ में लिखा है—सम्बत् १५६३ में दासगोस्वामी जी का जन्म, १६ वत्सर गृहस्थिति ८ वत्सर पुरी में स्थिति तथा श्रीराधाकुण्ड में ४६ वत्सर अवस्थान है। अतः ७६ वत्सर वयस में १६३६ संवत् में उनका अन्तर्धान समय है।

—कृष्णदास।



श्री राधाकृष्णगणेशदेशदीपिका

मङ्गलाचरणम् ।

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं भक्तवृन्दसमन्वितं ।
 श्रीचैतन्यप्रभुं वन्दे नित्यानन्दसहोदितम् ॥ १ ॥
 श्रीनन्दनन्दनं वन्दे राधिकाचरणद्वयम् ।
 गोपीजनसमायुक्तं वृन्दावनमनोहरम् ॥ २ ॥

ग्रन्थारम्भः—

ये सूत्रिताः सता रत्या प्रसिद्धाः शास्त्रलोकियोः ।
 व्याक्रियन्ते परिवारास्ते वृन्दावननाथयोः ॥ ३ ॥
 मथुरामण्डले लोके ग्रंथेषु विविधेषु च ।
 पुराणे चागमादौ च तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ ४ ॥
 ते समासाद्विलिख्यन्ते स्वसुहृत्परितुष्टये ।
 आनुपूर्वी विधानेन रतिप्रथितकर्मनः ॥ ५ ॥

भक्तगणों के साथ श्रीगुरुदेव के चरण कमल तथा नित्यानन्द प्रभु के साथ अवतीर्ण श्रीचैतन्यमहाप्रभु की वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥
 वृन्दावन में मनहरणकारी, गोपीजनों से वेष्टित, श्रीनन्दनन्दन तथा श्रीराधिका के चरणकमल की वन्दना करता हूँ ॥ २ ॥

जो माधुजनों के द्वारा अनुराग के साथ संप्रण किये हुए, जो लोकपरम्परा तथा शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, मैं उन वृन्दावन के दृश श्री-राधा-गोविन्द के परिवार-समूह का नाम प्रणाली बद्ध करके घरणे करता हूँ ॥ ३ ॥

मथुरामण्डल का लोक प्रवाद तथा विविध ग्रन्थ, पुराण, आगमादि में से, फिर उनके भक्तसाधुगण के निकट जो जानकारी है, उसे

ते कृणस्य परीजारा ये जना व्रजवासिन ।

पशुपालास्तथा मित्रा वहिष्ठश्चेति ते त्रिधा ॥ ६ ॥

१। तत्र पशुपाला ॥

पशुपालास्त्रिधा वैश्या आभीरा गुर्जगस्तथा ।

गोप-वल्लभ पर्याया यद्वशसमुद्भवा ॥ ७ ॥

(क) वैश्या ॥

प्रायो गोमृत्तयो मुख्या वैश्या इति समीरिता ।

अन्येऽनुलोमजा केचिदाभीरा इति मिश्रता ॥ ८ ॥

(ख) आभीरा ॥

आगनाद्यनु तत्साम्यादाभीराश्च स्मृता इमे ।

आभीरा शूद्रजातीया गोमहिष्यादिवृत्तय ।

घोषादिशब्दपर्याया पूर्वतो न्यूनतां गता ॥ ९ ॥

निज सुहृद्गण ने प्रसन्नार्थ यथाक्रम रागमार्ग के अनुकूल सत्तेप में वर्णन करता है ॥ ४।५ ॥

कृणसेवा परायण, व्रजवासिगण ही श्रीकृष्ण के परिवार हैं ।

यह परिवार पशुपाल, मित्र, वहिष्ठ रूप से तीन प्रकार का है ॥ ६ ॥

पशुपाल भी फिर वैश्य, अहीर, गूरु भेद से तीन प्रकार के हैं ।

वे सब यदुःश में उत्पन्न तथा गोप, और वल्लभ पर्याय से भी रचात है ॥ ७ ॥

वैश्यगण प्राय गोरस के द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं तथा वे

सब श्रेष्ठ माने जाते हैं । कोई कोई इनका अहीर कह कर उल्लेख

करते हैं । और अन्य सब अनुलोम जात हैं अर्थात् जिनका पिता

उच्चवर्ण है और माता हीनवर्ण है ॥ ८ ॥

आभीरगण गोवत्सादिक की सेवा के द्वारा जीवन निर्वाह करने

के कारण वैश्यों के समान तथा शूद्रजातीय हैं । गो-महिषादिकों को

(ग) गुर्जरा ॥

त्रिजिदाभीरतो न्यूनाश्छागादिपशुवृत्तय ।

गोष्ठप्रान्तकृतागमा पुष्टागा गुर्जरा स्मृता ॥ १० ॥

२। त्रिप्रा ॥

सर्ववेदविदो त्रिप्रा याजनाद्यधिरारिण ॥ ११ ॥

३। वहिष्ठा ॥

वहिष्ठा ऋग्व प्रोक्ता नानाशिल्पोपजीविन ॥ १२ ॥

एभि पञ्चविधैरेव परीतारा हरिह ।

पूज्या भ्रातृभगिन्याद्या दूत्यो दासाश्च शिल्पिन ।

दासिनाश्च वयस्याश्च प्रेयस्यश्चेति तेऽष्टधा ॥

मान्या भ्रातादयस्तस्य वयस्या सेनकादय ।

श्रीगोष्ठयुनराजस्य प्रेयस्यश्च पुरक्रमात् ॥ १३ ॥

चराना इनका प्रधान काव्य है तथा घोष प्रभृति इनकी उपाधि है और वे सब पहिले से कुछ हीन माने जाते हैं ॥ ६ ॥

गुर्जरगण आभीर से कुछ हीन हैं तथा छागादि पशुआ का पालन करते हैं। ये सब गोष्ठ के बाहिर प्रान्तदेश में वास करते हैं, तथा कुछ हफ्ते पुष्ट होते हैं ॥ १० ॥

त्रिप्रगण समस्त वेद वेदान्त को जानने वाले तथा यजन याचनादि मार्ग्य में निरत रहते हैं ॥ ११ ॥

नाना प्रभार के शिल्पोपनीयी कारुण्य को वहिष्ठ कहते हैं। श्री कृष्ण के यह पाँच प्रकार के परिवार हैं ॥ १२ ॥

पूज्य भ्रातृभगिनी प्रभृति, दूतीवर्ग, दास, शिल्पी, दासी, वयस्य और प्रेयसी भेद में वे सब परिवार फिर आठ प्रकार के हैं। श्रीनारायण नन्द के भ्रातृवर्ग, वयस्य, मेवक और प्रेयसीगण गोष्ठयुनराज श्रीकृष्ण के मान्य हैं ॥ १३ ॥

पूज्याः ॥

पूज्याः पितामहाद्याश्च तथा ज्ञेया महीसुराः ॥ १४ ॥

पितामहो हरेर्गौरिः सितकेशः सिताम्बरः ।

मङ्गलामृतपर्जन्यः पर्जन्यो नाम बल्लवः ।

यः सुरर्षेर्निदेशेन लक्ष्मीभक्त्यै रूपासनाम् ।

वनिष्ठो ब्रजगोष्ठीनां स कृष्णस्य पितामहः ॥

पुरा नन्दीश्वरे चक्रे श्रेष्ठसन्ततिकाङ्क्षया ।

वागमूर्त्ता तते व्योम्नि प्रादुरासीत् प्रियङ्गुरी ॥ १५ । १६ ॥

“तपसानेन धन्येन भविनः पञ्च ते सुताः ।

वरीयान् मध्यमस्तेषां नन्दनाम्ना भविष्यति ॥ १७ ॥

नन्दनस्तस्य विजयी भविता ब्रजनन्दनः ।

सुरासुरशिखारत्ननीराजितपदाम्बुजः” ॥ १८ ॥

पितामह, मातामह प्रभृति तथा ब्राह्मणगण श्रीकृष्ण के पूज्य पद-
वान्य हैं ॥ १४ ॥

श्रीकृष्ण के पितामह का नाम पर्जन्य है। ये मंगलरूप सुधाव-
र्षण के कारण पर्जन्य अर्थात् मेघ तुल्य हैं। इनका अंग गोरवर्ण
तथा केश शुभ्रवर्ण हैं। पहिले पर्जन्य जी ने नन्दीश्वरपर्वत में उत्तम
सन्तान कामना से देवर्षि नारदजी के उपदेशानुसार लक्ष्मीपति श्रीना-
रायण की उपासना की थी। पर्जन्यजी ब्रज में सर्वमान्य तथा श्री
कृष्ण के पितामह थे। तपस्या करने में आकाशवाणी हुई कि “हे
पर्जन्य ! तुम्हारी इस पवित्र तपस्या के फल रूप पाँच पुत्र उत्पन्न
होंगे। उनमें से मध्यम पुत्र सर्वमान्य तथा नन्द नाम से विख्यात
होगा। उस नन्द का ब्रज आनन्दकारी ऐसा विजयी पुत्र होगा कि
समस्त सुर, असुर अपने अपने मन्त्र के रत्नमूह के द्वारा उन के
चरणकमल की आरती करेंगे ॥ १५ । १८ ॥

तृष्टस्तत्र वसन्नत्र प्रेक्ष्य केशिनमागतम् ।
 परीवारैः समं सर्वै र्ययौ भीतो बृहद्वनम् ॥ १६ ॥
 पितामही महामान्या कुसुम्भाभा हरिपुत्रा ।
 वरीयसीति विख्याता खर्व्या क्षीराभकुन्तला ॥ २० ॥
 पितृव्यौ पितरूर्जन्यराजन्यौ वल्लवौ च यौ ।
 नटी सुवेर्जनाख्यापि पितामहसहोदरा ।
 गुणवीरः पतिर्यस्याः सूर्यस्याहयपत्नम् ॥ २१ ॥
 पिता व्रजजनानन्दो नन्दो भुवनवन्दितः ॥ २२ ॥
 तुन्दिलश्चन्दनरुचिर्वन्धुजीवनिभाम्बरः ।
 तिलतण्डुलितं कूर्चं दधानो लम्बविग्रहः ॥ २३ ॥

पर्जन्यजी कुछ काल वहाँ निवास करते हुए फिर केशी नामक
 असुर के आगमन से भीत होकर समस्त परिवार के साथ महावन
 चल दिये ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण की पितामही का नाम वरीयसी है । वे व्रजमण्डल में
 मान्यगण्य थीं । इनका अंग कुसुम्भपुष्प के तुल्य तथा वसन हरि-
 द्वर्गु था । वे आकार में खर्व्या थीं तथा उनके केश दूध की तरह
 सफेद थे ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण के पिता व्रजराज के उर्जन्य और राजन्य दो पितृव्य
 (चाचा) थे तथा दोनों गोप ही कह कर माने जाते थे । नृत्यविद्या
 में चतुरा सुवेर्जना श्रीकृष्ण के पितामह पर्जन्य जी की सहोदरा भ-
 गिनी थी । इस सुवेर्जना के पति का नाम गुणवीर था । वे सूर्य-
 कुण्ड में वास करते थे ॥ २१ ॥

श्रीकृष्ण के पिता का नाम नन्द है । वे भुवनवन्दित तथा व्रजवा-
 सीगण के आनन्दरूप थे । उनका उदर स्थूल, तथा अंगकान्ति बाँ-
 धुली पुष्प की तरह थी । तिल-तण्डुलित अर्थात् श्वेतकृष्णवर्ण
 मिश्रित दाढ़ी से युक्त लम्बायमान शरीर था ॥ २२ । २३ ॥

उपनन्दानुजो नन्दो वसुदेवमुह्यतामः ।
 गोपराजयशोदे च कृष्णतातौ ब्रजेक्षरौ ॥ २४ ॥
 वसुदेवोऽपि वसुभिर्दीव्यतीत्येष भण्यते ।
 यथा द्रोणस्वरूपश्च ख्यातश्चानमृदुन्दुभिः ॥ २५ ॥
 नामेद गारुडे प्राक्तं मथुरामहिमक्रमे ।
 वृषभानुव्रजे ख्यातो यस्य प्रियमुह्यद्वरः ॥ २६ ॥
 माता गोपयशोदात्री यशोदा श्यामलदयति ।
 मूर्त्ता वत्सलतेजसौ शक्रचापनिभाभरा ॥ २७ ॥
 नातिस्थूलतनुः किञ्चिद्दीर्घमेचमकुन्तला ।
 ऐन्दवी-कीर्त्तिदा यस्या प्रिया प्राणसरी वरा ॥ २८ ॥

नन्द जी के बड़े भैया उपनन्द जी थे तथा वसुदेव जी इनके परम मित्र हुए । ब्रज के ईश्वर अर्थात् ब्रजेश्वर-ब्रजेश्वरी कह कर ख्यात गोपराज यशोदा दोनों ही श्रीकृष्ण के पिता-माता हैं ॥ २४ ॥

वसु शब्द पुण्य, रत्न, धन, गुणवाची है । विशुद्ध सत्व गुण को वसु कहते हैं । वसु के द्वारा जो क्रीडाशील हैं वे वसुदेव हैं । वसुदेव जी शुद्ध सत्वगुण सम्पन्न थे । वे पहिले जन्म में द्रोणनामक वसु भी रहे । उनका एक नाम आनन्दुन्दुभि भी था । यह नाम गरुडपुराण में मथुरामाहात्म्य के प्रसंग में कहा गया है । श्रीराधिका के पिता वृषभानु महाराज इनके परम सुहृन् थे ॥ २५ । २६ ॥

श्रीकृष्ण की माता का नाम यशोदा है गोपगणों में यश को देने के कारण यशस्विनी अर्थात् यशोदा है । इनकी अमरान्ति श्यामल वर्ण है । वह वात्सल्यरस की मूर्त्ति है । इनका वसन इन्द्रधनुवर्ण की तरह है ॥ २७ ॥

इनका शरीर न अति स्थूल न अति कृश है । वेशवलाप कुछ लम्बे मेचक (कृष्ण) वर्ण है । ऐन्दवी और कीर्त्तिदा इनकी प्राण-तुल्य प्रियतमा पत्र श्रेष्ठा दो सरसी थीं ॥ २८ ॥

गोकुलाधीशगृहिणी यशोदा देवकी सखी ।

गोपेश्वरी गोष्ठराज्ञी कृष्णमातेति भण्यते ॥ २६ ॥

तथा च आदिपुराणे—

द्वे नाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च ।

अतः सख्यमभूत्तस्या देवक्याः शौरिजायया ॥ ३० ॥

रोहिणी बृहदम्बास्य प्रहर्षारोहिणी सदा ।

स्नेहं या कुरुते रामस्नेहात् कोटिगुणं ह्रौ ॥ ३१ ॥

उपनन्दोऽभिनन्दश्च पितृव्यौ पूर्वजौ पितुः ।

पितृव्यौ तु कनीयांसौ स्यातां सन्नन्दनन्दनौ ॥ ३२ ॥

आद्यः सितारुणरुचिर्दार्ढ्यकूचो हरिपटः ।

तुङ्गी प्रियास्य सारङ्गवर्णा सारङ्गशटिका ॥ ३३ ॥

गोकुलाधीशगृहिणी, यशोदा, देवकीसखी, गोपेश्वरी, गोष्ठ-
रानी, कृष्णमाता कह कर बोली जाती थी ॥ २६ ॥

आदिपुराण में कहा है कि—नन्दपत्नी के दो नाम हैं यशोदा और
देवकी । इसीलिये घसुदेव की पत्नी देवकी के साथ यशोदा का वि-
शेष सन्ध्याभाव था ॥ ३० ॥

बलराम जी की माता रोहिणी आनन्द की मूर्ति थी तथा श्री-
कृष्ण की बड़ीमाता कह कर पुकारी जाती थी और बलराम से भी
श्रीकृष्ण के ऊपर कोटिगुण अधिक स्नेह करती थी ॥ ३१ ॥

नन्द जी के उपनन्द और अभिनन्द दोनों बड़े भ्राता तथा स-
न्नन्द और नन्दन दोनों कनिष्ठ भ्राता थे । वे सब श्रीकृष्ण के पितृ-
व्य रहे ॥ ३२ ॥

उपनन्द जी की अंगकान्ति घवल और अरुणवर्णा थी । दाढ़ी
दीर्घ तथा वस्त्र हरिद्वर्ण था । पत्नी का नाम तुङ्गी था वह चातकवर्णा
और चातकवर्ण की साड़ी पहिने वाली थी ॥ ३३ ॥

द्वितीयः कम्बुरस्यथो लम्बसूचोऽस्तिताम्रः ।
 भार्यास्य पीवरी नीलपटा पाटलविग्रहा ॥ ३४ ॥
 मुनन्दापरपर्यायः सन्नन्दस्य च पाण्डुरः ।
 श्यामचेलः सितद्वित्रिकेशोऽयं केशवप्रियः ॥ ३५ ॥
 भार्या कुवलयसत्तचेलो कुवलयच्छविः ।
 नन्दनः शितिकण्ठमभ्रण्डातकुमुताम्रः ॥ ३६ ॥
 अपृथग्गततिः पित्रा तरुणप्रणयं हरी ।
 अतुल्यास्य प्रिया विद्युत्कान्तिरग्निमावरा ॥ ३७ ॥
 सानन्दा नन्दिनी चेति पितृते सहोदरे ।
 कल्माषवसने रिक्तदन्ते च फेनसंचिर्मा ॥ ३८ ॥

दूसरे अभिनन्द जी शंख के तुल्य गौरवर्ण तथा लम्बो दाढ़ी
 वाले और कृष्णरंग के वस्त्र पहिने वाले थे । पत्नी का नाम पी-
 वरी था । पीवरी के वस्त्र नीलवर्ण तथा अंग पाटलवर्ण था ॥ ३४ ॥
 सन्नन्द का दूसरा नाम मुनन्द है । इनका वर्ण पीला तथा श्याम
 वर्ण वस्त्र है । केवल दो तीन बेश सफेद हैं । वे कृष्ण के परम-
 प्रिय थे ॥ ३५ ॥

भार्या का नाम कुवलय है । लाल वस्त्र को पहिने वाली
 तथा कुवलय की तरह अंग कान्ति वाली थी । नन्दन का वर्ण मयूर-
 कंठ तुल्य तथा वसन चण्डात पुष्प के सदृश है ॥ ३६ ॥

वे श्रीहरि के अत्यन्त प्रिय थे तथा पिताजी के साथ एकत्र वास
 करते थे । इनकी पत्नी अतुल्या नाम की थी वह विद्युत्वर्ण तथा
 मेघ की तरह वस्त्र पहिने वाली थी ॥ ३७ ॥

श्रीकृष्ण के पिता ब्रजराज की सानन्दा और नन्दिनी नाम वाली
 दो सहोदरा भगिनी थी । वे विविध प्रकार के वर्ण वाले वस्त्र पहिने-
 ने वाली थी । उनकी दन्तपंक्ति विरल थी अर्थात् वह दो चार दान

महानीलः सुनीलश्च रमणवैतयोः क्रमात् ।
 पितुराद्यपितृव्यस्य पुत्रौ कण्डवदण्डवौ ।
 सुवले मुदमाप्तौ यौ ययोश्चारु मुखाम्बुजम् ॥ ३६ ॥
 राजन्यौ यौ तु दायादौ नाम्ना तौ चाटुवाटुकौ ।
 दधिसारा-हविःसारे सधर्मिण्यौ क्रमात्तयोः ॥ ४० ॥
 मातामहो महोत्साहो स्यादस्य सुमुखाभिधः ।
 लम्बकम्बुपमशमश्रुः पक्रजम्बूपलच्छविः ॥ ४१ ॥
 ख्याता मातामही गौण्डे पाटला नामधेयतः ।
 मातामही तु महिषी दधिपाण्डरकुन्तला ।
 पाटला पाटलीपुष्पपटलाभा हरित्यष्टा ॥ ४२ ॥
 प्रिया सहचरी तस्या मुखरा नाम वल्लवी ।

वाली थीं । फेन की तरह अंग शुभ्रवर्ण था । सानन्दा के पति का नाम महानील और नन्दिनी के पति का नाम सुनील था । दोनों श्री-कृष्ण के मौंसा थे ॥ ३८ ॥
 श्रीकृष्ण के आदि पितृव्य उफनन्द जी के कण्डव तथा दण्डव नामक दो पुत्र थे । दोनों सुवलयी से विशेष आमोद प्रमोद प्राप्त करते थे तथा दोनों का मुख कमल तुल्य सुन्दर था । चाटु वाटु नाम वाले नन्दजी के दो चित्रिय भ्राता थे । इनके पिता बसुदेवजी की ज्ञाति के थे । चाटु की दधिसारा तथा वाटु की हविःसार नाम वाली पत्नीयों थीं ॥ ३६, ४० ॥
 श्रीकृष्ण के मातामह सुमुख विशेष उत्साही थे । वे लम्बे शंख की तरह सफेद डाढ़ी वाले तथा पके जामुन के तुल्य अंग कान्ति वाले हुए ॥ ४१ ॥

श्रीकृष्ण की मातामही पाटला व्रज में रानी कहकर प्रसिद्धा थी वही के तुल्य कुत्र पीले उनके केश थे । पाटली पुष्प की तरह पाटल-वर्ण तथा हरा वसन पहिनने वाली थी ॥ ४२ ॥

मातामही पाटला की मुखरा नामक एक प्रिय सहचरी गोपी थी

ब्रजेश्वर्य्य ददौ स्तन्य सरसीस्नेहभोगेण यः ॥ ४३ ॥
 सुमुखस्यानुजश्चारुमुखोऽञ्जननिमग्नश्च वि ।
 भार्यास्य कुलटीवर्णा वलाका नाम वल्लवी ।
 गोलो मातामहीभ्राता धूमलासनश्च वि ॥ ४४ ॥
 हसितो यः स्वसुर्भक्ता सुमुखेन क्रुधोद्धुर ।
 दुर्व्वाससमुपास्यैव कुल लेभे ब्रजोज्ज्वलम् ॥ ४५ ॥
 यस्य सा जटिला भार्या घ्रांसवर्णा महोदरी ।
 यशोधर-यशोदेव सुदेवाद्यास्तु मातुला ॥ ४६ ॥
 अतसीपुष्परचयः पाण्डुराम्बरसन्नुता ।
 येषां धूम्रपत्रा भार्या कर्करटीकुसुमत्विषा ॥ ४७ ॥
 रेमा रोमा सुरेमाख्याः पावनस्य पितृव्यजा ।
 मातृव्यसु पतिर्मल्ल स्वसा मातुर्यशस्विनी ।

जो कि पाटला के स्नेह से ब्रजेश्वरी यशोदा को दूध पिनाया करती थी ॥ ४३ ॥

सुमुख के छोटा भैया चारुमुख है । उसकी कान्ति अञ्जन की तरह है । उसकी भार्या वलाका कुलटी वर्णा थी । मातामह के भैया का नाम गोल तथा बसन धूम्रवर्ण का था । भगिनीपति सुमुख जब हास्य करते थे तब गोल क्रोध के मारे व्यतिव्यस्त हो जाते थे । उन्होंने पहले दुर्व्वास जी की उपासना कर ब्रज में उज्ज्वल वरा में जन्म लाभ किया था ॥ ४४ । ४५ ॥

इनकी पत्नी जटिला कर्करणी और स्थूलोदरी थीं । यशोधर, यशोदेव, सुदेव आदिक श्रीकृष्ण के मामा थे ॥ ४६ ॥

इन सबकी कान्ति अतसी पुष्प (अलसी के फूल) की तरह थी । वे सब पीले वस्त्र पहिनते थे । इन सबकी भार्या धूँ आट वस्त्र पहनती थीं और कर्करटी पुष्प की तरह कान्तिवाली थीं ॥ ४७ ॥

यशोदेवो यशस्विन्यावुमे मातुः सहोदरे ॥ ४८ ॥
 दधिसारा-हविःसारे इत्यन्ये नामनी तयोः ।
 ज्येष्ठा श्यामानुजा गौरी हिङ्गुलोपमवाससी ॥ ४९ ॥
 चाटुवाटुकयोर्भावर्ये ते राजन्यतनूजयोः ।
 पुत्रश्चारुमुखस्यैकः सुचारुनामशोभनः ॥ ५० ॥
 गोलभ्रातु सुता यस्य भार्या नाम्ना तुलावती ।
 पितामहसमास्तुण्ड-कुटेरपुटादयः ॥ ५१ ॥
 किलाऽन्तकिल-तीलाट-कृपीट-पुरटादयः ।
 गोण्डकल्लोट्टकारण्ड-तरीपणवरीपणाः ।
 वीरारोह-वरारोह-मुख्या मातामहोपमाः ॥ ५२ ॥
 वृद्धाः पितामहीतुल्याः शिलाभेरी शिखाम्बरा ।
 भारुणी भंगुरा भङ्गी भारशाखा शिखादयः ॥ ५३ ॥

रेमा, रोमा, सुरेमा नामक पावन जी की तीन पितृव्यकन्या थीं ।
 यशोदेवी और यशस्विनी श्रीकृष्ण की माता यशोदा जी की सहोदरा
 भगिनी हैं । यशस्विनी के पति का नाम मल्ल था ॥ ४८ ॥

यशोदेवी और यशस्विनी का नामान्तर दधिसारा हविःसारा भी
 था । ज्येष्ठा यशोदेवी श्यामवर्णा तथा कनिष्ठा गौरवर्णा थी । हिङ्गुल
 के सदृश दोनों का वस्त्र था ॥ ४९ ॥

वे दोनों पहिले कहे हुए क्षत्रिय तनय चाटु और वाटुक की भा-
 र्या थीं । चारुमुख के सुचारु नामक एक सुन्दर पुत्र हुआ था ॥ ५० ॥

पहिले कहे हुए गोल जी की जो भ्रातृकन्या तुलावती थी, वही
 सुचारु की भार्या थी । तुण्ड, कुटेर और पुरटादिक सब श्रीकृष्ण
 के पितामह के तुल्य थे ॥ ५१ ॥

किल, अन्तकिल, तीलाट, कृपीट, पुरट, गोण्ड, कल्लोट्ट, तरी-
 पण, वरीपण, वीरारोह, वरारोह आदिक श्रीकृष्ण के मातामह के
 तुल्य हैं ॥ ५२ ॥

भारुण्डा जटिला भेला कराला करवालिका ॥
 घर्घरा मुखरा घोरा घण्टा घोणी सुघण्टिका ॥
 ध्वाङ्कुरण्टी हाण्टी तुण्टी डिण्डिमा मञ्जुवाणिका ।
 चक्किणी चोण्डिका चुण्टी डिण्डिमा पुण्डवाणिका ॥
 डामणी डामरी डुम्बी डङ्का मातामही समाः ॥ ५४ ॥
 मङ्गलः पिङ्गलः पिङ्गो माण्डः पीठपट्टिशौ ।
 शङ्करः सङ्गरो भृङ्गो घृणिघाटिकसारथाः ॥
 पटीर-दण्डि-केदारा सौरभेय-कलाङ्कुराः ।
 घुरीण घुर्य चक्राङ्गा मस्करोत्पल कम्वला ॥
 सुपत्त सौध हारीत हरिकेश हरादयः ।
 उपानन्दादयश्चान्ये सर्वेऽमी जनश्लेषमाः ॥ ५५-५८ ॥
 पञ्चर्जन्यः सुमुखश्चेमौ मिथः सख्यं परं गतौ ।
 वातघन्धं चक्रतुः प्रोत्था केशोरे तौ सहद्वरो ।

शिलाभेरी, शिखाम्बरा, भारुणी, भङ्गुर, भङ्गी, मारशारा आ-
 दिक वृद्धागण पितामही तुल्य हैं ॥ ५३ ॥

भारुण्डा, जटिला, भेला, कराला, करवालिका, घर्घरा, मुखरा, घोरा, घण्टा,
 घोणी, सुघण्टिका, ध्वाङ्कुरण्टी, हाण्टी, तुण्टी, डिण्डिमा, मञ्जुवा-
 णिका, चक्किणी, चोण्डिका, चुण्टी, डिण्डिमा, पुण्डवाणिका, डा-
 मणी, डामरी, डुम्बी, डङ्का आदिक सब वृद्धा श्रीकृष्ण की माता-
 मही सदृशा हैं ॥ ५४ ॥

मङ्गल, पिङ्गल, पिङ्ग, माण्ड, पीठ, पट्टिश, शंकर, संगर, भृङ्ग,
 घृणि, घाटिक, सारथ, पटीर, दण्डि, केदारा, सौरभेय, कलाङ्कुर,
 घुरीण, घुर्य, चक्राङ्ग, मस्कर, उत्पल, कम्वल, सुपत्त, सौध, हारीत,
 हरिकेश और हरादिक एवं उपनन्दादिक अन्यान्य गोपगण-समूह
 श्रीकृष्ण के पिता के तुल्य हैं ॥ ५५-५८ ॥

तेन नन्दादि नामानस्तिष्ठन्त्यन्येऽपि वल्लवाः ॥ ५६ ॥
 वत्सला कुशला ताली मेदुरा मसृणा कृपा ।
 शङ्किनी विम्बिनी मित्रा सुभगा भोगिनी प्रमा ॥
 शारिका हिङ्गला नीति कपिला धमनीधरा ।
 पद्मति पाटका पुण्डी सुतुण्डा तुष्टिरञ्जना ॥
 तरङ्गाक्षी तरलिका शुभदा मालिकाङ्गदा ॥
 वत्सला कुशला ताली मेदुरापि तथैव च ।
 विशाला शल्लकी वेणा वर्त्तिकाद्या प्रसूपसाः ॥ ६०।६२ ॥
 अम्बिका च किलिम्बा च घातुके स्तन्यदायिके ।
 अम्बिकेय तयोर्मुख्या ब्रजेश्वर्याः प्रिया सरसी ॥ ६३ ॥
 अथ महीमुरा ॥
 महीमुरास्तु द्विविधा गोकुलान्तर्गता ये ।

पञ्चन्य और सुमुख दोनों परस्पर प्रीति के साथ बन्धुसूत्र में
 बन्धे हुए थे । दोनों का शरीर हृष्ट पुष्ट था । अपने पुत्र नन्द, उप-
 नन्दादिक के नाम के तुल्य और भी सत्र अपने पुत्रों के नाम इसी
 प्रकार के रखेगे ऐसा एक परस्पर में वाग्वन्ध अर्थात् मौखिक नियम
 स्थिर हुआ था । इसी कारण से श्रीवृन्दावन में नन्दादिक नाम धारी
 और और भी सत्र गोप देखने में आते थे ॥ ५६ ॥

वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा, मसृणा, कृपा, शङ्किनी, विम्बिनी
 मित्रा, सुभगा, भोगिनी, प्रमा, शारिका, हिङ्गला, नीति, कपिला,
 धमनीधरा, पद्मति, पाटका, पुण्डी, सुतुण्डा, तुष्टि, अञ्जना, तरङ्गाक्षी,
 तरलिका, शुभदा, मालिकाङ्गदा, वत्सला, कुशला, ताली, मेदुरा,
 विशाला, शल्लकी, वेणा और वर्त्तिका आदिक गोपाङ्गनामण श्रीकृष्ण
 की मातृ तुल्या हैं ॥ ६० । ६२ ॥
 अम्बिका और किलिम्बा दो श्रीकृष्ण की धात्री तथा स्तन देने वाली

कुलमाश्रित्य वर्तन्ते केचिदन्ये पुरोहिताः ॥
 वेदगर्भो महायज्वा भागुर्याद्याः पुरोधसः ।
 सामधेनी महारुच्या वेदिभात्यास्तदङ्गनाः ॥ ६४ ॥
 सुलभा गौतमी गार्गी चण्डिलाद्या द्विजस्त्रियः ।
 कुञ्जिका यामनी स्वाहा सुलता शारिङली स्वधा ॥
 भार्गवीत्यादयो वृद्धा ब्राह्मण्यो ब्रजपूजिताः ॥ ६५ ॥
 पौर्णमासी भगवती सर्व्वसिद्धिविधायिनी ।
 कापायवसना गौरी काशकेशीदरायता ॥
 मान्या ब्रजेश्वरादीना सर्व्वेषा ब्रजवासिना ।
 देवर्षेः प्रियशिष्येयमुपदेशेन तस्य यो ।

हैं। दोनोंमें से अम्बिका बड़ी थी तथा ब्रजेश्वरीकी प्रियसखी है॥६३॥

अब महीसुरों का वर्णन करते हैं। गोकुल के बीच में वास करने वाले ब्राह्मण गण दो भागों में विभक्त हैं। एक तो श्रीकृष्ण के पितृकुलों के आश्रित हैं और दूसरे पुरोहितगण हैं। वेदगर्भ, महा-यज्वा, और भागुरि आदिक पुरोहित हैं जिनकी पत्नियों का नाम क्रम से सामधेनी, महारुच्या, और वेदिका हैं ॥ ६४ ॥

सुलभा, गौतमी, गार्गी, चण्डिला, कुञ्जिका, यामनी, स्वाहा, सुलता, शारिङली, स्वधा, भार्गवी आदिक श्रेष्ठ स्त्रीगण ब्रजजण्डल में पूज्या ब्राह्मणी हैं ॥६५॥ ६६ ॥

श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं के सकल विषयों का निर्वाह करने वाली योगमाया भगवती ही पौर्णमासी देवी हैं। इनका वस्त्र कपाय अर्थात् गौरिक वर्ण है। शरीर गौरवर्ण तथा काशपुष्प के सदृश सफेद केश हैं। वे आकाश में कुट्ट लम्बी थीं। पौर्णमासी जी ब्रज में नन्दादिक सकल ब्रजवासिनों की पूज्या थी। आप नारद जी की प्रियशिष्या थीं। उन्हीं के उपदेशानुसार श्रीकृष्ण और चलदेवजी

सान्दीपनि सुत प्रेष्ठ हित्वाग्रन्तीपुरीमपि ।

स्वामीष्टदैवतप्रेम्ना व्याकुला गोकुल गता ॥ ६७-६८ ॥

अथ यूथ ॥

यूथ परिजनाना स्यात् द्वित्रिधाना महोन्चय ।

वयस्यो दासिका दूत्य इत्यसौ त्रिकुलो मत ॥ ७० ॥

यूथस्याग्रान्तरा भेदा कुल तस्य तु मण्डल ।

गणस्य समवाय स्यात् समवायस्य सञ्चय ॥

सञ्चयस्य समाज स्यात् समाजस्य समन्वय ।

इति भेदा नव ज्ञेया लघन क्रमशो युवै ॥ ७१ । ७२ ॥

अथ सखीगर्ग ॥

तत्रादौ कुलमालीना लिख्यते तत् त्रिमण्डल ।

तारतम्यात्तयो प्रेम्ना कुलस्यास्य त्रिरूपता ।

के विद्यागुरु श्रीसान्दीपनि जी को जो कि उनके पुत्र हैं वे उन्हें अव-
न्तिकापुरी में छोड़कर निज अभीष्टदेव श्रीकृष्ण के प्रेम में बशीभूत
होकर गोकुल में वास करने लगीं ॥ ६७ । ६८ ॥

दो प्रकार के परिजनों की महान् समष्टि को यूथ कहते हैं । वय-
स्यगण, दासीगण और दूतीगण भेद से यूथ तीन प्रकार के है ॥ ७० ॥

यूथ, कुल, मण्डल, वर्ग, गण, समवाय, सचय, समाज, सम-
न्वय भेद से यूथ के और भी नौ प्रकार के भेद हैं । यूथ के छोटे
छोटे विभाग कुल और उसके छोटे छोटे विभाग मण्डल, मण्डल
के वर्ग, वर्ग के गण, गण के समवाय, उसके सचय, सचय के समाज
और समाज के समन्वय इत्यादि प्रकार से जानना चाहिए ॥ ७१ ७२ ॥

पहिले सरितियों का त्रिमण्डल रूप कुल का विषय लिया जा रहा
है । प्रेम के तारतम्य से कुल फिर समाज, मण्डल और गण भेद
से तीन प्रकार का है । परम प्रियतम सरितिया की समष्टि को समाज

समाजो मण्डलञ्चेति गणश्चेति तदुच्यते ॥

समाजः परमप्रेष्ठसखीनां प्रथमो मतः ।

वरिष्ठश्च वरश्चेति स समन्वययुग्मभाक् ॥ ७३ । ७५ ॥

तत्र वरिष्ठः ॥

वरिष्ठः सर्वतः ख्यातः सदा सचित्रतां गतः ।

तयोरेवासमोद्धवो वा नासौ प्रेम्नः समाश्रयः ॥ ७६ ॥

प्रपन्नः सर्वसुहृदां परमादरणीयतां ।

अपारगुणरूपदि-माधुर्यभिश्च भूषितः ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसख्यः ॥

ललिता च विशाखा च चित्रा चम्पकमल्लिका ।

तुङ्गविद्ये नन्दलेखा च रंगदेवी सुदेविका ॥ ७८ ॥

[१] तत्र ललिता ॥

तत्राद्या ललितादेवी स्यादष्टासु वरीयसी ।

प्रियसख्या भवेज्ज्येष्ठा सप्तविंशतिवारारैः ॥ ७९ ॥

कहते हैं, यह प्रथम गिना जाता है। यह समाज फिर दो-दो मिलकर वरिष्ठ और वर रूप से दो प्रकार का है ॥ ७३ । ७५ ॥

वरिष्ठ नाम के यूथ सर्व प्रकार से विख्यात तथा श्रीराधाकृष्ण के सहायक रूप से प्राप्त हैं। प्रेम में न कोई इसके समान और न कोई इससे बढ़कर ऊपर है ॥ ७६ ॥

यह समस्त सुहृदों का परम आदरणीय तथा अपारं गुण-रूप-माधुर्यों से भूषित है ॥ ७७ ॥

अथ अष्टसखियों का वर्णन करते हैं। ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा, रंगदेवी, सुदेवी अष्टसखी हैं ॥ ७८ ॥

इनमें से ललितादेवी सबसे श्रेष्ठा हैं। प्रियसखी श्रीराधा से सत्ताईस दिन बड़ी हैं जो अनुराधा कह कर रखाता है तथा यामा-

अनुराधातया ख्याता वामप्रखरतां गता ।
गोरोचना-निभाङ्गी सा शिखिपिच्छनिमाम्बरा ॥ ८० ॥
जाता मातरि सारथां पितुरेया विशोक्तः ।
पतिर्भैरवनामास्याः सखा गोवर्द्धनस्य यः ॥ ८१ ॥

२ । विशाखा ॥

विशाखात्र द्वितीया स्यादेकाचारगुणव्रता ।
प्रियसख्या जनिर्यत्र तत्रैषाम्युदिता क्षणे ॥
ताराबलिदुकूलेयं विद्युन्निभतनुदयतिः ।
पितुः पावनतो जाता मुखरायाः स्वसुः सुतात् ।
जटिलायाः स्वसुः पुत्र्यां दक्षिणायान्तु मातरि ।
भवेद्विवाह कर्त्तास्याः बाहिको नाम बल्लवः ॥ ८२-८३ ॥

३ । चम्पकलता ॥

तृतीया चम्पकलता फुल्लचम्पकदीधितिः ।

और प्रत्यरा नायिका के गुणों से भूषिता हैं । ललिता जी की अंग-
कान्ति गोरोचना तुल्य है । वस्त्र मयूरपंख के सदृश हैं ॥ ७६-८० ॥

ललिता जी पिता विशोक के द्वारा सारदी माता के गर्भ में से
उत्पन्न हैं । इनके पति भैरव नाम से प्रसिद्ध हैं जो कि गोवर्द्धन गोप
के सखा हैं ॥ ८१ ॥

दूसरी विशाखा जी हैं । भाव, रूप, गुणों से श्रीराधिका के तुल्य
हैं । जिस समय श्रीराधिका का जन्म हुआ था ठीक उसी समय वि-
शाखा का जन्म है । विशाखाजी का वस्त्र बूँटेदार नीलाम्बरी है ।
अंगकान्ति सौदामिनी के सदृश है । पिता का नाम पावन तथा माता
का नाम दक्षिणा है । वह दक्षिणा जटिला की भगिनीकन्या थी ।
पावन भी मुखरा की भगिनी के पुत्र थे । विशाखा के विवाहित पति
बाहिक नामक गोप हैं ॥ ८२ । ८३ ॥

एकेनान्हा कनिष्ठेयं चापपद्मनिभांस्वरा ॥ ८४ ॥

पितुरारामतो जाता वाटिकायान्तु मातरि ।

बोढा चण्डाक्षनमास्या विशाखा सदृशी गुणैः ॥ ८५ ॥

४ । चित्रा ॥

चित्रा चतुर्थी काश्मीरगौरी काचनिभांस्वरा ।

पङ्क्तिविंशत्या कनिष्ठान्हा माधवामोदमेदुरा ॥ ८६ ॥

चतुराख्यात् पितुर्जाता सूर्यमित्रपितृव्यजा ।

जनन्यां चर्चिष्काख्यायां पतिरस्यास्तु पीठरः ॥ ८७ ॥

५ । तुंगविद्या ॥

पञ्चमी तुङ्गविद्या स्याज्ज्यायसी पञ्चभिर्दिनैः ।

चन्द्रचन्दनभूयिष्ठा कुङ्कुमदयुति शालिनी ॥ ८८ ॥

पाण्डुमण्डलवस्त्रेयं दक्षिणप्रखरोदिता ।

मेघायां पुष्कराज्जाता पतिरस्यास्तु बालिशः ॥ ८९ ॥

तीसरी चम्पकलता की अंगकान्ति खिले हुए चम्पक पुष्पों के सदृश है । यह श्री राधा से एक दिन छोटी हैं तथा इनके वस्त्र चाप-पङ्क के तुल्य हैं । इनके पिता का नाम आराम तथा माता का नाम वाटिका है । चण्डाक्ष इनके विवाहित पति हैं । इनके विशाखा के बराबर गुण समूह हैं ॥ ८४ । ८५ ॥

चौथी चित्रा की अंगकान्ति कुङ्कुम के तुल्य तथा काँच के समान वस्त्र हैं । श्री राधा से छव्वीस दिन छोटी है । चित्रा श्रीकृष्ण के आनन्द में आनन्दिता हैं । इनके पिता का नाम चतुर तथा माता का नाम चर्चिष्का है । पति का नाम पीठर है । चतुर सूर्यमित्र के काका हैं ॥ ८६ । ८७ ॥

पाँचवीं तुंगविद्या श्री राधिका जी से पाँच दिन बड़ी हैं । कपूर मिश्रित चन्दन के तुल्य अंगगन्ध वाली हैं । इनकी अंगकान्ति कुं-

६। इन्दुरेखा ॥

इन्दुरेखा भवेत् पष्ठी हरितालोज्ज्वलद्युतिः ।
दाडिम्बपुष्पवसना कनिष्ठा वाससैस्त्रिभिः ॥ ६० ॥
वेल्ला-सागरसंज्ञाभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ।
वामप्रखरतां याता पतिरस्यास्तु दुर्बलः ॥ ६१ ॥

७। रङ्गदेवी ॥

सप्तमी रङ्गदेवीयं पद्मकिञ्चलक-कान्तिमाक् ।
जवारागिदुकूलेयं कनिष्ठा सप्तभिर्दिनैः ॥ ६२ ॥
प्रायेण चम्पकलतासदृशी गुणतो मता ॥
करुणारङ्गसाराभ्यां पितृभ्यां जनिमीयुषी ॥ ६३ ॥

८। सुदेवी ॥

अस्या रक्तं क्षणो भर्ता कनीयान् भैरवस्य यः ।
सुदेवीरङ्गदेव्यास्तु यमजा मृदुरष्टमी ॥ ६४ ॥

कुम के सदृश है। वसन पीला है। तुंगविद्या दक्षिणा और प्रखरा नामक नायिका के गुणों से युक्त हैं। माता का नाम मेधा है। और पिता पुष्कर जी हैं। पति का नाम बालिश है ॥ ८८। ८९ ॥

छटवीं इन्दुलेखा की अंगकान्ति हरिताल के बराबर उज्ज्वल है। इनका वसन अनार पुष्प के सदृश है। श्रीराधा से तीन दिन छोटी है। माता का नाम वेल्ला तथा पिता का नाम सागर है। इन्दु-लेखा वामा और प्रखरा नायिका गुणों से युक्त हैं। इनके पति दुर्बल नामक हैं ॥ ६०। ६१ ॥

सातवीं रंगदेवी की अंगकान्ति कमल केशर के समान है। वसन जवा पुष्प के तुल्य लाल हैं। श्रीराधा से सात दिन छोटी हैं तथा प्रायः चम्पकलता के बराबर गुणवाली हैं। पिता का नाम रंगसार माता का नाम करुण है ॥ ६२। ६३ ॥

आगत्य तरसा तस्यालोकात् किञ्चिदभक्षयत् ।
 पशुपाली हरिण्युमे ततो गर्भमवाप्तु ॥ १०६ ॥
 सुचन्द्रा सुपुत्रे पुत्रं स्तोककृष्णं ब्रुवन्ति यम् ।
 असोष्ट गोष्ठमध्ये सा हिरण्याङ्गी कुरङ्गिका ॥ १०७ ॥
 या सखी प्रियगान्धर्वा गान्धर्वायाः प्रिया सदा ।
 फुल्लापराजिताश्रेणोविराजिपटमण्डिता ॥ १०८ ॥
 एतां दारतयोदारां ददौ वृद्धाय गोदुहे ।
 जरसा राज्यायोग्योऽसौ गिरा गौरवतः पिता ॥ १०९ ॥

(घ) रत्नलेखा ॥

सुतो मातृप्लवसुः सूर्यसाहयस्य पयोनिधिः ।
 तस्य पुत्रवतः पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी ॥ ११० ॥
 श्रद्धयाराधयाञ्चक्रे भास्करं सुतवत्करा ।
 प्रसादेन द्युरत्नस्य रत्नलेखामसूत सा ॥ १११ ॥

के लिये प्रदान किया। उस चरु के भोजन के समय आंगन में रंगिणी की माता व्रज में विचरण करने वाली, सुरंगा नामक हरिणी ने आकर उसके देखते-देखते उस चरु में से कुछ खा गई। दोनों के गर्भ हुआ। सुचन्द्रा ने एक पुत्र का प्रसव किया जिसे स्तोककृष्ण करके सब कोई कहते हैं। कुरङ्गिका हरिणी ने गोष्ठ में हिरण्याङ्गी का प्रसव किया, जो कि श्रीराधिका की सर्वदा अति प्रिया थी तथा ग्विले हुए अपराजित पुष्पों के सदृश वस्त्रों को पहिनती थी। पिता ने उदार भति वाली इसका बड़े गौरव के साथ एक वृद्ध गोप के साथ विवाह कर दिया था ॥ १०१। १०६ ॥

(रत्नलेखा) सूर्यसा नामक माता की भगिनी का पयोनिधिनामक पुत्र था। पुत्रवती उसकी मित्रा नामक पत्नी ने कन्या की इच्छा से श्रद्धा के साथ सूर्य की आराधना की। सूर्य के प्रसाद से उनने रत्न-

मनःशिलारुचिरसौ रोलम्बरचिराम्बरा ।

वृषभानुसुताप्रेष्ठा भानुशुश्रूषणे रता ।

चचारकेन भावेन माता यस्यार्द्धचारिका ।

धूर्णयन्ती दृशौ घोरे माधवं प्रेक्ष्य तर्ज्जति ॥ ११२ ॥

(ङ) शिखावती ॥

धन्यधन्यादभूत् कन्या सुशिखायां शिखावती ॥ ११३ ॥

कर्णिकारदयुतिः कुन्दलतिकायाः कनीयसी ।

जरत्तित्तिरकिर्मरिपटा मूर्त्तये माधुरी ।

उदुद्धा गरुडेनेयं गर्जराख्येन गेदुहा ॥ ११४ ॥

(च) कन्दर्पमञ्जरी ॥

कन्दर्पमञ्जरी नाम जाता पुष्पाकराद् पितुः ।

जनन्यां कुरुविन्दायां यस्याः पित्रा हरिं वरम् ॥ ११५ ॥

हृदि कृत्य न कुत्रापि विवाहोऽन्यत्र कार्य्यते ।

किङ्किरातोज्ज्वलरुचिर्विचित्रसिचया वृता ॥ ११६ ॥

लेखा का प्रसव किया । रत्नलेखा मनःशिला की तरह कान्ति वाली तथा भ्रमर के सदृश सुन्दर वस्त्र को पहिनती थी । वह श्रीराधिका की परमप्रिया और वृषभानु जी की सेवा में अनुरता थी । अर्द्ध-चारिका नाम वाली जिसकी माता नेत्रों को भयानक रूप से घुमाती हुई माधव को देख कर तर्जना किया करती थी ॥ ११० । ११२ ॥

शिखावती धन्यधन्या से सुशिखा गर्भ में शिखावती हुई थी । वह कर्णिकार की तरह अंगकान्तिवाली तथा कुन्दलता से कुछ छोटी थी । वृद्ध तित्तिर पक्षि के सदृश वस्त्र को धारण करती थी । शिखावती मानों माधुरी की मूर्ति थी । गर्जर नामक गोप से उसका विवाह हुआ था ॥ ११३ । ११४ ॥

पिता पुष्पाकर तथा माता कुरुविन्दा से कन्दर्पमञ्जरी उत्पन्ना

आगत्य तरसा तस्यालोकात् मिञ्चिदभक्षयत् ।
 पशुपाली हरिष्युमे तनो गर्भमनाप्तु ॥ १०६ ॥
 सुचन्द्रा सुरे पुत्र स्तोत्रकृष्णं ब्रुवन्ति यम् ।
 असौष्ट गोष्ठमव्ये सा हिरण्याङ्गी सुरङ्गिका ॥ १०७ ॥
 या सखी प्रियगान्धर्व्या गान्धर्व्याया प्रिया सदा ।
 फुल्लापराजिता श्रेणोविराजिपटमण्डिता ॥ १०८ ॥
 एता दारतयोदारा ददौ वृद्धाय गोदुहे ।
 जरसा राजप्रायोग्योऽसौ गिरा गौरवत पिता ॥ १०९ ॥

(घ) रत्नलेखा ॥

सुतो मातृवसु सूर्यसाहयस्य पयोनिधि ।
 तस्य पुत्रवत पत्नी मित्रा कन्याभिलाषिणी ॥ ११० ॥
 श्रद्धयाराधयाञ्चक्रे भास्कर सुतवस्करा ।
 प्रसादेन द्युरत्नस्य रत्नलेखामसूत सा ॥ १११ ॥

के लिये प्रदान किया। उस चरु के भोजन के समय आगन म र-
 गिणी की माता व्रज में विचरण करने वाली, सुरगा नामक हरिणी
 ने आकर उसके देरते देखते उस चरु में से कुछ खा गई। दोनों
 के गभे हुआ। सुचन्द्रा ने एक पुत्र का प्रसव किया जिसे स्तोत्रकृष्ण
 करके सब कोई कहते हैं। सुरङ्गिका हरिणी ने गोष्ठ में हिरण्याङ्गी
 का प्रसव किया, न कि श्रीराधिका की सर्वदा अति प्रिया थी तथा
 खिले हुए अपराजित पुष्पों के सदृश वस्त्रों को पहिनती थी। पिता
 ने उदार मति वाली इसका बड़े गौरव के साथ एक वृद्ध गोप के
 साथ विवाह कर दिया था ॥ १०१। १०६ ॥

(रत्नलेखा) सूर्यसा नामक माता की भगिनी का पयोनिधिनामक
 पुत्र था। पुत्रवती उसकी मित्रा नामक पत्नी न कन्या की इच्छा से
 श्रद्धा के साथ सूर्य की आराधना की। सूर्य के प्रसाद से उनसे रत्न-

मन शिलारुचिरसौ रोलम्बरचिराम्बरा ।

वृषभानुसुताप्रेक्षा भानुशुश्रूषणे रता ।

चचारैकेन भावेन माता यस्याद्दर्चारिका ।

धूर्णयन्ती दृशौ घोरे माधव प्रेक्ष्य तर्जति ॥ ११२ ॥

(ड) शिखावती ॥

धन्यधन्यादभूत् कन्या सुशिखाया शिखावती ॥ ११३ ॥

कर्णिकारदयुति कुन्दलतिकाया कनीयसी ।

जरत्तित्तिरकिर्मोरिपटा मूर्त्तिर्माधुरी ।

उदूढा गस्डेनेय गर्जराख्येन गोहृहा ॥ ११४ ॥

(च) कन्दर्पमञ्जरी ॥

कन्दर्पमञ्जरी नाम जाता पुष्पाकराद् पितुः ।

जनन्या कुरुविन्दाया यस्या पित्रा हरिं वरम् ॥ ११५ ॥

हृदि कृत्य न कुत्रापि विवाहोऽन्यत्र कार्य्यते ।

किङ्किरातोऽज्जलरुचिर्विचित्रसिन्ध्या वृता ॥ ११६ ॥

लेखा का प्रसव किया । रत्नलेखा मन.शिला की तरह कान्ति वाली तथा भ्रमर के मद्दश सुन्दर वस्त्र को पहिनती थी । वह श्रीराधिका की परमप्रिया और वृषभानु जी की सेवा में अनुरता थी । अर्द्ध-चारिका नाम वाली जिसकी माता नेत्रों को भयानक रूप से घुमाती हुई माधव को देख कर तर्जना किया करती थी ॥ ११० । ११२ ॥

शिखावती धन्यधन्या से सुशिखा गर्भ में शिखावती हुई थी । वह कर्णिकार की तरह अंगकान्तिवाली तथा कुन्दलता से कुछ छोटी थी । वृद्ध तित्तिर पक्षि के सदृश वस्त्र को धारण करती थी । शिखावती मानों माधुरी की मूर्त्ति थी । गर्जर नामक गोप से उसका विवाह हुआ था ॥ ११३ । ११४ ॥

पिता पुष्पाकर तथा माता कुरुविन्दा से कन्दर्पमञ्जरी उत्पन्ना

रूपादिभिः स्वसुः साम्यात् तदभ्रान्तिभकारिणी ।

भ्रात्रा चक्रे चरणस्येयं परिणीता कनीयसा ॥ ६५ ॥

अथ वरः ॥

एतदष्टककल्पाभिष्टाभिः कथितो वरः ।

एता द्वादशवर्षीयाश्चलद्वाल्याः कलावती ॥ ६६ ॥

शुभाङ्गदा हिरण्याङ्गी रत्नलेखा शिखावती ।

कन्दर्पमञ्जरी फुल्लकलिकानङ्गमञ्जरी ॥ ६७ ॥

(क) तत्र कलावती ॥

मातुलो योऽर्कमित्रस्य गोपो नाम्ना कलाङ्कुरः ।

कलावती सुता तस्य सिन्धुमत्यामजायत ॥

हरिचन्दनवर्णैयं कीरद्युतिपटावृता ।

कपोतः पति रेतस्य बाहिकस्यानुजस्तु यः ॥ ६८-६९ ॥

आठवीं सुदेवी रंगदेवी की यमजा (जोड़ली) भगिनी तथा -
मृदुस्वभावा वाली थी । रूप, गुण, स्वभावादिकों से भगिनी रंग-
देवी के साथ बराबर होने से इनको देखकर रंगदेवी का भ्रम होता
था । रंगदेवी के पति रक्तचरण के कनिष्ठ भ्राता के साथ सुदेवी का
विवाह हुआ था ॥ ६४ । ६५ ॥

अथ वर का वर्णन करते हैं । इन अष्टसरियों के बराबर अन्य
अष्ट सरियाँ वर नाम से कही जाती हैं । वे सब द्वादश वर्षीया अ-
सीत बाल्यावस्था वाली हैं । उन सबके नाम कलावती, शुभाङ्गदा,
हिरण्याङ्गी, रत्नलेखा, शिखावती, कन्दर्पमञ्जरी, फुल्लकलिका, अन-
ङ्गमञ्जरी हैं ॥ ६६ । ६७ ॥

उनमें से कलावती अर्कमित्र के मामा कलाङ्कुर नामक गोप की
कन्या तथा सिन्धुमती के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं । वह हरिचन्दन के
सदृश अंगगन्तिवाली तथा तोता के वर्ण तुल्य वस्त्र पहनने वाली

(स) शुभाङ्गदा ॥

शुभावदातवर्णेयं विशाखायाः कनीयमी ।

पाश्रस्यानुजेनेयं परिणीता पतत्रिणा ॥ १०० ॥

(ग) हिरण्याक्षी ।

हिरण्याक्षी हिरण्यामा हरिणीगर्भसम्भवा ।

सर्वसौन्दर्यसन्दोह-मन्दिरा भूतविग्रहा ॥ १०१ ॥

यज्या यशस्वी धर्मात्मा गोपो नाम्ना महावसुः ।

स मित्रं रविमित्रस्य विचित्रगुणभूषितः ॥ १०२ ॥

अभिलाष्यन् सुतं वीरं कन्याञ्चातिमनोरमाम् ।

इष्टं भागुरिणारेभे नियतात्मा पुरोवसा ॥ १०३ ॥

ततः सुधामयः कोऽपि मुचाश्चरत्स्थितः ।

नन्दितस्तं मुचन्द्रायै सधर्मिण्यै च दत्तवान् ॥ १०४ ॥

तमश्नन्त्यां चरुं तस्यामलिन्दे सम्प्रमोज्झितः ।

सुरङ्गाख्या ब्रजचरी कुरङ्गी रङ्गिणीप्रसूः ॥ १०५ ॥

हैं । बाहिक के अनुज कपोत इसके पति हैं ॥ ६८ । ६९ ॥

शुभाङ्गदा मंगलमय सुवर्ण के तुल्य अङ्गकान्ति वाली, तथा विशाखा से कुछ छोटी हैं । पीठर के अनुज पतत्रि के साथ इन का विवाह हुआ था ॥ १०० ॥

हिरण्याक्षी हिरण्यकान्ति वाली तथा हिरणी-गर्भ से उत्पन्न हुई हैं । उनका शरीर इतना सुन्दर था मानो सौन्दर्य का मन्दिर है । महावसु नामक यजनशील, परम यशस्वी धर्मात्मा गोप रहे । वे विचित्र गुणों में विभूषित तथा रविमित्र के मित्र थे । उन्होंने वीर-पुत्र तथा मनोरमा कन्या के अभिलाषा से संयतात्मा पुरोहित भागुरि के द्वारा यज्ञ का आरम्भ किया । उस यज्ञ से अमृतमय कोडें सुन्दर चरु उठा जिससे कि महावसु ने प्रसन्न होकर अपनी पत्नी मुचन्द्रा

(घ) फुल्लकलिका ॥

श्रीमन्नात् फुल्लकलिका कमलिन्याममूर् पितुः ।

सेयमिन्द्रीयस्यामा शक्रचापनिभाभ्या ॥ ११७ ॥

सहजेनान्विता पीततिलकेनालियस्तथले ।

विदुराऽस्याः पतिर्दूरांमहिषाराक्षस्यमा ॥ ११८ ॥

(ज) अनङ्गमञ्जरी ॥

वसन्तकेतरीकान्तिर्मञ्जुलानङ्गमञ्जरी ।

मयार्धाक्षरनमेयमिन्द्रीयसनिभाभ्या ॥ ११९ ॥

दुर्मदो मदचानस्याः पतिर्यो देवरः स्वयम् ।

प्रियामौ ललितोदय्या विशाखाया विशेषतः ॥ १२० ॥

॥ अथ वयस्यानां सामान्यकर्मणि लिख्यन्ते ॥

वेशः प्रिययस्याया गुरुरस्यादिवञ्चनम्

हरिणा प्रेमकलहे तस्या एवानुयान्विता ॥ १२१ ॥

हुई थी । उसके पिता ने हृदय में हरि को अपना वर मानकर अन्यत्र विवाह नहीं करवाया था । बिहिरात के सदृश उज्ज्वल कान्ति वाली तथा विचित्र वस्त्र को पहिनती थी ॥ ११५ । ११६ ॥

* पिता श्रीमल्ल तथा माता कमलिनी से फुल्लकलिका हुई थी । वह नीलकमल के सदृश द्यामा तथा इन्द्रधनु के बराबर मनोहर वस्त्र को पहिनती थी । फुल्लकलिका स्वभाव से कपाल में पीतधर्ण तिलक को धारण करती थी । विदुर उसका पति था जो कि उसको दूर से महिषी करके आह्वान करता था ॥ ११७ । ११८ ॥

.. अनङ्गमञ्जरी वसन्त कालीन केतकी की तरह मनोहर कान्ति वाली तथा नीलकमल के सदृश वस्त्र को पहिनती थी । जैसा इसका नाम था वैसी थी भी । उसका पति अभिमान्ति तथा दुर्मद नाम से ख्यात था । जो बहिन का देवर था । अनङ्गमञ्जरी ललितादेवी और विशेष रूप से विशाखा जी की अति प्रिया थी ॥ ११९ । १२० ॥

अभिसारे सहायत्वमन्त्रादिपरिवेशनम् ।
 आस्वादनं सह क्रीडा रहस्यपरिगोपनम् ॥ १२२ ॥
 पवित्रचित्तचातुर्यं परिचर्या यथोचितम् ।
 उत्कर्षम्लानिकारित्वं स्वपक्षप्रतिपक्षयोः ॥ १२३ ॥
 तैर्यत्रिकन्तलोह्लासे उभयोः परितोषणम् ।
 अवकाशोचिताचारसेवाप्रार्थनभाषणम् ॥ १२४ ॥
 इत्यादि सुष्ठु भूयिष्ठं ज्ञेयमासां विचक्षणैः ।
 सर्वा एवाखिलां कर्म जानन्ति कुर्वन्तेऽपि च ॥ १२५ ॥
 तत्र काश्चिन्नियुक्ताः स्युरनियुक्ताश्च काश्चन ।
 नियुक्ताः सुष्ठु या यत्र लिख्यन्ते ताः क्रमादिमाः ॥ १२६ ॥
 तथापि परमप्रेष्ठसख्यः श्रेष्ठतयोदिताः ।
 सर्वत्र ललितदेवी परमाध्यक्षतां गता ॥ १२७ ॥

अब वयस्यों के सामान्य कर्म समूह लिखते हैं । प्रियवयस्या श्री राधिका की वेशरचना, -गुरु-पत्यादिकों का वञ्चन, हरि के साथ प्रेमकलह में भीराधिका की अनुगामिनी होना, अभिसार में सहाय करना, अन्नादिकों का परिवेशन, लीला आस्वादन, रहस्यों का परिगोपन, यथोचित परिचर्या में चित्त में चतुराई रखना, अपने पक्ष में उत्कर्ष तथा प्रतिपक्ष में म्लान दिखाना, नृत्य गीत कलाओं के लह्लास से दोनों को प्रसन्न करना, यथाअवकाश उचित आचार-सेवा प्रार्थना, भाषण करना इत्यादिक अनेक कार्य हैं इनके हैं । विचक्षणों से ऐसा जानना चाहिए । ऐसे ही तो समस्त सखियाँ समस्त कार्यों को जानती हैं और करती भी हैं । तो भी उन कार्यों में कोई नियुक्त हुई हैं कोई अनियुक्त भी हैं । जिस कार्य में जो नियुक्त है उसको क्रम से कहने हैं । उन सब वयस्यों में परमप्रेष्ठ सखियाँ श्रेष्ठ करके मानी जाती हैं । सब से ललितदेवी परम अध्यक्षता को प्राप्त

स्वीकृतारिलभावेय सन्धिविग्रहिणी मता ।
 अपराध्यति राधायै माधवे क्वापि देवत ॥ १२८ ॥
 चरिडम्ना कुञ्चितमुरी सखीदयुतिभिरावृता ।
 विग्रहे प्रौढिवादे च प्रतिवाक्योपपत्तिषु ॥ १२९ ॥
 प्रतिभामुपलब्धाभिर्घटौ विग्रहमाग्रहात् ।
 आयाति सन्धिसमये तटस्थेऽथ स्थिता स्वयम् ॥ १३० ॥
 भगवत्यादिभिर्द्वा र्युक्ता सन्धि करोत्यसौ ।
 पौष्पाणा मण्डन छत्र शयनोत्थानोत्थमनाम् ॥ १३१ ॥
 मदनोन्मादिनी वाद्या या किन्नरकिशोरिका ।
 प्रसून-वल्ली-ताम्बूलवल्ली पूगद्रुमेषु च ॥ १३२ ॥
 निर्मिताविन्द्रजाले च प्रहेल्याञ्जातिमोविदा ।
 ताम्बूलेऽधिकृता या स्युरस्यास्तु दासिकाश्च या ॥ १३३ ॥
 सख्यश्च बलदेवस्य वरा मान्योपजीविनाम् ।
 या कन्यका स्यु सर्वामु तास्त्रेवाव्यक्षता गता ॥ १३४ ॥

हुई है । वह सकल भावों की स्वीकृति की हुई है और दोनों के सन्धि-
 विग्रह कराने में परम चतुरा है । कभी श्रीमाधव में श्रीराधा के लिये
 अपराध दिखाती हैं । कभी रिसाव कर मुख कुञ्चन के द्वारा चरिडमा
 भाष को धारण करती हैं । कभी मग्री श्री राधिका को अङ्गकान्ति
 को धर लेती हैं । विग्रह, (प्रिवाद) प्रौढिवाद, प्रतिगम्यादिकों में प्रतिभा
 के साथ ऐसी ही बन जाती हैं तथा मिलन समय आने पर स्वयं
 तटस्था हो जाती हैं । वह भगवती पौष्पमासी प्रभृति के द्वारा मिल-
 कर दोनों का मिलन करानी हैं । दोनों के शयन उत्थान गृहों में पुष्पा
 के मण्डन में, छत्र के निर्माण करन में, मदनोन्मान्तिनी नामक चाटिका
 में नियुक्ता जो किन्नर किशोरिकाओं का गण है उनकी, पुष्पलता ताम्बू-
 लवल्ली-सुपारी वृक्षों की रक्षा में, इन्द्रजालरचना में, प्रहेलिकादिक विषय
 में अतिपरिणत तथा ताम्बूल-सेवा में अधिकार प्राप्त करने वाली जो

रत्नलेखादयोऽष्टौ याः प्रियसख्योऽनुकीर्तिताः ।
सर्वत्र ललितदेव्या ज्ञेयाः प्रत्यन्तराः सदा ॥ १३५ ॥
रत्नप्रभा रतिकले तत्राप्यष्टासु विश्रुते ।
गुणासौन्दर्यं वैदग्ध्यं माधुरीभिरुपागते ॥ १३६ ॥

अथ पुष्पेषु मण्डनम् ॥

किरीटं चालपाश्या च कर्णपूरौ ललाटिका ।
अत्रैवेयकाङ्गदे काञ्चीकटके मणिवन्धनी ॥ १३७ ॥
हंसकः कञ्चुलीत्यादि विविधं पुष्पमण्डनम् ।
मणिस्वर्णादिवल्लसस्य मण्डनस्यात्र यादृशः ।
आकारश्च प्रकारश्च कौसुमस्य च तादृशः ॥ १३८ ॥

१. किरीटम् ॥

रङ्गिणी हेमयूथीभिर्नवमाली-सुमालिभिः ।
धृतिमणिव्यगोमेदमुक्ते न्दुमणिकान्तिभिः ।
विन्यस्ताभिर्यथाशोभमाभिः सुष्ठु विनिर्मितम् ॥ १३९-१४० ॥

जो दासियों का गण है उनकी, श्रीवलदेव जी की अष्ट सखीगण की
और कन्यकागण सबकी अध्यक्षता को श्रीललिताजी प्राप्त हुई थी ।
रत्नलेखादिक जो प्रियसखियाँ कीर्तिता हुई हैं, वे सब प्रकार से ललि-
ताजी की प्रीति-अनुगता हैं । उन अष्ट प्रियसखियों में गुण, सौन्दर्य
वैदग्ध्य और माधुर्यादिक के द्वारा रत्नप्रभा और रत्नकला दोनों अति
प्रसिद्ध हैं ॥ १३५ । १३६ ॥

अथ पुष्पों के मण्डन का वर्णन करते हैं । किरीट, चालपाश्या,
कर्णपूर, ललाटिका, प्रेवेयक, अङ्गद, काञ्ची, कटक, मणिवन्धनी,
हंसक, कञ्चुली ये सब पुष्पों के मण्डन हैं । मणि, सुवर्णादिक के
रचित मण्डनों के सदृश आकार-प्रकार में पुष्पों के भी मण्डन ठीक
ऐसे ही हैं ॥ १३७ । १३८ ॥

कृतसप्तशिरसं हेममेतकी कोरकच्छदैः ।

चित्रकैरातुभिश्चित्रैश्चित्तहारिहरेरिदम् ॥ १४१ ॥

किरीटं पुष्पपाराख्यं रत्नपारादपि प्रियम् ।

गान्धर्व्यातः कृतिं यस्य ललिता समश्चित्त ॥ १४२ ॥

तत्तु पञ्चशिरसं पुष्पैः पञ्चवर्णैर्विनिर्मितम् ।

कोरकैरपि गान्धर्व्याभूषणं मुकुटं भवेत् ॥ १४३ ॥

२ । वालपाश्या ॥

केशत्रन्धनडोरी च विचित्रैः कोरकादिभिः ।

आवलिगुम्फिता गाढं वालपाश्वेति कीर्तिता ॥ १४४ ॥

३ । कर्णपूरः ॥

ताडङ्गं कुरण्डलं पुष्पी कर्णिका कर्णवेष्टनम् ।

इति पञ्चविधः प्रोक्तः कर्णपूरोऽत्र शिल्पिभिः ॥ १४५ ॥

किरीट-माणिस्य, गोमेद, (लहसनिया) मुक्ता, चन्द्रकान्तमणियों के समान वर्णवाले रङ्गिणी, (नील) हेमयूथी, (सोनजुही) नवमाली, (चमेली) सुमालि (दुपहरिया) पुष्पों के द्वारा जहाँ जैसा शोभित हो उसी प्रकार से बनाये हुए मस्तक के भूषण किरीट है । सुवर्ण केतकी के कोरक पत्र से तथा चित्र विचित्र धातुओं से विराचित, सप्तशिरा विशिष्ट होता है । यह श्रीहरि के चित्त को हरण करने वाला है । किरीट का नाम पुष्पार है जो कि रत्नपार से भी प्रिय है, जिसकी रचना गान्धर्वा श्रीराधिका जी से ललिता भली भाँति सीखी थी । वह पाँच वर्ण के पुष्पों से अथवा कोरकों से पाँच शिराओं से युक्त होने पर श्री राधिका जी का मुकुट होता है ॥ १३६-१४३ ॥

केशत्रन्धनडोरी विचित्र कोरकादिकों से गाढ़ रूप आवलि के द्वारा गुंथी जाने से वालपाश्या कही जाती है ॥ १४४ ॥

ताडङ्ग, कुरण्डल, पुष्पी, कर्णिका, कर्णवेष्टन रूप से कर्णपूर शि-

(क) ताडङ्कम् ॥

तालपत्राकृतिर्भूषा ताडङ्कः स द्विघोदितः ।

चित्रपुष्पकृतः स्वर्णकेतकीदलजस्तथा ॥ १४६ ॥

(ख) कुण्डलम् ॥

मयूरमकराम्भोज-शशाङ्कार्द्धादिसन्निभम् ।

स्वानुरूपैः कृतं पुष्पैः कुण्डलं बहुघोदितम् ॥ १४७ ॥

(ग) पुष्पी ॥

चतुर्वर्णैः क्रमात् पुष्पैश्चक्रवालतया कृतः ।

मध्ये पर्याप्तगुञ्जोऽयं स्तवकैः पुष्पिकोच्यते ॥ १४८ ॥

(घ) कर्णिका ॥

राजीवकर्णिकायाश्च पीतपुष्पैर्विनिर्मिता ।

भृङ्गिकादाडिमीपुष्पप्रोतमध्यात्र कर्णिका ॥ १४९ ॥

(ङ) कर्णवेष्टनम् ॥

यत्तु कर्णं वेष्टयति वृत्तं तत् कर्णवेष्टनं ॥ १५० ॥

लियों के द्वारा पाँच प्रकार का है । तालपत्र के आकार का भूषण ताडङ्क दो प्रकार का है । विचित्र पुष्पों से निर्मित तथा सुवर्ण केतकीपत्रों से जात । मयूर, मकर, अम्भोज, अर्द्धचन्द्रादिक के तुल्य तदनुरूप पुष्पों से निर्मित कुण्डल बहुत प्रकार के हैं ॥ १४५ । १४७ ॥ चक्रवाल रूप से रचित क्रम से चार वर्ण के पुष्पों के द्वारा स्तवक के आकार वाला मध्य में पर्याप्त गुञ्जा-युक्त पुष्पिका है । पद्म-कर्णिका के (पीला) गौरवर्ण पुष्पों से विरचित बीच में भ्रमरी युक्त एक अनारपुष्प से गुंथी हुई कर्णिका है । जो कुण्डल कर्णदेश को वेष्टन करके रहता है अर्थात् जो कुछ गोलाकार और घृहत् है उसे कर्णवेष्टन कहते हैं ॥ १४८-१५० ॥

४ । ललाटिका ॥

द्विवर्णापुष्परचिता द्विपार्श्वा शोणमध्यमा ।

अलकायलिमूलस्था पुष्पपात्री ललाटिका ॥ १५१ ॥

५ । ग्रैवेयकम् ॥

वत्तुलाश्च चर्तुग्रीवा कौमुभ्यो यत्र कोष्टिकाः ।

तद्वर्णापुष्पकर्मध्यं ज्ञेयं ग्रैवेयकस्तु तत् ॥ १५२ ॥

६ । अङ्गदम् ॥

कल्लसुष्पलतातन्तु प्रोतैर्मण्डलतां गतैः ।

त्रिवर्णोपपुष्पयुतत्रिपुष्पाननमङ्गदम् ॥ १५३ ॥

७ । काञ्ची ॥

क्षुद्रमल्लरिसंवीता चित्रगुम्फकरम्बिता ।

पञ्चवर्णैर्विरचिता कुसुमैः काञ्चिरुच्यते ॥ १५४ ॥

ललाटिका दो वर्ण पुष्पों के द्वारा विरचित है । इसका मध्य-भाग रक्तवर्ण है । इसके दो पार्श्व हैं तथा जो कि अलकायली के मूलदेश में अर्थात् ललाट के ऊपर क्षुद्र केशों के मूलदेश में रहता है । यह पुष्पों की परिपाटी से युक्त होती है ॥ १५१ ॥

समष्टि में गोलाकार और मध्य में लतापताओं से शोभित, पुष्प रचित चतुष्कोण से युक्त, कौञ्चिका वर्ण के तुल्य पुष्पों से मध्य भाग में अलंकृत ग्रैवेयक अर्थात् कण्ठभूषण है ॥ १५२ ॥

लतातन्तु अर्थात् लता के सूत से गुंथे हुए पुष्पों के द्वारा जिस का मध्यभाग विरचित है, तीनों वर्ण के पुष्प जिसके ऊपरि भाग में वि-न्यस्त हैं, जिसमें तीनों पुष्प मुख्य युक्त होकर वर्तमान हैं इस प्रकार के भूषण को अङ्गद अथवा ताड़ कहते हैं ॥ १५३ ॥

छोटे छोटे मालरों से वेष्टित, विचित्र गुम्फन से युक्त और प-

८। कटकः ॥

कुड्यवृन्तैर्लतातन्तौ प्रोतैर्बैकशस्तु यः ।

कल्पितो विविधैः पुष्पैः कटका बहुघोदिताः ॥ १५५ ॥

९। मणिवन्धनी ॥

चतुर्वर्णाप्रसूनाङ्ग गुच्छलम्बित्रिधारिका ।

करडोरी कुसुमजा कीर्तिता मणिवन्धनी ॥ १५६ ॥

१०। हंसकः ॥

पृथुला च चतुःशृङ्गी पुष्पशृङ्गाटलम्बिका ।

पार्श्वे सौमनसा गुम्फाः स्फुरन्ति हंसको भवेत् ॥ १५७ ॥

११। कञ्चुली ॥

पङ्क्वर्णापुष्प विन्यास सौष्ठवेनातिचित्रिता ।

कस्तूरीवासिता कण्ठलम्बिगुच्छात्र कञ्चुली ॥ १५८ ॥

द्वयर्ण पुष्पों से विरचित भूषण काञ्ची-अर्थात् स्त्रियों का कटिभूषण चन्द्रहार है ॥ १५४ ॥

पुष्पों की कली और घृन्त (बोंटा) समूह को लतासूतों में एक एक करके गूँथने से कटक बनता है । इसमें नाना प्रकार के पुष्प रहते हैं तथा यह चरण का भूषण है । नामान्तर मल्ल है यह अनेक प्रकार का है । चार वर्ण के पुष्पों के द्वारा विरचित गुच्छ में लम्बा-यमान तीन धार वाली पुष्पों से जात मणिवन्धनी अर्थात् हाथ की डोरी विशेष है ॥ १५५-१५६ ॥

हंसक चरणों का भूषण है । यह अधिक रूप से चरणों को घेष्टन करके मौजूद रहता है तथा इसका आकार गोलाकार सींग के तुल्य है । प्रवान पुष्पों से लम्बमान होता है । इसके पार्श्वदेश में पुष्प रचना समूह वर्तमान रहता है ॥ १५७ ॥

छै वर्ण के पुष्प विन्यास से जिसकी शोभा व्याप्त है तथा जो

१२ । छत्रम् ॥

शुक्लैः सूक्ष्मशलाकालिपय्युप्तैः कुमुदैः कृतम् ।
स्वर्णयुष्माचितच्छत्रदण्डं छत्रमुदीर्यते ॥ १५६ ॥

१३ । शयनम् ॥

चम्पकाशोकपर्याप्तमल्लीमुष्पितगण्डका ।
नवमालीकृता तूली विस्तीर्णा शयनं भवेत् ॥ १६० ॥

१४ । उल्लोचः ॥

सूचीत्रापसद्वक् चित्रपुष्पविन्यासनिर्मितः ।
खण्डितैः केतकीपत्रैः पर्णवान् मल्लिलम्बिभिः ॥ १६१ ॥

१५ । चन्द्रातपः ॥

पार्श्वे च सुफलन्मुक्तासिन्धुवार कलापरम् ।
मध्यलम्बिनवामोजश्चन्द्रातप इतीर्यते ॥ १६२ ॥

कस्तूरी गन्ध से सुवासित है, कण्ठदेश में जिसका गुच्छ लम्बाय-
मान रहता है वह कञ्चुली अर्थात् (कोंचोली) है ॥ १५८ ॥

सूक्ष्म-सूक्ष्म शलाका प्रस्तुत करके उसमें पुष्पों को गूँथे तथा सु-
वर्णजुही पुष्पके द्वारा विचित्र ढण्ड निर्माण कर छत्र बनावें ॥ १५६ ॥

चम्पक, अशोक और प्रचुर परिमाण से मल्लिका पुष्पों के द्वारा
[गेंडुया] गेंद बनावें । नवमल्लिका पुष्पों से दीर्घाकार तकिया प्र-
स्तुत कर शय्या को सजावें ॥ १६० ॥

उल्लोच एक प्रकार चन्द्रातप है । अल्प समय में पड़े हुए निर्मल
जल की भाँति स्वच्छ और विचित्र पुष्पों के विन्यास से विरचित
तथा ढण्ड ढण्ड के बड़ा पत्र के द्वारा पत्रयुक्त कुछ मलीन है ॥ १६१ ॥

जिसका पार्श्व भाग में मुक्ता के तुल्य सिन्धुवार पुष्प समूह दी-
प्तिमान होता है तथा जिसके मध्यदेश में नवीन पद्म लम्बमान है
उसे चन्द्रातप [चोंदोया] कहते हैं ॥ १६२ ॥

१६ । वेश्म ॥

शरकाण्डै कृतस्तम्भ चित्रपुष्पादिसमूहे ।

पुष्पै कृतचतु खण्डि विविधैर्वेश्म भण्यते ॥ १६३ ॥

अथ दूत्य ॥

वृन्दा वृन्दारिका मेला मुरल्याद्यास्तु दूतिकाः ।

कुञ्जादिसंस्कृताभिज्ञा वृक्षासुर्वेदकोविदा ॥

वशीकृतस्थानजरा द्वयो स्नेहेन निर्भरा ।

गौराङ्गयश्चित्रवसना वृन्दा तामु वरीयसी ॥ १६४ ॥

प्रशाखा ॥

प्रशाखा नवतो भद्रा प्रेमनर्मसखी मता ।

असण्डाऽक्षीणमन्त्रेय गोविन्दे नर्मरुर्मरुता ॥

परिज्ञातार्थहृदया बुद्धिदूत्यैरुकोविदा ।

साम्नि कान्दर्पिकोपाये दाने भेदे च पेशला ॥

शरकाण्डा वृण के वृण्ड से जिसका स्तम्भ अर्थात् खूँटी
निरचित है तथा खूँटी-समूह विचित्र पुष्पों से आवृत हैं, इस प्रकार
विविध पुष्पों से रचित चतुरश्र विशिष्ट स्थान को वेश्म अर्थात् गृह
कहते हैं ॥ १६३ ॥

अन दूतिओं का वर्णन करते हैं । वृन्दा, वृन्दारिका, मेला, मु-
रली आदिक दूतिका हैं । वे सब कुञ्जादिकों के संस्कार में परम
अभिज्ञा तथा जड़ी-बूटी को पहिचाननेवाली आयुर्वेद में परम परिण-
ता, समस्त वंश में रगने वाली और दोनों के स्नेह में निर्भर हृदया,
गौराङ्गी और विचित्र वसन पहरने वाली हैं उनमें वृन्दा श्रेष्ठ
है ॥ १६४ ॥

विशाखा जो सब से ही मङ्गलरूपिणी, प्रेम-नर्मसखी मानी
जाती हैं । वह अद्वैत अर्थ मन्त्रणा को देने वाली, तथा श्री गो-

पत्रभङ्गादिरचने माल्यापीडादिगुम्फने ।
 विचित्रसर्वतोभद्रमण्डलादिप्रिनिर्मितौ ॥
 नानाप्रिचित्रमूत्रेण सुचित्रप्रक्रियासु च ।
 सूर्याराधनसामग्रीसाधने च विचक्षणः ॥
 विचित्रदेशीयगीते सुदक्षा ध्रुपदादिषु ।
 रत्नावलिप्रभृतयो या सख्यश्चित्रकोविदा ॥ १६५-१६६ ॥

वल्गुदास्य ॥

माधवी मालती चन्द्रेरेखाद्या आलयस्तथा ।
 याश्च वल्गाधिकारिण्य सख्यो दास्यश्च सम्मता ॥ १६७ ॥
 या वन्यदेव्यधिकृता सर्गानन्दचमत्कृतौ ।
 याश्च प्रसूनवृक्षेषु सख्योऽधिकृतिमाश्रिता ॥ १६८ ॥
 मालिकाद्याश्च यास्तासु सर्व्यास्वध्यक्षतां गता ।
 तृतीया चम्पकलता दृत्यतन्त्रप्रघटके ॥ १६९ ॥

विन्द मे तस्मै भाव को रचती हैं । जो हृदय मे समस्त यातां को पहिचान लेती है और बुद्धि के द्वारा दूती क्रिया में परम परिष्ठता हैं तथा साम, कर्प सम्बन्धी उपाय,दान और भेदों मे चतुरा हैं । पत्र-पुष्पों की रचना मे, माल्यादिक गुंथने मे, सय से विचित्र मङ्गलमय मण्डलादि निर्माण मे, नाना प्रकार की विचित्र मन्त्रणाओं के द्वारा बडे २ काव्यों मे, सूर्य आराधन की सामग्रियों के साधन मे विचक्षण तथा विचित्र नाना देशीय गीतों मे [ध्रुपदादिकों मे] रत्नावलि प्रभृति परम अभिज्ञा जो सखियाँ हैं, माधवी, मालती, चन्द्र-रेखादिक जो आलीगण हैं, वस्त्राधिकारिणी जो रुक्मी-दासीगण हैं, सकल आनन्द-चमत्कार-कृति मे अधिकार प्राप्त जो वनदेवियाँ हैं, पुष्प-वृक्षों मे अधिकार प्राप्त जो मालिकादि सखियाँ हैं, उन सय की अध्यक्षा ललिता जी हैं । तीसरी चम्पकलता की दौत्य-मन्त्रणा मे

निगूढागमसम्भारा वाचोयुक्तिमिशारदा ।

उपायेन पट्टिम्ना च प्रतिपक्षापरूपकृत् ॥ १७० ॥

फलप्रसूनकन्दाना सन्धानप्रक्रियाविधौ ।

हस्तचातुर्यमात्रेण नानामृगमयनिर्मितो ॥ १७१ ॥

पडसाना परीक्षाया शुद्धिशास्त्रे च मोहिदा ।

मितोत्पलाकृतिपटु मिष्टहस्तेति मिश्रुता ॥

पौसगव्यश्च पचने या सख्यो दासिनाश्च या ।

कुरङ्गाक्षी प्रभृतय सख्यो या अष्टसख्यया ॥ १७२ ॥

अष्टसखीचरितम् ॥

सख्यौपु द्रुमलतागुलमेघविकृताश्च या ।

सखीप्रभृतय सर्वा सम्प्राप्ताध्यक्षतामसौ ॥ १७४ ॥

गुप्त रूप से कार्य करने वाली तथा वचन युक्तियों में परम परिष्ठता है। पटु त्पाय के द्वारा प्रतिपक्ष में अपकर्ष देने वाली भी हैं ॥ १६५-१७० ॥

फल, पुष्प, मूलों का सन्धान कार्य में, हाथों के चातुर्य मात्र से नाना प्रकार की मृगमय वस्तुओं की रचना में, छै रसों की परीक्षा कारिणी शुद्धि शास्त्र में परिष्ठता, मिसरी-सितोपलावि के बनान में चतुरा, मिष्टहस्ता नाम से प्रसिद्धा, दुग्धादि की साम प्रियो को बनाने वाली जो सखी-दासियों हैं तथा समस्तलता, गुल्म वृक्षान्का में अधिकार प्राप्त कुरङ्गाक्षी प्रभृति जो आठ सखियों हैं, उन सबकी अध्यक्षता चम्पकलता जी हैं ॥ १७१-१७३ ॥

चित्रा जी सर्वत्र विचित्र विचित्र वाक्यों में पहुँचने वाली हैं। अपनी विचित्र चातुरी से सर्वत्र अनुर प्रवेश है। गमन अभिस्तार-ण में, छै गुणों के लेख में, सङ्केत जानने में, नाना देशीय भाषा चोलने में, दृष्टिमात्र से क्षीर मधु प्रभृति वस्तुओं के परिचयान ने में,

प्रवेशनीया सर्वत्र चित्रादिपूर्वकर्मम् ।
 चित्रा विचित्रचातुर्या सर्वत्रागो प्रवेशिनी ।
 यानेऽभिसरणाभित्ये पङ् गुणस्य तृतीयं ॥ १७५ ॥
 लेखेऽपीद्वितित्राने नानादेशीयभाषते ।
 दृष्टिमात्रात् परिचये मनुचीरादिवस्तुनः ॥ १७६ ॥
 काचभाजननिर्माणे तन्मध्योर्मिनिर्मितौ ।
 ज्योतिः शास्त्रे पशुव्रातत्रियायां काम्मरणेऽपि च ॥ १७७ ॥
 वृद्धोपचारशास्त्रे च विशेषात् पाठ्यं गता ।
 रसाना पानकादीना सुष्ठु निर्माणकर्मणि ॥ १७८ ॥
 अष्टौ रसालिकाद्याः स्युः याः सत्यः परिकीर्त्तिताः ।
 याश्च पेयाधिकारिण्यः सख्यो दास्यश्च सम्मताः ॥ १७९ ॥
 दिव्यौषधीना प्रायेण होनाना कुसुमादिभिः ।
 तथा वनस्थलीनाञ्च विरघाञ्चाधिकारिताम् ॥ १८० ॥
 लब्धा सख्यादयो याश्च तत्रैवाध्यक्षतां गता ।
 तुङ्गविद्या तु विद्यानामष्टादशतयाशिता ॥ १८१ ॥
 सन्धावतीवकुशला कृष्णनिश्रम्भशालिनी ।
 रसशास्त्रे नये नाट्ये नाटकाख्यायिकादिषु ॥ १८२ ॥

काँचों के बर्तनों की रचना में, उनमें (काँच के बर्तनों में) नाना
 चित्रों के निर्माण करने में, ज्योतिषशास्त्र में, पशुविद्या में, शरादिक
 निर्माण में, वृद्धोपचार शास्त्र में विशेष पटुता प्राप्त तथा रसाल-
 द्रव्य, पानीयद्रव्यों का निर्माण कार्य में चतुर रसालिकादिक जो
 आठ सत्रियों कही गयी हैं, दुग्धाधिकारिणी जो सखी दासोगण है
 दिव्य दिव्य औषधि, कुसुम, वनस्थली, लताओं की अधिकारिणी
 जो सत्रियों है उन सभी अध्यक्षा चित्रा जी हैं ॥ तुङ्गविद्या जी
 अठारह विद्या में पण्डिता हैं और श्रीकृष्ण के अति विश्वास पात्री

सर्वगान्धर्वविद्यायामाचार्यरूपमुपगता ।
 विशेषान्मार्गगीतादौ वीणायन्त्रादिपरिहता ॥ १८३ ॥
 मञ्जुमेधादयः सख्यो या अष्टो परिकीर्तिता ।
 या दूत्य कुशला सन्धौ पठ गुणस्यादिमे गुणो ॥ १८४ ॥
 सङ्गीतज्ञशालाया याः सख्योऽधिकृति गता ।
 मार्दङ्गिक्य कलास्त्यो नर्तकी प्रमुखाश्च या ॥ १८५ ॥
 वृन्दावनान्तस्थेषु जलेष्वधिकृताश्च या ।
 सख्यश्च जलदेव्यश्च तत्रैवाध्यक्षा गता ॥ १८६ ॥
 दन्तुलेखा भवेन्महता नागतन्त्रोक्तमन्त्रके ।
 निधानस्य च मन्त्रेऽपि सामुद्रिकशेषप्रित ॥ १८७ ॥
 हारादिगुम्फने चित्रे दन्तरञ्जनकर्मणि ।
 सर्वरत्नपरीक्षाया पट्टडोरादिगुम्फने ॥ १८८ ॥

हैं । रसशास्त्र में, नीति में, नाट्य में, नाटक प्रदेलिकादिकों में, समस्त गान्धर्वविद्या में, आचार्य पदवी प्राप्त और विशेष करके मार्गगीतादिकों में तथा वीणा-यन्त्रादिकों में परिहता मञ्जुमेधादिक जो आठ सखियाँ हैं, सन्धि कराने में अतिकुशल जो वृत्तियाँ हैं, सङ्गीत रङ्गशाला में अधिकार प्राप्त जो सग्नियाँ हैं, नर्तकी प्रमुख कलावती प्रभृति जो मृदङ्ग बजाने वाली हैं, वृन्दावनस्थ जलो में अधिकार प्राप्त जो सग्नियाँ तथा जलदेवियाँ हैं उन सबकी अध्यक्षता तु गविद्या जी हैं ॥ १७४-१८६ ॥

दन्तुलेखा जी नागतन्त्रोक्त मन्त्रों में और निधान मन्त्र में बलि-
 ण तथा विशेष करके सामुद्रिकशास्त्र में जानने वाली हैं । हारादि
 गूँथने में, चित्र कर्म में, दन्तरञ्जन कार्य में, समस्त रत्नों की प-
 रीक्षा में, पट्टडोरादि गूँथने में, सौभाग्यमन्त्र के लेख में पारस्परिक
 अनुराग बढ़ाते हुए दोनों के भुजों में मन्त्र के धारण करने में कुशल

लेगे मौमाग्यमन्त्रस्य वैशुलं यदृजे धृतम् ।
 अन्योन्यागममुपाय मौमाग्यं जनयेद्वम् ॥ १८६ ॥
 तुङ्गभद्रादयस्त्वस्याः गम्यः स्युः प्रन्यनन्तगः ।
 यास्तु साधारणा दूत्यो द्वयोः पालिन्धिरादयः ॥ १८७ ॥
 तासां रहस्यमार्त्तानामियं भाजननां गता ।
 अलङ्कारेषु वेशेषु कोपरच्छात्रिषां च याः ॥ १८८ ॥
 सख्यो दाम्प्येऽप्यधिभृता यारच वृन्दावनान्तं ।
 स्वलङ्कारधिभृता यारच तास्य वक्षतया स्थिता ॥ १८९ ॥
 रत्नद्विती मद्रोत्तुङ्गा होत्रेऽन्तर्निहिता ।
 वृष्णाग्रेऽपि प्रियसरानर्मन्त्रैस्तुलोऽसुता ॥ १९० ॥
 पाङ्गुगयस्य गुणे तुर्ये यस्तिन्त्रेशिष्यमाश्रिता ।
 कृष्णस्याकर्षण मन्त्र तपसा पूर्वमीयता ॥ १९१ ॥
 त्रिचित्रेन्द्रासुरगेषु गन्धयुक्तनिधौ च याः ।
 कलकलप्रीप्रभृतयः सख्योऽष्टौ याः प्रसर्त्तिताः ॥ १९२ ॥

तुङ्गभद्रादिक जो मग्नियों हैं, दोनों की पालिन्धिरा प्रभृति जो सा-
 धारणा दूतिका हैं, रहस्यमार्त्ताओं की जो पात्री हैं, अलङ्काररचना,
 वेशरचना, कोपरक्षा विषय में निगुत्ता जो मसि दासियाँ तथा वृन्दा
 वन में स्थानों का अधिकार प्राप्त जो सब सरिगण हैं उन सबको
 अभ्यक्ता इन्दुलेखा जी हैं ॥ १८७-१८९ ॥

रगदेवी जी सदा सर्वदा उत्तुङ्गा, हाव, भाव, इङ्गित की तर-
 झिणी रूपिणी हैं । श्रीकृष्ण के समक्ष में भी प्रियसखी के साथ न-
 र्मन्त्रकौतूहल करने में असुता हैं तथा छै गुणों में तथा वाद्यमत्ता में
 अति युक्ति रमने वाली हैं । पहले इनने श्रीकृष्ण के आकर्षण मन्त्र
 की तपस्य की थी । त्रिचित्र अगरागों में, गन्ध वस्तु को लगाने में
 कलकलप्री प्रभृति जो आठ सरियाँ रही गई हैं, धूपनकार्य में अ-

सख्यो दास्येऽप्यधिवृत्ता याश्च धूयनवर्मणि ।
 शिशोरेऽङ्गारधारिण्यस्तपत्तावपि वीजने ॥ १६६ ॥
 आरण्यकेषु पशुषु केशरिषु मृगादिषु ।
 सखीप्रभृतयो याश्च तत्रैपाव्यक्षता गता ॥ १६७ ॥
 सुदेवी केशसंस्कार प्रियसख्यस्तथाञ्जनम् ।
 अङ्गसम्वाहनं चास्याः कुर्वन्ती पार्श्वगा सदा ॥ १६८ ॥
 शारिकाशुकशिखायां नौकरुककुटखेलने ।
 भूरिशकुनशारत्रे च पक्ष्यादिस्तत्रोधने ॥ १६९ ॥
 चन्द्रोदयाद्रूपपादि बन्धिविद्याविधावपि ।
 उद्धर्तनविशेषे च सुष्ठु कौशलमागता ॥ २०० ॥
 गण्डूपक्षेपपात्रेषु गण्डुके शयनेऽपि च ।
 याः कावेरीमृताः सख्यस्ता अस्याः प्रत्यनन्तगाः ॥ २०१ ॥

धिकार प्राप्त जो सखी दासियाँ हैं, शीतकाल में जो अग्नि धरने वाली तथा प्रीप्सु में पंखा चलाने वाली हैं, आरण्य पशु, सिंह मृगा-दि-को का अधिकार प्राप्त जो सखीगण हैं उन सब की अभ्यक्षा रंग-देवी जी हैं ॥ १६३-१६७ ॥

सुदेवी जी निरन्तर प्रिया जी के पास में रहती हैं तथा उनके केश संस्कार, अञ्जन प्रदान, तथा अंग-संवाहन का कार्य करती हैं । शारिका-शुक के सिंगाने में, नौका चलाने में, कुम्कुटों को रिलाने में, शकुन शास्त्र में, पक्षियों के शब्द पहिचानने में, चन्द्रोदय से आर्द्र पुष्पादिकों को जानने में, अग्निविद्या विधि में, उद्धर्तनविशेष में विशेष कुशला हैं । गण्डूप क्षेपपात्रों में, गेंदों के सम्भालने में, शयन कार्यों के समाधान में नियुक्ता कावेरी प्रमुख जो सखी गण हैं, आसन सम्भालने के कार्य में अधिकार प्राप्त जो सखीदासियाँ हैं, प्रतिपक्षों के भावों को जानने के लिये विचरण करने वाली

आसनस्याधिशोरे या. सरयो दस्यश्च सम्मता ।

प्रतिपक्षादिभात्राणा या दानाय चरन्ति च ॥ २०२ ॥

धूर्ता प्रनिधिरूपेण नानागेशधरा स्त्रिय ।

याश्च पक्षिषु वन्येषु द्वेके रधिहृतास्तथा ॥

सख्यश्च वनदेव्यश्च तत्रै पाध्यक्षतां गता ॥ २०३ ॥

सखीनां विभिन्नभागा ॥

अथ शिल्पनियोगादेर्विवृति क्रियतेऽधुना ॥ २०४ ॥

त्रिग्रहे ग्रहिला सख्य पिण्डका निर्वितण्डका ।

पुण्डरीका सिताखण्डी चारुचण्डी मुदन्तिका ॥ २०५ ॥

अकुण्ठिता मलाम्बुली रामची मेचिकादयः ।

ताम्राशुकापि नान्तभा पिण्डके निश्चितागमम् ॥ २०६ ॥

श्लिष्टवचनशोडिष्येर्विलज्जयति माधवम् ।

हरिद्राभा हरिचचेला हरिमित्रापि या गिरा ।

वितण्डिका त्रितण्डाभिर्निग्रहे. स्थानमानयेत् ॥ २०७ ॥

तथा नाना वेश धारिणी जो स्त्रियों है, वन्य पक्षियों (वीरकोकिलादि) में अधिकार प्राप्त जो सब सखी वनदेवियों हैं उन सबकी अभ्यक्षा सुदेवी जी हैं ॥ १६८-२०३ ॥

अब सखियों के विभिन्न भाग बतलाते हैं तथा शिल्प नियोगों का विवरण कहते हैं। त्रिग्रह में छठ रखने वाली जो सखियाँ हैं उन में पिण्डका, निर्वितण्डका, पुण्डरीका, सिताखण्डी, चारुचण्डी, मुदन्तिका, अकुण्ठिता, मलाम्बुली, रामची, मेचिकादिक ये सब हैं। पिण्डका मनोहर कान्तिवाली, ताम्रवर्ण वस्त्र को पहिनती है। वह निश्चिन्त हृदय से श्लिष्ट वचन परिपाटी के द्वारा माधव को लजित करती है। वितण्डिका हरिद्वर्णा तथा हरिद्वस्त्र को पहनने वाली हैं। जो बाणी से हरिमित्रा है। यह त्रितण्डा सखी त्रिग्रह के द्वारा श्रीहृदि

पुण्डरीका पटं धृत्वा पुण्डरीकाजिनच्छवि ।
 पुण्डरीकाङ्गभा तर्ज्जेत पुण्डरीकाक्षमागसि ॥ २०८ ॥
 शिखण्डनीतिवपा गौरीनाम्ना सिताम्बरा सदा ।
 वक्ति कठिन्यमाधुर्यात् सिताखण्डीति या हरेः ॥ २०९ ॥
 चारुचण्डी भगिन्यस्या भृङ्गश्यामा तडित्पटा ।
 चारुचण्डतया वाचां चारुचण्डीति भण्यते ॥ २१० ॥
 सुदण्डिका शिरीषाभा कुरण्डकनिभाम्बरा ।
 करोत्युज्ज्वलमप्येषा पाटवैरसमुज्ज्वलम् ॥ २११ ॥
 अक्रुण्ठिताब्जकाण्डाभा विसकाण्डसिताम्बरा ।
 आग.कृष्णस्य या वष्टि स्वसमाज-समृद्धये ॥ २१२ ॥

के स्थान पर लाती है। पुण्डरीका पुण्डरीक (सफेद कमल) की त-
 रह अंगकान्ति वाली तथा ऐसा ही वस्त्र पहिनती है। पुण्डरीका
 अपराधकारी पुण्डरीकाक्ष भी हरि का पटाञ्चल धारण कर तर्जना
 करती है ॥ २०८ ॥

सिताखण्डी शिखण्डनी की तरह अंगकान्ति वाली, शुभ्रवस्त्र
 धारिणी, गौरी नाम से ख्यात है। यह माधुर्य्य युक्त कठिन वचन
 बोलती है ॥ २०९ ॥

चारुचण्डी सिताखण्डी की भगिनी, भ्रमर की तरह अंगकान्ति
 वाली, विद्युत्त्वस्त्रा है। मनोहर चण्ड वचन बोलने के कारण चारु-
 चण्डी नाम से कही जाती हैं ॥ २१० ॥

सुदण्डिका शिरीष पुष्प की तरह कान्ति वाली, कुरण्डक कान्ति के
 तुल्य वस्त्र पहिनती हैं। यह पाटव वचनों से उज्ज्वलरस को उत्पन्न
 कराती है ॥ २११ ॥

अक्रुण्ठिता कमलकाण्ड की तरह कान्ति वाली तथा विपकाण्ड के
 तुल्य शुभ्रवस्त्र को पहिनती हैं। यह निज समाज की समृद्धि के
 लिये श्रीकृष्ण के अपराध को व्यक्त करती हैं ॥ २१२ ॥

कलकण्ठी कुलीपुष्पप्रणी क्षीरोदकाम्बरा ।

वटि गान्धर्विप्रमान या हेश्वाप्तुर्माक्षया ॥ २१३ ॥

रामची ललिताधाय्या पुत्री गौरी शुक्लाशुक्ला ।

यया हरिर्दुर्वचोभिरुद्धने परिहस्यते ॥ २१४ ॥

पिण्डपुष्पसचि पाण्डुदुःखता मेचका सदा ।

वृण्यस्य कुस्ते व्यक्तमामस्तस्येय या निग ॥ २१५ ॥

अथ दूत्य ॥

साग्रहा निग्रहादौ स्युर्दूत्य स्फलितयौवना ।

पेटरी वारुडी चारी कोटरा कालटिप्पनी ॥ २१६ ॥

मरुण्डा मोरटा चूडा चुण्डरी गोण्डिकादय ।

पिण्डकेलि पुरोगानामेता स्युर्नुगा सदा ॥ २१७ ॥

विपकारडोपमजटा पेटरी वृद्धगुर्जरी ।

वारुडी गारुडीनेणीसट्क् चिमुक्वेणिका ॥ २१८ ॥

कलकण्ठी कुलीपुष्प की तरह कान्ति वाली हैं तथा दुग्ध जल मिश्रित कान्ति के तुल्य वस्त्र को पहिनती हैं । जो चादुनाम्यों से श्री राधिका के मान को श्रीहरि को सुनाती हैं ॥ २१३ ॥

रामची ललिताजी की धात्रीपुत्री हैं तथा गौरांगी हैं । शुक्लकान्ति वाले वस्त्र को पहिनती हैं । इन्होंने उद्धव जी के समस्त दुर्वचनों से श्री हरि का परिहास किया था ॥ २१४ ॥

मेचका पिण्डपुष्पों की तरह कातिवाली हैं, सदा पीला वस्त्र पहिनती हैं । यह श्रीकृष्ण का उनके ही वचनों से अपराध व्यक्त कराती हैं ॥ २१५ ॥

निग्रहादिक में आग्रह रखने वाली, स्फलित यौवना दूतियों हैं । उनके नाम पेटरी, वारुडी, चारी, कोटरा, कालटिप्पनी, मरुण्डा, मोरटा, चूडा, चुण्डरी, गोण्डिकादिक हैं । ये सब पिण्डकेलि की अग्रमामिनी वनचारिणी हैं ॥ २१६ । २१७ ॥

कुचारीभगिनी चारी तप कृत्यायनी स्मृता
 कठोरतपसा कृत्यायनी देवी समाश्रिता ।
 आभारी कोमरा जत्या तिलतण्डुलकेशभाक् ॥ २१६ ॥
 पलिता पाण्डुचिकुरा रजनी कालटिप्पनी ।
 मरुण्डा मुण्डितशिरा पाण्डुरभ्रू कृत्तालिका ॥ २२० ॥
 जानाली मोरग काशरुमुमोपममूर्द्धजा ।
 चूडात्रलिदिग्धमुखा ललाटे पलितोज्ज्वला ॥ २२१ ॥
 चुण्डरी पुण्डरीकाक्षस्तुतार्द्धजर्ती द्विजा ।
 गोण्डिकेय जरङ्गोण्डी मुण्डपाण्डुशिखोज्ज्वला ॥ २२२ ॥

अथ सन्धिदूत्य ॥

चातुर्यसन्धिकुशला शिखरा सौम्यदर्शना ।
 सुप्रसादा सदाशान्ता शान्तिदा कान्तिदादय ॥ २२३ ॥

पेटरी बिपकाण्ड की तरह जटावाली, वृद्ध गूनी हैं। बारुडी गारुडी बेणी के तुल्य बेणी को धारण करने वाली हैं। कुचारी की भगिनी चारी हैं। चिन्दा कठोर तपस्या से कृत्यायनी-देवी का आश्रय प्राप्त कर लिया था। कोटरी जाति में अहिरिणी तथा तिल तण्डुल केशवाली हैं। कालटिप्पनी वृद्धा, पीले केशवाली, रजकिनी है। मरुण्डा मुण्डित मस्तक तथा पीले भ्रू वाली है। मोरग काश पुष्प की तरह केशवाली बनती है। चूडा-त्रलि पलित सुगंध वाली उज्ज्वला है। चुण्डरी पुण्डरीक सदृश नेत्रवाली, अर्द्धवृद्धा प्रा-
 क्षणी है। गोण्डिका जरङ्गोण्डी वाली है उसका मस्तक पीले केश से उज्ज्वल है ॥ २१६ । २२० ॥

अथ सन्धिदूतियों का वर्णन करते हैं। शिखरा, सौम्यदर्शना, सुप्रसादा, सदाशान्ता, शान्तिदा, कान्तिदा सन्धि चातुर्य स कु-
 शल सन्धिदूतियों हैं। वे सब सर्व प्रकार से ललितादेवी से वर्तती

सर्वथा ललितादेवीजीविता वस्तुतस्त्विमाः ।

माधवस्य परिवारेस्तस्यास्ता इति मन्यते ॥ २२४ ॥

गान्धर्व्यायां प्रपन्नायां कलहान्तरितां दशाम् ।

ललितेद्भितमसाद्य हरे रीणतया स्थिताः ॥ २२५ ॥

स्वीया इति धिया तेन निसृष्टाः पृथुयन्तः ।

कृत्तितुष्टा निजामीष्टं सन्धिमेव मुमन्त्रिताः ॥ २२६ ॥

विधाय सुष्ठु गोविन्दाद्विन्दन्त्यः पारितोषिकम् ।

यान्ति वृन्दावनेश्वर्याः प्रसादभरपात्रताम् ॥ २२७ ॥

राघवी शिवदा सौम्यदर्शना सोमवंशजा ।

पौरवी मुप्रसादेयं सदा शान्ता तपस्विनी ॥ २२८ ॥

शान्तिदाकान्तिदे चेति भूमिदेवकुलोद्भवे ।

प्रसादादेव देवर्षे रता वासं व्रजे ययुः ॥ २२९ ॥

अथ द्वितीयमण्डलम् ॥

द्वितीयोऽस्मान्मनाङ्गन्यूनप्रेमा स्थान्मण्डलात् पुनः ।

समासमप्रेमरूपस्तद्वर्गोऽयं निगद्यते ॥ २३० ॥

हैं तथा श्रीमाधव के परिवार में गिनी जाती हैं । श्री-राधिका जी कलहान्तरिता दशम को जब प्राप्त होती हैं तब वे सत्र ललिताजी के इसारे से श्रीहरि के गण होकर ठहरती हैं । स्वीय बुद्धि से महान् यत्न के द्वारा निज अभीष्ट सन्धि का विधान कर श्रीगोविन्द से पारितोषिक चाहती हैं तथा श्रीवृन्दावनेश्वरी की करुणा पात्रता को प्राप्त होती हैं । शिवदा रघुवंशी तथा सौम्यदर्शना चन्द्रवंशी हैं । सु-प्रसादा पुरवासिनी तथा सदाशान्ता तपस्विनी हैं । शान्तिदा, कान्तिदा दोनों भूमिदेव (ब्राह्मण) कुल में उत्पन्ना हैं । ये दोनों देवर्षि जी के प्रसाद से व्रज में वास करती हैं ॥ २२३ । २२६ ॥

अब दूसरे मण्डल का वर्णन करते हैं । दूसरा मण्डल पहिले

वर्गः प्रियसखीनां यः समप्रेमेत्यसौ मतः ।
 स द्विधा स्यान्नित्यसिद्धो भक्तिसिद्धस्तथा भवेत् ॥ २३१ ॥
 नित्यप्रियारणा तत्रापि दशकोटिमितो गणः ।
 समवायो नियुताना लक्षैरष्टाभिरेव च ॥ २३२ ॥
 यदष्टकं परप्रेष्ठसखीरष्टानुगच्छति ।
 वहवः सञ्ख्यास्तत्र सहस्रैः कोऽपि पञ्चपैः ॥ २३३ ॥
 भवेत् कश्चिच्छतं पञ्चैः कश्चित्त्रिचतुरपि ।
 कुतश्चिदिह साधर्म्यात् प्रायः स्यात् सञ्ख्यैकता ॥ २३४ ॥
 समाजः सञ्ख्योऽनेकैरेपाप्येकसमाजता ।
 भवेत् स्नेहविशेषेण कश्चित् षोडशभागिह ॥ २३५ ॥

मण्डल से प्रेम में कुछ न्यून है तथा समप्रेम असमप्रेम रूप से दो प्रकार का है । इसीलिये वह दूसरा मण्डल वर्ग नाम से कहा जाता है । प्रियसखियों का वर्ग समप्रेम करके सम्मत है । वह नित्यसिद्ध तथा भक्तिसिद्ध करके दो प्रकार का है । इनके मध्य में नित्यसिद्ध प्रियसखियों का गण दश कोटि परिमित है । नियत काल के लिये श्रीराधाकृष्ण की सेवा में आसत्ता सखियों का दल आठ लक्ष हैं ।

॥ २३० । २३२ ॥

पहले जो आठ और छै सखियों का उल्लेख किया गया है वे सब प्रधान अष्टसखियों की अनुगामिनी हैं । इनके मध्य में भी बहुत प्रकार का सञ्ख्य अर्थात् दलभेद है ! उनमें से कोई सञ्ख्य पाँच हजार कोई छै हजार संख्या में हैं । फिर भी कोई चार-पाँच हजार कोई तीन-चार हजार संख्या में हैं । वस्तुतः किसी प्रकार से परस्पर सावर्भ्य रहने के कारण समस्त सञ्ख्यों की प्रायः एकता है । अनेक संख्यक सखिमण्डल के द्वारा एक सञ्ख्य नामक गण की सृष्टि होती है परन्तु उनमें से प्रत्येक का एकमात्र समाज है । तो भी स्नेह के विशेष रहने के कारण कोई कोई समाज षोडश भाग में विभक्त होता

विंशत्यापि तथा पञ्चविंशत्या त्रिंशता तथा ।

पष्ठया कश्चित् समाजः स्याच्चतुः पष्ठ्यादिभिस्तथा ॥ २३६ ॥

चतुषष्ट्यादिभिस्तत्र समाजोऽयं प्रपञ्च्यते ।

द्वाभ्यां द्वित्रैस्त्रिचतुरादिभिश्चालीजनैर्मवेत् ॥ २३७ ॥

चत्वारिंशद्युथः कश्चिदेवं पञ्चाशता भवेत् ।

सर्व्वभावेषु साधर्म्ये समाजोऽपि समन्वयः ॥ २३८ ॥

रत्नप्रभा रतिकला सुभद्रा रतिरा तथा ।

सुमुखी च धनिष्ठा च कलहंसी कलापिनी ॥ २३९ ॥

माधवी मालती चन्द्रेखिका कुञ्जरी तथा ।

हरिणी चपलानाम्बु सुरभिश्च शुभानना ॥ २४० ॥

कुरङ्गाक्षी मुचरिता मण्डली मणिकुण्डला ।

चन्द्रिका चन्द्रलतिका पङ्कजाक्षी सुमन्दिरा ॥ २४१ ॥

रसालिका तिलकिनी शौरसेनी सुगन्धिका ।

रामिणी कामनगरी नागरी नागवेष्टिका ॥ २४२ ॥

है । कोई समाज विंशतिजन सखी का, कोई पञ्चविंशति (२५) का, कोई तीस (३०) का, कोई साठ (६०) का, कोई समाज चौसठ (६४) जन सखी का गठन होता है । चौसठ सखी का समाज अथ विस्तृत भाग से प्रदर्शित हो रहा है । कोई दो जन, कोई दो-तीन जन, कोई तीन चार जन सखी के द्वारा गठित होता है । शेषोक्त समाज बहुविध सख्या विशिष्ट है । उल्लेखित समाज के मध्य में चत्वारिंशत् अर्थात् (४०) युथ हैं । इस प्रकार समाज को भी ५०० भाग में विभक्त किया जाता है । सर्वभाव से साधर्म्य अर्थात् समानधर्म रहने के कारण समाज समसंख्या से निर्दिष्ट होता है ऐसा जानना चाहिए । समसंख्या समाज के प्रधान सखियों के ६४ नाम उल्लेखित किये जाते हैं । इसे ६४ सखियों के समाज का विस्तार जानना चाहिए ॥ २३३-२३८ ॥

रत्नप्रभा इत्यादि लेकर मनोहरा इति अन्त पर्यन्त मूलश्लोको

मञ्जुमेधा मुमक्षुः मुमध्या मधुरेक्षणा ।
 तनुमध्या मधुस्पन्दा गुणचूडा वरज्जदा ॥ २४३ ॥
 तुङ्गभद्रा रसोत्तुङ्गा रङ्गवाटी सुसङ्गता ।
 चित्ररेखा विचित्राङ्गी मोदनी मदनालसा ॥ २४४ ॥
 कलकलौ शशिकला कमला मधुरेन्दिरा ।
 कन्दर्परुन्दरी कामलतिका प्रेममञ्जरी ॥ २४५ ॥
 कावेरी चारुक्वरा सुकेशी मञ्जुकेशिका ।
 हारहीरा महाहीरा हारकलौ मनोहरा ॥ २४६ ॥

श्रीराधाया अष्टसख्यः सम्मोहनतन्त्रे-

लीलावती साधिका च चन्द्रिका माधवी तथा ।
 ललिता विजया गौरी तथा नन्दा प्रकीर्तिता ॥ २४७ ॥

अन्याश्चाष्टौ ॥

कलावती रसवती श्रीमती च सुधामुखी ।
 विशाखा कौमुदी माध्वी शारदा चाष्टमी स्मृता ॥ २४८ ॥

तत्र रत्नमवाः ॥

एता नोपेक्षिता उक्ता नित्यानामवधारणे ॥ २४९ ॥

इत्येतत्परिवाराणां श्रीवृन्दावननाथयोः ।

असंख्यानां गणयितुं दिग्मात्रमिह दर्शितम् ॥ २५० ॥

को देखे—अर्थ सरल है ॥ २३६ । २४६ ॥

श्री राधाकी अष्टसखियाँ सम्मोहनतन्त्र में—लीलावती, साधिका, चन्द्रिका, माधवी, ललिता, विजया, गौरी, नन्दा हैं। अन्य अष्टसखियाँ—कलावती, रसवती, श्रीमती, सुधामुखी, विशाखा, कौमुदी, माध्वी, शारदा हैं ॥ २४७ । २४८ ॥

नित्यों के निर्णय में इन सब की उपेक्षा नहीं की गयी है ॥ २३६ ॥

यह श्रीवृन्दावननाथ राधाकृष्ण के असंख्य परिवारों की गणना करने में केवल दिग्मात्र दिखाया गया है ॥ २५० ॥

तत्पान्नपानतामूलहिल्लोलस्थामस्तदय ।

अन्येऽपि ये त्रिशोपा स्यु स्वयमूढास्तु ते तुघै ॥ २५१ ॥

लुप्ततमासीत् कृपया ज्योतिर्घट्येभ्य भानुमत्यामी ।

रूपत्रिपयापि दृष्टि सरसान् शब्दान्त्रैक्षिण्ट ॥ २५२ ॥

शाक्रे दृग्व्यशक्रे, नमसि नमोमणिदिने पष्ट्याम् ।

ब्रजपतिसन्नि राधाकृष्णगणोद्देशदीपिकादीपि ॥ २५३ ॥

इति श्रीलिरूपगोस्वामिपादत्रिरचिनाया श्रीगधाकृष्णगणोद्देशदीपिकाया
बृहद्भाग. सम्पूर्णा ॥

शार्द्या, अन्न, पान, ताम्बूल, नेला, भूलन, तिलरचनाविक अ-
न्यलीला समूह का तथा उस उस लीला की अनुसारिणी अन्य अन्य
सत्रियों के नाम इस ग्रन्थ में उद्धा है । रसिक पण्डितगण विभिन्न
ग्रन्थों से उद्धार कर समुक्त लेवें ॥ २५१ ॥

कालरूप अन्वकार से श्रीराधानाथ के परिवारवर्गों का नाम एक
प्रकार से विलुप्त हो रहा था किन्तु श्रीरूप की दृष्टी भगवत्कृपा रूप
ज्योतिषटा के द्वारा भानुमती अर्थात् सूर्यप्रकाशरूप लाभ कर सरस
शब्दों के अवलोकन में सज्जम हुई है । तात्पर्य यह है श्रीरूप गोदा-
मी ने परिवारों के नाम का त्रिविध शास्त्रों से भगवत् कृपा शक्ति के
द्वारा उद्धार किया है ॥ २५२ ॥

इक् २ अश्व ७ शक १४ हैं । अकों की गति बौधदिसा में है इस
नियम से १४७२ शकान्द आनखमास रविवार पण्डित तिथी में श्री
नन्दमहाराज के शोभायमान गृह में अर्थात् महाजन में श्रीरूपगो-
स्वामिपाद इस “श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका” ग्रन्थ का प्रणयन
करते हैं ॥ २५३ ॥

इति श्रील श्रीपादरूपगोस्वामिविरचित श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका
के बृहद्भाग सम्पूर्ण हुआ । अनुवाद भी सम्पूर्ण हुआ ॥

❀ परिशिष्टम् ❀

(लघु) श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका

श्रीकृष्णस्य रूपादिकम् ॥

सुधास्तावयमाधुर्यदलिताञ्जनचिक्कणः ।

इन्द्रनीलमणिः किंवा नीलोत्पलसचिप्रभा ॥ १ ॥

किंवा नन्यतमालोऽपि मेघपुञ्जमनोहरः ।

प्रभा मारकती कान्तिः सुधास्तावयवारिधिः ॥ २ ॥

पीतवस्त्रपरिधानो वनमालाविभूषितः ।

नानारत्नभूषिताङ्गो नानाकैलिरसाकरः ॥ ३ ॥

दीर्घकुञ्चितकेशोऽपि बहुगन्धसुगन्धितः ।

नानापुष्पमालया च चूडादीप्तिर्मनोहरा ॥ ४ ॥

श्रीमल्ललाटपाटीरस्ति लकालकशोभितः ।

लीलोन्नतभ्रूविलासकामिनीचित्तमोहनः ॥ ५ ॥

अब श्रीकृष्ण के रूपादिकों का वर्णन करते हैं । वे सुधा-स्ताव-
यता-माधुर्य से युक्त और दलित काजर के तुल्य चिक्कण हैं ।
किन्त्या इन्द्रनीलमणि अथवा नीलकमल कान्ति के सदृश श्यामल हैं
तथा नवीनतमाल के तुल्य सुन्दर अथवा मेघपुञ्ज के सदृश मनोहर
हैं । मारकतमणि की भाँति उनकी कान्ति थी । वे सुधा-स्तावयता
के सागर रूप रहें । वे पीताम्बर धारण करने वाले, विविध वनमा-
लाओं से विभूषित, नाना प्रकार के रत्नों से मण्डित अंगवाले,
नाना प्रकार के कैलिरस के सागर हैं । उनका केश लम्बायमान तथा
कुञ्चित हैं जो विविध गन्धों से सुवासित हो रहे हैं । चूडा की
कान्ति नाना प्रकार के पुष्पों की माला से मनोहर है । शोभायमान
ललाट देश तिलक और अलकावली से विशेष सुन्दर हो रहा है ।
वे लीला से उन्नत भ्रूविलास के द्वारा कामिनी गणों के चित्त को मो-

घूर्णयमान सुनयन रक्तनीलोत्पलप्रभम् ।
 खगेन्द्रचञ्चुलाग्रय-सुनासाग्रजसुन्दर ॥ ६ ॥
 मनोहारिकर्णयुग्म मणिकुण्डलशोभितम् ।
 नानामणिकुण्डलाढ्यगण्डस्थलविराजित ॥ ७ ॥
 मुखपद्म सुलाग्रय कोटिचन्द्रप्रभाकरम् ।
 नानाहास्यसुमधुरश्चिबुकौ दीप्तिमान् भजेत् ॥ ८ ॥
 कण्ठदेश सुलाग्रयो मुक्तामाला विभूषित ।
 त्रिभङ्गो ललितस्निग्धग्रीवस्त्रैलोक्यमोहन ॥ ९ ॥
 वक्ष स्थलश्च लावण्यैरमणीरमणोत्सुकम् ।
 मणिकौस्तुभप्रिद्युद्गामुक्ताहारविभूषितम् ॥ १० ॥
 आजानुलम्बितौ भुजौ केयूरचलयान्वितौ ।
 रक्तोत्पलहस्तपद्मौ नानाचिन्हसुशोभितौ ॥ ११ ॥
 गदा शर-यन्त्र-च्छत्र चन्द्रार्द्धाङ्कुशशोभितौ ।
 घनज-पद्म-यूप-हल घट-मीन विराजितौ ॥ १२ ॥

हित करने वाले हैं । उनके नयन-युगल घूर्णयमान तथा रक्त-नील
 उत्पल की प्रभा के तुल्य हैं । गरुड चञ्चु के सदृश तथा लावण्यमय
 सुन्दर नासिका से वे शोभायमान हैं । मणि-कुण्डलों से शोभित
 मनोहरणकारी उनका कर्णयुगल हैं । वे नाना मणिकुण्डलों से युक्त
 गण्डस्थल के द्वारा विशेष शोभा युक्त हैं । उनका मुखकमल लाव-
 ण्यमय कोटि चन्द्रमा की कान्ति के तुल्य है । उनका नाना प्रकार के
 हास्य रस से सुमधुर, दीप्तिमान् चिबुक है । उनका कण्ठदेश सुन्दर
 लावण्यमय तथा मुक्तामालाओं से विभूषित है । त्रिभङ्गी से ललित,
 त्रैलोक्यमोहन स्निग्ध ग्रीवा तथा लावण्यों से रमणीयगण के रमण में
 उत्सुक वक्ष स्थल है । जो कौस्तुभमणि और विद्युत्कान्ति वाले मुक्ता
 हारों से विभूषित है । केयूर तथा चलय्यादिक से युक्त जानुलम्बि भुज

उदरञ्च सुमधुरं लावण्यकेलिसुन्दरम् ।
 पृष्ठपार्श्वं सुधारम्यं रमणीकेलिलालसम् ॥ १३ ॥
 कटिविम्बं सुधाम्भोजं कन्दर्पमोहनोत्सुकम् ।
 रामरम्भे इवोरु द्वौ नारीमोहनकारकौ ॥ १४ ॥
 जानू द्वौ च सुलावण्यौ मधुरौ परमोज्ज्वलौ ।
 पादपद्मौ सुमधुरौ रत्ननूपुरभूषितौ ॥ १५ ॥
 जवापुष्पसमरुची नानाचिन्हसुशोभितौ ।
 चक्राद्वच्चन्द्राष्टकोण-त्रिकोण-यत्रशोभितौ ॥ १६ ॥
 अम्बर-छत्र-कलस-शंख-गोप्पद-स्वस्तिकौ ।
 अङ्कुशाम्भोज-धनुषा जाम्बवेन च शोभितौ ॥ १७ ॥
 अङ्गुलियोऽरुणभाः सम्यङ्नखचन्द्रसमन्वितः ।
 श्रीयुतौ चरणाम्भोजौ नानाप्रेमसुखार्णवौ ॥ १८ ॥

युगल हैं । नाना चिन्हों से सुशोभित रक्त उत्पल की तरह हस्तक-
 मल हैं जो कि गदा, शंख, यव, छत्र, अर्द्धचन्द्र, अङ्कुश से शोभा-
 यमान तथा ध्वजा, पद्म, यूप, हल, घट, मीन के चिन्हों से विराज-
 मान हैं । लावण्य क्रीड़ा से युक्त सुन्दर सुमधुर उदर हैं । रमणि-
 यों की केलि में लालस, सुधा से भी सुन्दर पृष्ठ और पार्श्वदेश हैं ।
 कन्दर्प मोहन में उत्सुक, सुधामय कमल की तरह कटिविम्ब है ।
 नारीगण 'मोहनकारी, मनोहर रम्भा की भाँति ऊरु युगल हैं ।
 मधुर, परमोज्ज्वल, सुन्दर लावण्यमय दोनों जंघा हैं । रत्न, नूपुरों
 से भूषित, नाना चिन्हों से सुशोभित, जवापुष्पों की तरह कान्तिवाले
 महा-सुमधुर युगल चरण कमल हैं । जो चक्र, अर्द्धचन्द्र, त्रिकोण,
 यव, अम्बर, छत्र, कलस, शंख, गोप्पद, स्वस्तिक, अङ्कुश, कमल,
 धनुष, जामन चिह्नों से शोभायमान हैं । अङ्गुलियाँ अरुण कान्ति
 के तुल्य तथा नखचन्द्रों से युक्त हैं । यह चरण युगल शोभायुक्त,

एतेषां कृष्णरूपाणां तुलना नहि विद्यते ।

किञ्चिदुद्दीपनार्थाय दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥ १६ ॥

अथ वयस्याः ॥

अथ श्रीकृष्णचन्द्रस्य सखिवृन्दञ्च कथ्यते ।

अग्रगामी वयस्यानां प्रलम्बारातिरग्रजः ॥ २० ॥

वयस्यभेदाः ॥

सुहृत्-सखि-प्रियसखा-प्रियनर्म्मसखस्तथा ।

वयस्याः कृष्णचन्द्रस्य स्फुटमत्र चतुर्विधाः ॥ २१ ॥

तत्र सुहृत् ॥

सुभद्रः कुण्डलो दण्डी मण्डलोऽमी पितृव्यजाः ।

सुनन्दो नन्दिरानन्दी इत्याद्या यातरः स्मृताः ॥ २२ ॥

शुभद्रो मण्डलीमद्र-मद्रवर्द्धन-गोभटाः ।

यक्षेद्र-भट-भद्राङ्ग-वीरभद्र महागुणाः ॥ २३ ॥

कुलवीरो महाभीमो दिव्यशक्तिः सुरप्रभः ।

रणस्थिरादयो ज्येष्ठकल्पाः सरक्षणाय ये ॥ २४ ॥

नाना प्रेम सुप्त के सागर रूप हैं । इन सब श्रीकृष्ण के रूपों की जगत् में तुलना नहीं है । परन्तु किञ्चिन्मात्र उद्दीपन के लिये यहाँ दिङ्मात्र दिखाया गया है ॥१-१६॥

अथ श्रीकृष्णचन्द्र के सखावृन्दों को कहते हैं । वयस्यों में अग्रज प्रलम्बारि बलदेव जी अग्रगामी हैं ॥ २० ॥

सुहृत्, सखा, प्रियसखा, प्रियनर्म्मसखा के भेद से श्रीकृष्ण के चार प्रकार के वयस्य हैं । पहिले सुहृत् का भेद कहते हैं । सुभद्र, कुण्डल, दण्डी, मण्डल ये सब चचेरे भाई तथा सुनन्द, नन्दि, आनन्दि ये सब यातर हैं । सुभद्र, मण्डलीमद्र, मद्रवर्द्धन, गोभट, यक्षेन्द्र, भट, भद्राङ्ग, वीरभद्र, ये सब महान् गुण वाले हैं । कुलवीर, महा-

पितृभ्यामभितो भीतचित्ताभ्यां दुष्टकंसतः ।
प्राणकोट्यधिकप्रेष्टपुत्राभ्यां विनियोजिताः ॥
अत्राध्यक्षोऽम्बिकासूनुर्विजयाक्षस्तपस्यया ।
यः किलाश्विभ्या लेभे धात्र्योपास्य सदाश्विकाम् ॥ २५ ॥

तत्र सुभद्रः ॥

सुचिक्रणो नीलवर्णः सुभद्रो दीप्तिमान् भवेत् ।
पीतवस्त्रपरिधानो नानाभरणशोभितः ॥ २६ ॥
उपनन्दः पिता तस्य तुला माता पतिव्रता ।
परमोज्ज्वलकेशोरः पत्नी कुन्दलता भवेत् ॥ २७ ॥

अथ सखायः ॥

विशाल-वृषभौजस्वि देवप्रस्थ-वरूथपाः ।
मन्दार-कुसुमापीड-मणिवन्धकास्तथा ॥ २८ ॥
मन्दरश्चन्दनः कुन्दः कलिन्दकुलिकादयः ।
कनिष्ठकल्पाः सेवायां सखायो विपुलाग्रहाः ॥ २९ ॥

भीम, दिव्यशक्ति, सर्पभ, रणस्थिरादिक बलदेव जी के सदृश बड़े हैं तथा कंस से भयभीत पिता माता के द्वारा प्राणकोटि से अधिक प्रिय श्रीकृष्ण की संरक्षा के लिये नियुक्त किये हुए हैं। इन सबके अध्यक्ष अम्बिकापुत्र विजयाक्ष हैं। धात्री अम्बिका ने निरन्तर अम्बिकादेवी की उपासना कर विजयाक्ष को पुत्ररूप से लाभ किया है ॥ २१-२५ ॥

इनमें से सुभद्र स्निग्ध-नीलवर्ण-कांतिमान् हैं तथा पीतवस्त्र-धारी-नाना आभरण से शोभित हैं। उनके पिता का नाम उपनन्द और माता पतिव्रता तुलादेवी हैं। सुभद्र परम उज्ज्वल केशोर अच-स्था के हैं। उनकी पत्नी कुन्दलता है ॥ २६-२७ ॥

अब सखाओं का वर्णन करते हैं—विशाल, वृषभ, ओजस्वि, देवप्रस्थ, वरूथप, मन्दार, कुसुमापीड, मणिवन्धक, मन्दर, चन्दन, कुन्द, कलिन्द, कुलिकादिक सखा हैं। वे सब सखा सेवा में विपुल

अथ प्रियसखाः ॥

श्रीदामा दामा सुदामा वसुदामा तथैव च ।

किङ्किणिभद्रसेनाशुस्तोमकृष्णा विलासिनः ॥ ३० ॥

पुण्डरीक-विटङ्काक्ष-कलविङ्क-प्रियङ्कराः ।

श्रीदामाद्याः समास्तत्र श्रीदामा पीठमर्दकः ॥ ३१ ॥

समस्तमित्रसेनाना भद्रसेनश्चमूपतिः ।

स्तोमकृष्णो यथार्थाख्यः कृष्णस्य प्रत्यनन्तरः ॥ ३२ ॥

रमयन्ति प्रियसखाः केलिभिर्विविधैरमो ।

नियुद्धदण्डयुद्धादिकौतुकैरपि केशवम् ॥ ३३ ॥

एते प्रियसखाः शान्ताः कृष्णप्राणसमा मताः ॥ ३४ ॥

अथ प्रियनर्मसखाः ॥

सुवलाजुर्गन्धर्व्ववसन्तोज्ज्वलकोकिलाः ।

सनन्दनविदग्धाद्याः प्रियनर्मसखा मताः ॥ ३५ ॥

आग्रह रत्नने वाले कनिष्ठ कल्प है ॥ २८-२९ ॥

अब प्रिय सखाओं का वर्णन करते हैं । श्रीदाम, दाम, सुदाम, वसुदाम, किङ्किणि, भद्रसेन, अशुमान्, स्तोमकृष्ण, विलासि, पुण्डरीक, विटङ्काक्ष, कलविङ्क, प्रियङ्कर, ये सब प्रियसखा हैं । श्रीदामादिक समान वयः और रूप वाले हैं । श्रीदामा पीठमर्दक तथा भद्रसेन समस्त मित्रसेनाओं के सेनापति हैं । स्तोमकृष्ण श्रीकृष्ण के प्रति अपने यथार्थ नाम से प्रसिद्ध हैं । प्रियसखागण विविध क्रीड़ाओं से तथा नियुद्ध-दण्डयुद्धादिक विविध कौतुकों से केशव को सुग्री करते हैं । ये सब शान्त प्रकृति के तथा कृष्ण के परम प्राण रूप हैं ।

॥ ३०-३४ ॥

अब प्रियनर्मसखाओं का वर्णन करते हैं ।—सुवल, अर्जुन, गन्धर्व, वसन्त, उज्ज्वल, कोकिल, सनन्दनादिक तथा विदग्धादिक

तद्रहस्यन्तु नास्त्येव यदमीषां न गोचरः ।
मधुमङ्गलपुष्पाङ्क हासङ्काद्या विदूषका ॥
श्रीमान् सनन्दनस्तत्र सौहृदानन्दसुन्दरः ।
मूर्तिमानेव रसराजुज्ज्वलश्च महोज्ज्वलः ।
विलासिशेखरो यस्य विलासेन वशीकृतः ॥ ३६ ॥

तत्रादौ श्रीदामा ॥

श्रीदामा श्यामलसचिरङ्गकान्ति र्गनोहरा ।
पीतवस्त्रपरिधानो रत्नमालाविभूषितः ॥ ३७ ॥
वयः षोडशवर्षाञ्च किशोरः परमोज्ज्वलः ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो बहुकेलिरसाम्बरः ॥ ३८ ॥
वृषभानुः पिता तस्य माता च कीर्त्तिदा सती ।
राधानङ्गमञ्जरी च कनिष्ठा भगिनी भवेत् ॥ ३९ ॥

तत्र सुदामा ॥

ईषद्गौरः सुदामा च देहकान्तिर्गनोहरा ।
नीलवस्त्रपरिधानो रत्नाभरणभूषितः ॥ ४० ॥

प्रियतमसखा हैं । ऐसा कुछ रहस्य नहीं था जो कि इनके गोचर न हों । मधुमङ्गल, पुष्पाङ्क, हासङ्कादिक विदूषक थे । उनमें से सनन्दन परम श्रीमान् सुहृदता के आनन्द में सुन्दर था । उज्ज्वल तो मूर्तिमान् रसराज की तरह महान् उज्ज्वल था । विलासि शेखर श्रीकृष्ण जिसके विलास से वशीभूत हो गये थे ॥ ३५—३६ ॥

पहिले श्रीदामा का वर्णन करने हैं । श्रीदामा श्यामलरुचि अङ्गकान्ति से मनोहर हैं । वे पीताम्बर धारण करने वाले तथा रत्नमालाओं से विभूषित हैं । षोडश वर्षीय किशोर अवस्था से परम उज्ज्वल हैं जो कि श्रीकृष्ण के प्रियतम तथा बहु केलिरस के भांडार रूप हैं । उनके पिता वृषभानु जी और माता कीर्त्तिदा सती हैं । श्रीराधा और अनङ्गमञ्जरी ये दोनों छोटी भगिनी हैं ॥ ३७—३९ ॥

पिता च मटुक्रो नाम रंचना जननी भवेत् ।

सुकिशोरवयो वेशः नानाकेलिरसोत्करः ॥ ४१ ॥

१ । अथ सुवलः ॥

सुवलस्य गौरकान्तिनीलवस्त्रमनोहरः ।

नानारत्नभूषिताङ्गो नानापुष्पविभूषितः ॥ ४२ ॥

साद्वद्वादशवर्षीयः कैशोरवयसोज्ज्वलः ।

सखीभावं समाश्रित्य नानासेवापरिप्लुतः ॥ ४३ ॥

द्वयोर्मिलननैपुण्यो मधुरो भावमावितः ।

नानागुणसुखोपेतः कृष्णप्रियतमो भवेत् ॥ ४४ ॥

२ । अर्जुनः ॥

रक्तोत्पलनिभा कान्तिरर्जुनो दीप्तिमान् भवेत् ।

वसनं चन्द्रकान्तिश्च नानारत्नसशोभितः ॥ ४५ ॥

पिता सुदक्षिणस्तस्य भद्रा च जननी भवेत् ।

ज्येष्ठो भ्राता वमुदामा द्वयोः प्रेमपरिप्लुतः ॥ ४६ ॥

सुदामा जी ईपत् गौरवर्ण हैं । उनकी अंगकान्ति परम मनोहर है । वे नीलाम्बर पहरने वाले तथा रत्नमय आभरणों से विभूषित हैं । पिता का नाम मटुक्रु और रोचना जननी है । सुन्दर कैशोर वयः वेश से युक्त तथा नाना केलिरस से उत्सुक हैं ॥ ४०—४१ ॥

सुवल जी की अंगकान्ति गौरवर्ण है । वे नीलाम्बर से मनोहर तथा नाना रत्नों से भूषित अंग वाले हैं । नाना पुष्पों से विभूषित हैं । साढ़े द्वादश वर्षीय कैशोर अवस्था से परम उज्ज्वल है । सुवल जी सखीभाव का आश्रय कर नाना प्रकार से सेवा करते हैं । दोनों का मिलन कराने में परम निपुण, मधुर, भावों से विभावित, नाना गुणों से आनन्दयुक्त, श्रीकृष्ण के प्रियतम हैं ॥ ४२—४४ ॥

अर्जुन जी की कान्ति रक्तोत्पल की तरह है । वे परम दीप्तिमान् हैं तथा चन्द्रमाकान्ति के तुल्य वस्त्र को पहरने वाले हैं । और

सार्द्धाक्षतुर्दश समा वयः कैशोरकोज्ज्वलः ।
नानापुष्पभूषिताङ्गो वनमालाविभूषितः ॥ ४७ ॥

३। गन्धर्व्वेः ॥

निशाकरप्रभाकान्तिर्गन्धर्व्वो रूपवान् भवेत् ।
रक्तवस्त्रपरिधानो नानाभरणसंयुतः ॥ ४८ ॥
वयो द्वादशवर्षश्च किशोरवयसोज्ज्वलः ।
नानापुष्पभूषिताङ्गो गन्धर्व्वश्च सुशोभितः ॥ ४९ ॥
माता मित्रा सुसाध्वी च विनाकां जनकां महान् ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो नानाकेलिकुतूहलः ॥ ५० ॥

४। वसन्तः ॥

ईषट्पदौराङ्गकान्तिश्च वस्त्रं चन्द्रसमोज्ज्वलम् ।
नानामणिभूषिताङ्गो वसन्त उज्ज्वलो भवेत् ॥ ५१ ॥

नाना रत्नों से सुशोभित हैं । पिता सुदक्षिण और माता भद्राजी हैं ।
बड़े भ्राता वसुदेवाजी हैं । अर्जुन जी दोनों के प्रेम से परिप्लुत
हैं । साढ़े चौदह वर्ष वाली कैशोर अवस्था से उज्ज्वल हैं । वे नाना
पुष्पों से विभूषित अंगवाले तथा वनमालाओं से विभूषित हैं ।

॥ ४५—४७ ॥

गन्धर्व्वं परम रूपवान् है । उसकी कान्ति चन्द्रमा की तरह है ।
वह रक्तवस्त्र को पहनने वाला तथा नाना आभरण से युक्त है । अ-
वस्था द्वादश वर्ष की है तथा कैशोर अवस्था से उज्ज्वल है । गन्धर्व्व
नाना पुष्पों से भूषित अंगवाला और परम शोभायमान है । माता
सुसाध्वी मित्रा जी और पिता विनाक जी हैं । गन्धर्व्वश्रीकृष्ण के
प्रियतम तथा नाना केलियों से कुतूहली है ॥ ४८—५० ॥

वसन्त की अंगकान्ति ईषट् गौरवर्ण है । उसका वस्त्र चन्द्रमा
के तुल्य उज्ज्वल है । वसन्त नाना मणियों से भूषित अंग वाला

एकादशवर्षवया नानामाल्यविभूषितः ।

माता च शारदी साध्वी पिङ्गलो जनको महान् ॥ ५२ ॥

५ । उज्ज्वलः ॥

रक्तवर्णप्रभा कान्तिरुज्ज्वलः परमोज्ज्वलः ।

तारावलीसमं वस्त्रं मुक्तापुष्पविराजितः ॥ ५३ ॥

सागराख्यः पिता तस्य माता वेणी पतिव्रता ।

त्रयोदशवर्षवयाः किशोरः परमोज्ज्वलः ॥ ५४ ॥

६ । कोकिलः ॥

शुभ्रकान्तिः सुलावण्यः कोकिलः परमोज्ज्वलः ।

नीलवस्त्रपरिधानो नानारत्नविभूषितः ॥ ५५ ॥

वर्षेकादशकं मासाश्चत्वारो यद्वयःक्रमः ।

जनकः पुष्करो नाम मेधा माता यशस्विनी ॥ ५६ ॥

७ । सनन्दनः ॥

ईषद्वौराङ्गकान्तिश्च शोभितश्च सनन्दनः ।

नीलवस्त्रपरिधानो नानाभरणभूषितः ॥ ५७ ॥

परम उज्ज्वल है । उसकी अवस्था एकादश वर्ष की है । वह नाना प्रकार मालाओं से विभूषित है । माता साध्वी शारदी और पिता पिङ्गल महान् हैं ॥ ५१-५२ ॥

उज्ज्वल की कान्ति रक्तवर्ण है तथा वह परम उज्ज्वल है । तारा समूह की तरह उसका वस्त्र है तथा मुक्ता पुष्पों से विराजमान है । पिता का नाम सागर है माता पतिव्रता वेणी जी हैं । त्रयोदश वर्षीय किशोर अवस्था से परम उज्ज्वल है ॥ ५३-५४ ॥

कोकिल शुभ्रवर्ण, लावण्यमय, परम उज्ज्वल है तथा नील वस्त्र पहनने वाला और नाना रत्नों से विभूषित है । उसकी अवस्था ग्यारह वर्ष चार महीना है । पिता का नाम पुष्कर तथा माता यश को देने वाली मेधा जी हैं ॥ ५५-५६ ॥

साक्षात्तुर्दश समा वयो माल्यविराजितः ।
अरुणाक्षः पिता तस्य माता च मल्लिका भवेत् ॥ ५८ ॥
श्रीमान् सनन्दनस्तत्र सौहृदानन्दसुन्दरः ।
मूर्तिमानेव रसराडुज्ज्वलश्च महोज्ज्वलः ॥ ५९ ॥

८ । विदग्धः ॥

रूपं चम्पकवर्णाढ्यं विदग्धो दीप्तिमान् भवेत् ।
शिखिकण्ठवर्णावासा मुक्तामालाविभूषितः ॥ ६० ॥
चतुर्दशवर्षपूर्णः किशोरः परमोज्ज्वलः ।
पिता च मटुको नाम जननी रोचना भवेत् ॥ ६१ ॥
सुदामा चाग्रजभ्राता भगिनी सुशीलापि च ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो युग्मभावविभावितः ॥ ६२ ॥

तत्र श्रीमयुमङ्गलः ॥

ईषच्छ्यामलवर्णोऽपि श्रीमयुमङ्गलो भवेत् ।
वसनं गौरवर्णाढ्यं वनमालाविराजितः ॥ ६३ ॥

सनन्दन कुछ गौर अंग कान्ति वाला तथा परम शोभाशील है यह नीलवस्त्र का धारण करने वाला तथा नाना आभरणों से भूषित है । उसकी अवस्था साढ़े चौहद वर्ष है तथा वह मालाओं से विराजमान है । पिता अरुणाक्ष तथा माता मल्लिका जी हैं । श्रीमान् सनन्दन सौहृदता सुख में परम सुन्दर है और उज्ज्वल मूर्तिमान् रसरत्न के सदृश है ॥ ५७-५९ ॥

विदग्ध की अंगकान्ति चम्पकवर्ण है । विदग्ध परम दीप्तिमान् तथा मयूरकंठ की तरह श्यामवस्त्र पहनने वाला है । अनेक प्रकारकी मुक्तामालाओं से विभूषित है । उसकी चौदह वर्ष परिपूर्ण अवस्था है । परम उज्ज्वल किशोर है । पिता का नाम मटुकु तथा माता रोचना जी हैं । सुदामा जी उसके बड़े भ्राता तथा भगिनी सुशीला है । विदग्ध श्रीकृष्ण के प्रियतम और युगल भाव से विभावित है ॥ ६०-६२ ॥

पिता मान्दीपनिदेवो माता च सुमुखी सती ।

नान्दीमुखी च भगिनी पौर्णमासी पितामही ॥ ६४ ॥

विदूषकः कृष्णसखः श्रीमधुमङ्गलः सखः ॥ ६५ ॥

अथ श्रीप्रलराम ॥

शुभ्रः स्फटिकवर्णद्वयो वलरामो महाप्रलः ।

नीलवस्त्रपरिधानो वनमालाविराजितः ॥ ६६-६७ ॥

दीर्घकेशः सुलावण्यश्चूडा चारु मनोहरः ।

रत्नकुण्डलयुग्मञ्च कर्णयुग्मे निराजितम् ॥ ६८ ॥

नानापुष्पमण्योर्हारः कण्ठदेशे सुशोभितः ।

केयूरवल्लयौ युग्मौ बाहुयुग्मे निराजितौ ॥ ६९ ॥

रत्ननूपुरयुग्मञ्च पादयुग्मे सुशोभितम् ।

वसुदेवः पिता तस्य माता च रोहिणी भवेत् ॥ ७० ॥

मधुमङ्गल इंपत् ग्यामल वर्ण हैं। उसका वसन गौरवर्ण है तथा वह वनमालाओं से विराजमान है। पिता सान्दीपनि ऋषिजी माता सुमुखी सती हैं। नान्दीमुखी उसकी भगिनी तथा पौर्णमासी जी पितामही (दादी) है। मधुमङ्गल श्रीकृष्ण के सदा सर्वदा सखा और विदूषक भी है ॥ ६३-६५ ॥

श्रीवलदेव जी शुभ्रवर्ण तथा महान् वली हैं। वे नीलाम्बरधारी तथा विविध वनमालाओं से निराजमान हैं। दीर्घ उनके केश हैं तथा मनोहर चूडा से परमसुन्दर, लावण्यमय हैं। दोनों कर्णों में दो रत्न कुण्डल विराजमान हैं। कण्ठदेश में नाना पुष्पों की माला तथा मणि-माला शोभायमान है। दोनों भुजाओं में केयूर, वल्लय, विराजमान हैं। चरण युगल में दो रत्ननूपुर शोभायमान हैं। पिता वसुदेव जी माता रोहिणी जी हैं। उनके पिता जी व्रजराजनन्द जी के परममित्र और माता जी परम सती तथा यशोदा जी की मित्राणी हैं। छोटे

नन्दो मित्रं पितृस्तस्य माता माध्वी यशोमती ।
भ्राता कनीयान् श्रीकृष्णः सुभद्रा भगिनी च सा ॥ ७१ ॥
वयः पौडश-वर्षञ्च किशोरः परमोज्ज्वलः ।
श्रीकृष्णस्य प्रियतमो नानाकेलिरसाकरः ॥ ७२ ॥
अथ विट्टाः ॥

कडार-भारतीवन्ध गन्धवेदादयो विट्टाः ।
विविधाः सेवकास्तस्य सेवासौख्यपरायणाः ॥ ७३ ॥
अथ चेट्टाः ॥

चेट्टा भंगुरभृङ्गारसान्विकग्रहिलादयः ।
रक्तकः पत्रकः पत्री मधुकंठो मधुव्रतः ।
शालिकस्तालिको माली मानमालाधरादयः ॥ ७४ । ७५ ॥
तद्वे गुशृङ्ग मुरली यष्टि-पाशादिधारिणः ।
अमीषां घटकाश्चामी धातूनां चोपहारकाः ॥ ७६ ॥

तत्र ताम्बूलिकाः ॥
पृथुकाः पार्श्वगाः केलिकस्तालापकलाकुटाः ।
पल्लवो मङ्गलः फुल्लः कोमलः कपिलादयः ॥ ७७ ॥

भैया श्रीकृष्ण जी हैं तथा सुभद्राजी भगिनी हैं । पौडश वर्ष उनकी अवस्था है और वे किशोरता से परम उज्ज्वल है । वे श्रीकृष्ण के प्रियतम तथा नाना केलि रस के सागर रूप हैं ॥ ७६-७२ ॥

कडार, भारतीवन्ध, गन्धवेदादिक विट्ट हैं । सेवासौख्य से रत विविध प्रकार से श्रीकृष्ण के सेवक हैं ॥ ७३ ॥

भङ्गुर, भृङ्गार, सान्विक, ग्रहिलादिक तथा रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुकंठ, मधुव्रत, शालिक, तालिक, माली, मान, मालाधरादिक चेट्ट हैं । वे सब श्रीकृष्ण के वेणु, शिंगा, मुरली, यष्टि, पाशादिक धारण करने वाले हैं । इनके घटकागण धातुओं के उपहार बनाने वाले हैं ॥ ७४-७६ ॥

सुविलास-विलासाच्च रसाल रमशालिनः ।

जम्बुलाद्याश्च ताम्बूलपरिष्कारविचक्षणः ॥ ७८ ॥

जलसेवकाः ॥

पयोदवारिदाद्याश्च नीरसस्कारकारिणः ।

वस्त्रसेवकाः ॥ (रजकाः)

वस्त्रोपचारनिपुणाः सारङ्गवकुलादयः ॥ ७९ ॥

वेशकारिणः ॥

प्रेमकन्दो महागन्धः सैरिन्ध्रमधुकन्दलाः ।

भकरन्दादयश्चामी सदा शृङ्गारकारिणः ॥ ८० ॥

गान्धिकाः ॥

सुमनः कुसुमोस्त्रास पुष्पहास हरादयः ।

गन्धाङ्गरागमाल्यादि पुष्पाङ्गकृतकारिणः ॥

दक्षाः सुवन्धकर्मरसुगन्धकुसुमादयः ॥ ८१ ॥

नापिताः ॥

नापिताः केशसंस्कारे मर्द्दने दर्पणार्पणे ।

कोपाधिकारिणः स्वच्छमुशीलप्रगुणादयः ॥

पल्लव, मङ्गल, फुल्ल, कोमल, कपिलादिक और सुविलास, विलासाच्च, रसाल, रमशालि, जम्बुलादिक ताम्बूल बनाने में विचक्षण हैं । वे सब बालक पास में रहने वाले तथा केलिकला की आलापविद्या में चतुर हैं ॥ ७७-७८ ॥

पयोद, वारिदादिक जलसंस्कार (जलघडिवा) करने वाले तथा सारङ्ग, वकुलादिक वस्त्र संस्कार में परम निपुण हैं ॥ ७९ ॥

प्रेमकन्द, महागन्ध, सैरिन्ध्र, मधुकन्दल, भकरन्दादिक घेश बनाने वाले हैं ॥ ८० ॥

सुमन, कुसुमोस्त्रास, पुष्पहास, हरादिक, गन्ध अङ्गराग-माल्यादिक तथा पुष्पों का अलङ्कार रचना करने वाले हैं । सुवन्ध, कर्मर

अपरा ॥

त्रिमल कमलाद्याश्च स्थालीर्पिष्ठादिधारका ॥ ८२ ॥

परिचारिका ॥

घनिष्ठा चन्दनफला गुणमाला रतिप्रभा ।

तरुणीन्दुप्रभा शोभारम्भाद्या परिचारिका ।

गृहमार्जनसंस्कारालेपक्षीरादिकोविदा ॥ ८३ ॥

अथ चैत्र्य ॥

चैत्र्य कुरङ्गी भृङ्गारी सुलम्बा लम्बिकादय ॥ ८४ ॥

अथ चग ॥

चतुरश्वारण्यो धीमान् पेशलाद्याश्चोत्तमा ।

चरन्ति गोपगोपीषु नानाप्रेषेन ये सदा ॥ ८५ ॥

अथ दूता ॥

दूता निशारदास्तुङ्गवान्द्रुमनोरमा ।

नीतिसारादयः केलौ फलो गोपीकुलेषु च ॥ ८६ ॥

सुगन्ध, कुसुमादिक इन त्रिपयों में परम उच्च हैं ॥ ८१ ॥

स्वच्छ, सुशील, प्रगुणादिक नापित हैं । वे सब केशसंस्कार, मर्दन, वर्षण के समर्पण कार्य में तथा कोषागार में नियुक्त रहते हैं । विमल, कोमलान्तिक थाली, पीठादिकों के रखने वाले हैं ॥ ८२ ॥

घनिष्ठा, चन्दनफला, गुणमाला, रतिप्रभा, तरुणी, इन्दुप्रभा, शोभारम्भादिक परिचारिका ब्राह्मी हैं । वे सब गृहों के संस्कार मार्जन, लेपन के कार्य में तथा दुग्धादिकों के आनर्चनादि कार्य में परम परिष्ठिता हैं ॥ ८३ ॥

कुरङ्गी, भृङ्गारी, सुलम्बा, लम्बिकादिक चेटी हैं ॥ ८४ ॥

चतुर, चारण, धीमान्, पेशलादिक उत्तम चर हैं । वे सब नानावेश से गोप गोपिया में निचरण करते हैं ॥ ८५ ॥

अथ श्रीकृष्णस्य दूतीप्रकरणम् ॥

पौरुषमासी वीरा वृन्दा वंशी नान्दीमुखी तथा ।

वृन्दारिका तथा मेला मुल्लाद्याश्च दूतिकाः ॥ ८७ ॥

नानासन्धानकुशला तयोर्मिलनकारिणी ।

कञ्चादिसंस्क्रियाभिज्ञा वृन्दा तामु वरीयसी ॥ ८८ ॥

तत्र पौरुषमासी ॥

पौरुषमास्या अङ्गकान्तिस्तप्तकाञ्चनमन्निभा ।

शुक्लवस्त्रपरीधाना वदरत्नविभूषिता ॥ ८९ ॥

पिता सुरतदेवश्च माता चन्द्रकला सती ।

प्रबलस्तु पतिस्तस्या महाविद्या यशस्करी ॥ ९० ॥

भ्रातापि देवप्रस्थश्च ब्रजे सिद्धा शिरोमणिः ।

नानासन्धानकुशला द्वयोः सङ्गमकारिणी ॥ ९१ ॥

विशारद, तुङ्ग, धावदूक, मनोरम, नीतिसारादिक बेलि तथा वि-
वाद में कुशल हैं और गोपीगणों में दूत का कार्य करते हैं ॥ ८६ ॥

अब श्रीकृष्ण के दूती प्रकरण का वर्णन करते हैं । पौरुषमासी,
वीरा, वृन्दा, वंशी, नान्दीमुखी, वृन्दारिका, मेला और मुलली प्रभृति
दूतिका हैं । वे सब नाना सन्धान में कुशल, दोनों के मिलन कराने
वाली और कुञ्जादि, संस्कार में अभिज्ञा हैं । उनमें से वृन्दा भेष्टा
है ॥ ८७-८८ ॥

पौरुषमानी जी की अङ्गकान्ति तपायमान सुवर्णकी तरह है । वे
शुक्लवस्त्र पहनने वाली तथा नाना रत्नों से विभूषिता हैं । पिता सु-
रतदेव तथा माता चन्द्रकला सती हैं । पति का नाम प्रबल है । भ्राता
देवप्रस्थ है । पौरुषमासी परम परिहृता, यशस्करी, तथा ब्रज में सिद्ध
शिरोमणि है । नाना सन्धान कार्य में कुशल तथा दोनों का संगम
कराने वाली है ॥ ८९-९१ ॥

तत्र वीरा ॥

वीरा नाम वरा दूती ख्यातान्या पूजिता व्रजे ।
वीरा प्रगल्भवचना वृन्दा चाट्टक्तिपेशला ॥
एषा श्यामलकान्तिश्च शुक्लाभवसनोज्ज्वला ।
नानारत्नपुष्पमाला भूपरौ भूषितापि च ॥ ६२ ॥
कवलः पतिरेतस्या माता च मोहिनी सती ।
तस्याः पिता विशालोऽपि भगिनी कवला भवेत् ।
जटिलायाः प्रियतमा जावटाख्यपुरस्थिता ॥ ६३ ॥
नानासन्धाननिपुणा द्वयोर्मिलनचेष्टिता ॥ ६४ ॥

तत्र वृन्दाया विशेषः ॥

तत्तत्काञ्चनवर्णाभा वृन्दा कान्तिर्मनोहरा ।
नीलवस्त्रपरीधाना मुक्तापुष्पविराजिता ॥ ६५ ॥
चन्द्रभानुः पिता तस्याः फुल्लरा जननी तथा ।
पतिरस्या महीपालो मञ्जरी भगिनी च सा ॥ ६६ ॥

वीरा नामक और भी श्रेष्ठा दूती व्रज में पूजिता है। वीरा प्र-
गल्भ वचन को बोलने वाली तथा वृन्दा चाटु वचन में अभिज्ञा
है। वीरा श्यामल कान्तिवाली और शुक्ल कान्ति वसन से उज्ज्वल
है। नाना रत्न-पुष्पमालाओं से भूषिता भी है। इसकी माता मोहिनी
सती तथा पिता विशाल जी हैं। पति का नाम कवल और भगिनी
कवला है। वीरा जटिला की प्रियतमा तथा जावट में रहने वाली है।
नाना सन्धान कार्य में निपुण तथा दोनों के मिलन चेष्टा में नियुक्ता
है ॥ ६२-६४ ॥

वृन्दा तपायमान काञ्चन वर्ण वाली तथा कान्ति से परम मनो-
हरा है। नीलवस्त्र को पहनने वाली और मुक्ता पुष्पों से विराजमाना
है। उसके पिता चन्द्रभानु जी और माता फुल्लरा हैं। पति का नाम

वृन्दावन सदावासा नानावेलीरसोद्भवा ।

उभयोर्मिलनाकाङ्क्षी तयोः प्रेमपरिप्लुता ॥ ६७ ॥

तत्र नान्दीमुखी ॥

नान्दीमुखी गौरवर्णा पट्टवस्त्रविधारिणी ।

सान्दीपनिः पिता तस्य माता च सुमुखी सती ॥ ६८ ॥

आता मधुमङ्गलोऽस्याः पौर्णमासी पितामही ।

नानारत्नभूषिताङ्गी कैशोरवयसोज्ज्वला ॥ ६९ ॥

नानासन्धानकुशला नाना शिल्पविधायिनी ।

द्वयोर्मिलननैर्पुण्या सदा प्रेमयुता भवेत् ॥ १०० ॥

अथ साधारणभृत्याः ॥

शोभनदीपनाद्याश्च दीपिकाधारिणो मताः ।

सुधाकर सुधानाद सानन्दाद्या मृदङ्गिनः ॥

कलावन्तस्तु महतीनादिनो गुणशालिनः ॥ १०१ ॥

महीपाल और भगिनी मञ्जरी है । वृन्दा सदा सर्वदा वृन्दावन में वास करती है । वह नाना वेलीरस से उत्कण्ठिता तथा दोनों का मिलन चाहने वाली और दोनों के प्रेम से परिप्लुता है ॥ ६५-६७ ॥

नान्दीमुखी गौरवर्णा तथा पट्टाम्बर धारण करने वाली है । उस के पिता सान्दीपनि जी माता सुमुखी सती हैं । आता मधुमङ्गल तथा पौर्णमासी जी पितामही (दादी) हैं । नान्दीमुखी नाना रत्नों से भूषित अंगवाली तथा कैशोर अवस्था से उज्ज्वल हैं । वह नाना सन्धान कार्य में कुशल तथा नाना शिल्प कार्य की रचना करने वाली और दोनों को मिलाने में निपुण तथा निरन्तर प्रेम युक्त है ।

॥ ६८-१०० ॥

अथ साधारण भृत्यों का वर्णन करते हैं । शोभन, दीपन आदिक दीवट धारण करने वाले हैं । सुधाकर, सुधानाद, सानन्दादिक

विचित्ररावमयुरावाद्यास्तस्य वन्दिनः ।
 नर्त्तिकाश्चन्द्रहासेन्दुहासचन्द्रमुखादयः ॥ १०२ ॥
 कलकण्ठः सुकण्ठश्च सुधाकण्ठादयोऽप्यमी ।
 भारतः सारदो विद्याविलाससरसादयः ।
 सर्वप्रवन्धनिपुणा रसज्ञास्तालधारिणः ॥ १०३ ॥
 कञ्चुकादिविनिर्माता रौचिको नाम सौचिकः ।
 निर्णोजकास्तु सुमुखो दुर्लभो रञ्जनादयः ॥ १०४ ॥
 पुण्यपुञ्जस्तथा भाग्यराशिरित्यस्य हड्डिपौ ॥ १०५ ॥
 स्वर्णकारावलङ्कारकारौ रञ्जनटङ्कनौ ।
 कुलालौ मन्थनोपारीकारौ पवनकर्मठौ ॥ १०६ ॥
 वद्धकी वद्धमानाद्वयौ खट्वाशकटकारौ ।
 सुचित्रश्च विचित्रश्च ख्यातौ चित्रकरावुभौ ॥ १०७ ॥
 दाममन्थानकुठारपेटीशिक्यादिकारिणः ।
 कारवः कुरण्ड कण्ठोल-करण्ड कटुलादयः ॥ १०८ ॥

मृदंगीया हैं । वे सब मइनी वज्राने वाले, गुणशाली कलावन्त हैं ।
 विचित्रराव, मधुरराव आदिक स्तुति गाने वाले वन्दिगण हैं । च-
 न्द्रहास, इन्दुहास, चन्द्रमुख आदिक नर्त्तकगण हैं । कलकंठ, सुकंठ,
 सुधाकंठ आदिक गायकवृन्द हैं । भारत, सारद, विद्याविलास, सरस
 आदिक समस्त प्रवन्ध में निपुण, रसज्ञ तालधारी हैं । काँचोली
 आदिक निर्माण करने वाला रौचिक नामक दर्जी है । सुमुख, दुर्लभ,
 रञ्जनादिक धोबी (रजक) हैं । पुण्यपुंज तथा भाग्यराशि नामक
 दो मेहतर हैं । रञ्जन, टङ्कन ये दोनों विविध अलङ्कार बनाने वाले
 सोनार हैं । पवन, कर्मठ ये दोनों मथनी आदिक बनाने वाले कुम्भ-
 कार हैं । वद्धक वद्धमान ये दोनों खाट, बेलगाड़ी आदिक बनाने
 वाले बद्ध हैं । सुचित्र विचित्र दोनों चित्रकार हैं । कारव, कुरण्ड,

मङ्गला पिङ्गला गङ्गा पिशङ्गी मणिकस्तनी ।
 हंसी वंशीप्रियेत्याद्या नैचिक्यस्तस्य सुप्रियाः ॥ १०६ ॥
 पद्मगन्धपिशङ्गाक्षौ बलीवर्दावतिप्रियौ ।
 सुरङ्गाख्यः कुरङ्गोऽस्य दधिलोमाभिधः कपिः ॥ ११० ॥
 व्याघ्रभ्रमरकौ श्वानौ राजहंसः कलस्वनः ।
 शिखौ ताण्डविकाभिख्यः शुकौ दक्षविचक्षणौ ॥ १११ ॥

स्थानविवरणम्—

वृन्दावन महोद्यानं श्रेयो निःश्रेयसादपि ।
 क्रीडागिरिर्यथार्थाख्यः श्रीमान् गोवर्द्धनो मतः ॥ ११२ ॥
 नीलमण्डपिका घट्टः कन्दरा मणिकन्दली ।
 घट्टो मानसगङ्गायाः परङ्गो नाम विश्रुतः ॥ ११३ ॥
 सुविलासतरा नाम तरिर्यत्र त्रिराजते ।
 नाम्ना नन्दीश्वरः शैलो मन्दिरं स्फुटदिन्दिरम् ॥ ११४ ॥

कण्ठोल, करण्ड, कटुल आदिक जेवरी, मथनिया, कुङ्कार, पेटी, शि-
 क्का प्रभृति बनाने वाले हैं । मङ्गला, पिङ्गला, गङ्गा, पिशङ्गी, मणि-
 कस्तनी, हंसी, वंशीप्रिया इत्यादिक गाभीगण श्रीकृष्ण के परमप्रिय
 हैं । पद्मगन्ध, पिशङ्गाक्ष ये दोनों विजार अतिप्रिय हैं । श्रीकृष्ण के
 हरिण का नाम सुरङ्ग है तथा बन्दर का नाम दधिलोभ है । व्याघ्र
 तथा भ्रमर नामक दो कुत्ते भी थे । राजहंस का नाम कलस्वन था ।
 मयूर का नाम ताण्डविक है । दक्ष, विचक्षण नामक दो शुकपक्षी
 भी थे ॥ १०१-१११ ॥

अब श्रीकृष्ण के प्रिय स्थानों का वर्णन करते हैं ।—सकल क-
 ल्याण से कल्याणरूप श्रीवृन्दावन महान् उद्यान (वाग) है । क्रीडा-
 पर्वत यथार्थ नाम से श्रीमान् गोवर्द्धन है । घाट नीलमण्डपिका
 नाम से विख्यात है । कन्दरा (निभृतगृहा) का नाम मणिकन्दली

आस्थानीमण्डपः पारङ्गणशैलासनोज्ज्वलः ।
 आमोदवर्द्धनो नाम परमामोदवासितः ॥ ११५ ॥
 पावनाख्यं सरः क्रीडाकुञ्जपुञ्जस्फुरत्तटम् ।
 कुञ्जं काममहातीर्थं मन्दारो मणिकुट्टिमः ॥ ११६ ॥
 न्यग्रोधराजो भाण्डीरः कदम्बस्तु कदम्बराट् ।
 अनङ्गरङ्गभूर्नाम लीलापुलिनमुच्यते ॥ ११७ ॥
 यमुनाया महातीर्थं खेलातीर्थं तदुच्यते ।
 परमप्रेष्ठया सार्द्धं सदा यत्र स खेलति ॥ ११८ ॥
 अथ श्रीकृष्णस्य व्यवहार्यद्रव्याणि ॥
 शरदिन्दुस्तु मुकुरो व्यजनं मनुमास्तम् ।
 लीलापद्मं सदास्मेरं गौण्डकश्चित्रकोरकः ॥ ११९ ॥
 शिञ्जिनी मञ्जुलशरः मणिवन्धाटनीयुगम् ।
 विलासकाम्मूर्खं नाम काम्मूर्कं स्वर्णचित्रितम् ॥ १२० ॥

है । मानसगङ्गा का घाट पारङ्ग नाम से प्रसिद्ध है । जहाँ सुविला-
 सतरा नामक नाव विराजमान है । पर्वत का नाम नन्दीश्वर तथा ड-
 समें स्फुरदिन्दिर नामक निज मन्दिर है । शुभ्र शिलाओं के टुकड़े से
 उज्ज्वल तथा विविध सुगन्धियों से सुवासित आमोदवर्द्धन नामक
 मंडप है । सरोवर का नाम पावनसरोवर है । जिसका तट क्रीडाकुञ्ज-
 समूह से शोभायमान है । कुञ्ज का नाम काममहातीर्थ है । मणिमय
 कोठरी का नाम मन्दार है । यटराज का नाम भाण्डीर तथा कदम्ब
 का नाम कदम्बराज है । लीलापुलिन का नाम अनङ्गरङ्ग भूमि है ।
 यमुना जी के महातीर्थ खेलातीर्थ नाम से विख्यात है जहाँ परमप्रिया
 श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्ण निरन्तर क्रीडाविलास करते हैं ॥ ११२-
 ११८ ॥

अथ श्रीकृष्ण के व्यवहार द्रव्यों का वर्णन करते हैं ।-दर्पण का

दिव्यरत्नस्फुरन्मुष्टिस्तुष्टिदा नाम कर्तरी ।
 मन्द्रघोषो त्रिषारणोऽस्य वशी भुवनमोहिनी ॥ १२१ ॥
 राधाहन्मीनप्रडिशी महानन्दाभिधापि च ।
 पङ्कजधरा वेणु ख्याता मदनमकृति ॥ १२२ ॥
 काञ्चली मूर्तिपिका मुरली सरलाभिधा ।
 गौडी च गुर्जरी चेति रागास्त्यन्तमल्लभौ ॥ १२३ ॥
 जप्य साध्याङ्कित प्रेष्टाभिधानां मनुस्मृत ।
 दण्डस्तु मण्डनो नाम वीणा नाम तरङ्गिणी ।
 पाशौ पशुवशीकारो दोहन्यमृतदोहनी ॥ १२४ ॥

अथ भूषणानि ॥

अग्नार्पिता महारक्षा नमस्ताङ्किता भुजे ॥ १२५ ॥

नाम शरदिन्दु (शरच्चन्द्रमा) तथा पररा का नाम वसन्तपत्रत है ।
 लीलाकमल का नाम सदास्मेर तथा गेद का नाम चित्रकोरक है ।
 विलासकार्मण नामक स्वर्य से चित्रित धनुष है जिसमे शिखिनी
 नामक मनोहर बाण है जो दोनों तरफ मणि से बँधा हुआ है । मुँठी
 दिव्यरत्नोंसे जडित तुष्टि नामक कैंची है । श्रीकृष्णके त्रिषारण(सींग)
 का नाम मन्द्रघोष है । वशी का नाम भुवनमोहिनी है । श्रीराधा के
 हृदय रूप मीन के कंठे स्वरूप वह महानन्दा नाम से भी विख्यात
 है । मदनमङ्गार नाम से ख्यात छेदों से युक्त सुन्दर वेणु है । मनो-
 हर शब्द से कोकिलगण को चुप करने वाली सरला नामक मुरली है ।
 गौडी तथा गुर्जरी ये दोनों राग श्रीकृष्ण को अतिप्रिय हैं । साध्य
 वस्तु नाम से युक्त प्रेष्ट नामक अद्भुत तपने का मन्त्र है । अर्थात्
 रावामन्त्र जप्य है । ण्ड का नाम मण्डन और वीणा का नाम
 तरङ्गिणी है । पशुवशीकार नामक दो पाश हैं । दोहनी का नाम अ-
 मृत दोहनी है ॥ ११६-१-४ ॥

अङ्गदे रङ्गदाभिख्ये चङ्कने नाम रुङ्कणे ।
 मुद्रा रत्नमुखी पीत वासो निगमशोभनम् ॥ १२६ ॥
 किङ्किणी कलमङ्कुरा मञ्जीरौ हसगञ्जनौ ।
 कुरङ्गनयनाचित्तकुरङ्गदरशिञ्जितौ ॥ १२७ ॥
 हारस्तारावली नाम मणिमाला तडित्प्रभा ।
 रुद्धराधाप्रतिकृतिर्निष्को हृदयमोदन ॥ १२८ ॥
 कोस्तुभाख्यमणियेन प्रमिश्रय हृदमौगम् ।
 कालियप्रेयसीनृन्दहस्तरत्नमोपहारित ॥ १२९ ॥
 कुण्डले मकराकारे रतिसागाधिदन्ते ।
 निरीट रत्नपाराख्य चूडा चामरडामरी ॥ १३० ॥
 ननरत्नविडम्बाख्य शिखण्ड मुरुट्प्रिडु ।
 रागवल्ली तु गुञ्जाली तिलक दृष्टिमोहनम् ॥ १३१ ॥

अत्र श्रीकृष्ण के भूषणों का वर्णन करते हैं।—नौ रत्नों से जडे हुए महारत्ना नामक रत्नायन हैं जिन्हें माता ने दोनों भुजाओं में बाँध दिये हैं। अङ्गद का नाम रङ्गद, चङ्कण का नाम चङ्कन है। मुद्रिका का नाम रत्नमुखी तथा पीताम्बर का नाम निगमशोभन है। उनकी किङ्किणी का नाम कलमङ्कुरा और हसगञ्जन नामके दो मञ्जीर हैं। जो कि कुरङ्गनयना व्रजगोपिया के चित्त रूप कुरङ्ग के हर-शकारी तथा मनोहर शब्दायमान हैं। हार का नाम तारावली तथा मणिमाला का नाम तडित्प्रभा है। श्रीराधा के प्रतिविम्ब से युक्त हृदयमोदन नामक पत्रक है। मणि का नाम कोस्तुभ है। जिसे कि कालियहृद से उसकी प्रेयसियों के द्वारा खन लान किया था। रति-अधिदेव और रागाधिदेव नाम से ख्यात मकराकार दो कुण्डल हैं। निरीट का नाम रत्नपार और चूडा का नाम चामरडामरी है। नन-रत्नविडम्ब नामसे मयूरमुकुट प्रसिद्ध है। गुंजाली का नाम रागवल्ली

पत्रपुष्पमयी माला वनमाला पद्मवधिः ।

वैजयन्ती तु कुसुमैः पञ्चवर्णैर्विनिर्मिता ॥ १३२ ॥

जन्मनालंकृता पुण्या कृष्णा भाद्राष्टमी निशा ।

प्रेयस्या सह रोहिण्या शशी यस्यामुंदयिवान् ॥ १३३ ॥

अथ श्रीकृष्णस्य प्रेयस्यः ॥

अथ तस्यानुकीर्त्यन्ते प्रेयस्यः परमाद्भुताः ।

रमादिभ्योऽप्युरुप्रेमसौभाग्यवरभूषिताः ॥ १३४ ॥

तत्र श्रीराधा ॥

आभीरसुभ्रुवां श्रेष्ठा राधा वृन्दावनेश्वरी ।

अस्याः सख्यश्च ललिताविशाखाद्याः सुविश्रुताः ॥ १३५ ॥

चन्द्रावली च पद्मा च श्यामा शैव्या च भद्रिका ।

तारा विचित्रा गोपाली पालिका चन्द्रशालिका ॥ १३६ ॥

मङ्गला विमला लीला तरलाक्षी मनोरमा ।

कन्दर्पमञ्जरी मञ्जुभाषिणी खञ्जनेक्षणा ॥ १३७ ॥

कुमुदा कैरवी शारी शारदाक्षि विशारदा ।

शङ्करी कुङ्कुमा कृष्णा शारङ्गीन्द्रावली शिवा ॥ १३८ ॥

तारावली गुणवती सुमुखी केलिमञ्जरी ।

हरावली चक्रवर्ती भारती कमलादयः ॥ १३९ ॥

तया तिलक का नाम दृष्टिमोहन है । चरण पर्यन्त लम्बायमान पत्र पुष्पों से विरचित वनमाला है तथा पञ्चवर्ण पुष्पों से विरचित वैजयन्तीमाला है । भाद्रकृष्णाष्टमी की रात्री जन्मका समय है । जिसमें चन्द्रमा स्व प्रेयसी रोहिणी नक्षत्र के साथ उदित हुए हैं ॥ १२४-१३३ ॥

अब लक्ष्मी आदिक से भी अत्यन्त प्रेम-सौभाग्य के अतिशय से विभूषित परम अद्भुत श्रीकृष्ण की प्रेयसियों का वर्णन करते हैं—
उन सब गोपांगनाओं में वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका श्रेष्ठा हैं । ल-

आसां यूथानि शतशः ख्यातान्याभिरसुभ्रुवाम् ।
लक्षसंख्यास्तु कथिता यूथे यूथे वराङ्गनाः ॥ १४० ॥
मुख्याः स्युस्तेषु यूथेषु कान्ताः सर्वगुणोत्तमाः ।
राधा चन्द्रावली भद्रा श्यामला पालिकादयः ॥ १४१ ॥
तत्रापि सर्वथा श्रेष्ठे राधाचन्द्रावलीत्युभे ।
यूथयोस्तु तयोः सन्ति कोटिसंख्या मृगीदृशः ॥ १४२ ॥
तयोरप्युभयोर्मध्ये सर्वमाधुर्यतोऽधिकम् ।
राधिका विश्रुतिं याता यद्गान्धर्व्याख्यया श्रुतौ ॥ १४३ ॥
असमानोद्धमाधुर्यधुर्यो गोपेन्द्रनन्दनः ।
यस्याः प्राणपराङ्मनां पराङ्मादपि बल्लभः ॥ १४४ ॥
श्रीराधारूपलावण्यं विशेषात् परिकीर्त्यते ।
नानावैदर्घ्यैर्गुणैः सुधांशुर्वस्वरूपिणी ॥ १४५ ॥

लिता, विशाखादिक इनकी सखी भाँव से सुप्रसिद्ध हैं । और सब का नाम भूल श्लोकों से ज्ञात करें । अर्थ सरल है ॥ १३४-१३६ ॥
इन सब गोपाङ्गनाओं में एक के सौ-सौ यूथ हैं । एक एक यूथ में लक्षसंख्यक वराङ्गना मौजूद हैं । उन सब यूथों में समस्त गुणों से उत्तम राधा, चन्द्रावली, भद्रा, श्यामला, पालिकादिक कान्तागण हैं । उनमें से सर्व प्रकार राधा, चन्द्रावली दोनों श्रेष्ठा हैं । दोनों के कोटि संख्यक मृगनयना यूथ हैं । दोनों में से भी संकल माधुर्य से अधिक श्रीराधिका जी हैं । जो कि श्रुति में गान्धर्व्या नाम से विख्यात हैं । ममान ऊर्द्ध रहित महामाधुर्य के सागर रूप श्री ब्रजराजगोपेन्द्रनन्दन जिनके पराङ्ग प्राणों के पराङ्ग प्राणों से भी बल्लभ हैं ॥ १४०-१४४ ॥

अत्र श्रीराधिका जी के रूप लावण्य का विशेष करके वर्णन करते हैं ।—श्रीराधिका नाना वैदर्घ्य में परम परिणता तथा सुधा की

नवगोरोचनाभक्तिर्दत्ते म समप्रभा । — — —
 किम्वा स्थिरा विद्युदित्र रूपातिपरमोज्ज्वला ॥ १४६ ॥
 विचित्र नीलवसन तस्याश्च परिशोभिताम् ।
 नानामुक्ताभूषिताङ्गी नानापुष्पमिराजिता ॥ १४७ ॥
 दीर्घ केशी सुलाग्रय मुक्तामालासुशोभिता ।
 पुष्पमाला सुविन्यासा सुवेणी परमोज्ज्वला ॥ १४८ ॥
 सुभाल. परमोदीत सिन्दूरपरिमृषित । — — —
 नाना चित्रालका भान्ति चित्रपत्रसुशोभिता ॥ १४९ ॥
 बाहुयुगल सुलाग्रय नीलकङ्कणशोभिताम् । — — —
 अनङ्ग-दण्डलात्रयमोहिनी परमा भजेत् ॥ १५० ॥ — — —
 नयनोत्पलयुगलञ्च आकर्णपरिशोभिताम् । — — —
 कज्जलोज्ज्वलदीप्तिश्च त्रैलोक्यजयिनी परा ॥ १५१ ॥
 नासिका तिलपुष्पाभा मुक्ताग्रेष्वशोभिता । — — —
 नाना सुगन्धयुक्ता सा परा दीप्तिमती भजेत् ॥ १५२ ॥ — — —

सागर रूपिणी हैं । वे नगीन गोरोचनाकी भाँति गोरागी हैं । उनकी प्रभा तपायमान सुवर्ण की तरह अथवा स्थिर-विद्युत् के सदृश रूप की अतिशयता से परम उज्ज्वला है । उनके विचित्र नीलवसन शोभायमान हैं । वे नाना प्रकार की मुक्ताओं से भूषित अ गवाली तथा नाना पुष्पों से विराजमाना हैं । उनके केश अति लम्बायमान हैं तथा वे लावण्यरूपिणी हैं । विविध मुक्ता मालाओं से सुशोभिता हैं तथा नाना पुष्पमालाओं से सजी हैं । उनकी वेणी परम उज्ज्वला है तथा भालदेश सिन्दूर से परिमृषित दीप्तिमान् है । अलकावली चित्र पत्रों से सुशोभित नाना चित्रमयी है । नील कङ्कण से शोभित सुन्दर लावण्यमय बाहुयुगल हैं । मुजलता अनङ्ग यष्टि की लावण्यता को मोहित करने वाली है । युगल नयनकमल कर्णपर्यन्त शोभाय

रत्नताडक्युग्मञ्च नाना चित्रविनिर्मितम् ।
 श्रोष्ठाघर सुधारम्यो रक्तोत्पलविनिर्जित ॥ १५३ ॥
 मुक्तामाला दन्तपङ्क्ति रसनापरिशोभिता ।
 मुखपद्म सुलावण्य कोटिचन्द्रप्रभाजितम् ।
 बिम्बजन्त्र सुधारम्यप्रेमहास्ययुत भवेत् ॥ १५४ ॥
 चिबुकस्य सुलावण्य कन्दर्पमोहन परम् ।
 मसिन्दि सुलावण्यो हेमज्जे भ्रमरी यथा ॥ १५५ ॥
 कण्ठदेशे चित्ररेखा मुक्तामालाभिभूषिता ।
 पृष्ठग्रीवा सुरम्या च पार्श्वेऽपि मोहिनी भवेत् ॥ १५६ ॥
 वक्ष स्थल सुलावण्य हेमकुम्भसुशोभितम् ।
 कञ्चुल्याच्छादितं तस्या मुक्ताहारविराजितम् ॥ १५७ ॥
 सुबाहुयुगल तस्या लार्ण्यमोहनारि च ।
 रत्नाङ्गदे तयोर्मध्ये बलया परिशोभिते ॥ १५८ ॥

मान हैं । जिसकी कान्ति काजर से उज्ज्वल तथा त्रैलोक्य विजयिनी हो रही है । मुक्तावेशर से शोभित, तिलपुष्प कान्ति के तुल्य नासिका है । वह नाना सुगन्धि से युक्त अति दीप्तिशालिनी है । नाना चित्रों से विनिर्मित तो रत्न ताडक है । रक्तोत्पल को जीतने वाला, सुधा सुन्दर श्रोष्ठाघर है । जिह्वा से परिशोभित मुक्तामाला की तरह दन्तपङ्क्ति है । कोटि चन्द्रमा प्रभा के तुल्य लावण्यमय मुखपद्म है । सुधा से भी सुन्दर, प्रेम रूप हास्य से युक्त, बिम्ब की तरह चिबुक है, जिसका सुलावण्य कन्दर्प को मोहित करने वाला है । उसमें फिर स्वर्णकुम्भ में भ्रमरी की तरह लार्ण्यमय मसिन्दि है । कण्ठदेश में मुक्तामालाआ से अभूषित चित्ररेखा है । पीठ, ग्रीवा अति सुन्दर तथा दोनों पार्श्व में मोहिनी रूप है । सुलार्ण्यमय स्तन कुम्भों से मानों सुशोभित, बाँचोली से आच्छादित, मुक्ताहारों से शोभायमान वक्ष

रत्नकङ्कणदीप्ते च रत्नगुच्छविराजिते ।

रक्तोत्पलं हस्तयुग्मं नखचन्द्रसुदीप्तकम् ॥ १५६ ॥

करचिन्हानि ॥

भृङ्गाम्भोज शशिकला कुण्डलच्छत्रयूपकः ।

शंखवृक्षकुसुमकचामरस्वस्तिकादयः ॥ १५७ ॥

एते धिन्हाः शुभकारानानाचित्रविराजिताः ।

करांगुलयः सुदीप्ताश्च रत्नांगुरीयभूषिताः ॥ १५८ ॥

उदरं मधुलावयं निम्नजाभिमुखोभितम् ।

सुधारसपरिपूर्णञ्च त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥ १५९ ॥

क्षीणमध्यं कटितटं लावण्यभरभंगुरम् ।

वलित्रयीलतावद्धा किङ्किणीजालशोभिता ॥ १६० ॥

उरु द्वौ रामरम्भेव मनोजचित्तमोहनौ ।

जानू द्वौ च सुलावण्यौ नानाकैलिरसाकरो ॥ १६१ ॥

स्थल है । लावण्य मोहनकारी सुन्दर बाहुयुगल हैं, जो रत्नों के अ-
गंठों तथा घलयों से परिशोभित हैं तथा रक्तः कङ्कण से दीप्तिमान
और रत्नों के गुच्छ से विराजमान है । रक्तोत्पल की तरह हस्तयुगल
है जो कि नख चन्द्रों से अति प्रकाशमान है ॥ १५६-१५९ ॥

भृङ्ग, अम्भोज, चन्द्रकला, कुण्डल, छत्र, यूप, शंख, वृक्ष, पुष्प,
चामर, स्वस्तिकादिक ये सब जिह्वा शुभकारी तथा नाना चित्रों से
विराजमान हैं । करांगुलियाँ सुदीप्त तथा रत्न मुद्रिकाओं से विभू-
षित हैं । उदर मधु से भी लावण्यमय तथा गम्भीर नाभि से सुशो-
भित है । वह सुधारस से परिपूर्ण तथा तीन लोक को मोहन करने
वाला है । मध्य में क्षीण, लावण्य के अतिशय से सुन्दर कटिदेश
है । जो त्रिवलीलता से वेष्टित और किङ्किणी जालों से शोभित है ।
उरु युगल मनोहर रम्भा की तरह है तथा कन्दर्प चित्त का मोहन

श्रीपादपद्मयुग्मञ्च मणिनूपुरभूषितम् ।

वङ्गराजसुलावण्य पदागुरीयशोभितम् ॥ १६५ ॥

अथ चरणचिन्हानि ॥

शरनेन्दुकुञ्जस्यनावकुशाश्च रथचक्रौ ।

ढोम्बरस्तिमत्स्यादि शुभचिन्हौ पदाग्रपि ॥ १६६ ॥

आपञ्चदशवर्षञ्च वयः केशोरकोञ्जलम् ॥ १६७ ॥

मातृकोटेरपि स्निग्धा यत्र गोपेन्द्रगोहिनी ।

वृषभानु पिता तस्या वृषभानुरिवोज्ज्वलः ॥ १६८ ॥

रत्नगभीक्ष्णितौ ख्याता कीर्त्तिदा जननी भवेत् ।

पितामहो महीभानुरिन्दुर्मातामहो मतः ॥ १६९ ॥

मातामही-पितामहौ मुखरा मुखदे उभे ।

रत्नभानुः शुभानुश्च भानुश्च आतरः पितुः ॥ १७० ॥

कारक है । दोनों जघा नाना केलि रम के आकर सुन्दर लावण्य रूप हैं । दोनों श्रीचरणकमल मणिनूपुर से भूषित हैं तथा लावण्यमय अगुरिया से शोभित हैं ॥ १६०-१६५ ॥

— शंख, चन्द्र, हस्ति, दो वन, अंकुश, रथ, ध्वजा, ढम्बर, स्तम्भ, मत्स्यादिक शुभचिह्नों से युक्त दोनों चरण हैं ॥ १६६ ॥

केशोरता से उज्ज्वल पञ्चदशवर्ष पर्यन्त अवस्था है । श्रीराधिका में गोपेन्द्रगोहिनी श्रीयशोदा कोटिमाता के सदृश स्निग्धा थीं । उनके पिता वृषभानु जी हैं जो कि वृषराशिस्य सूर्य की तरह परम उज्ज्वल थे । पृथ्वी में रत्नगर्भा नाम से ख्याता कीर्त्तिदा जी माता हैं । पितामह महीभानु और मातामह इन्दु है । मुखरा मातामही और मुखदा पितामही हैं । रत्नभानु, शुभानु, भानु, ये पिता के भैया हैं । भद्रकीर्त्ति, महाकीर्त्ति, कीर्त्तिचन्द्र ये मामा हैं । मेनका, पद्मा, गौरी, धारी, धातकी, ये मामी हैं । माता की भगिनी कीर्त्तिमती तथा पिता

भद्रकीर्त्तिर्महाकीर्त्तिः कीर्त्तिचन्द्रश्च मातुलाः ।

मातुल्यो मेनका पष्ठी गौरी धात्री च धातकी ॥ १७१ ॥

स्वसा कीर्त्तिमती मातुर्मानुमुद्रा पितृस्वसा ।

पितृस्वसृपतिः काशो मातृस्वसृपतिः कुशः ॥ १७२ ॥

श्रीदामा पूर्वजो भ्राता कनिष्ठानङ्गमञ्जरी ।

श्वशुरो वृकगोपश्च देवरो दुर्मदाभिधः ॥ १७३ ॥

श्वश्रूस्तु जटिलाख्याता पतिम्मन्योऽभिमन्युकः ।

ननन्दा कुटिलानाम्नी सदाच्छिद्रविधायिनी ।

परमप्रेष्ठसख्यस्तु ललिता सविशाखिका ।

सुचित्रा चम्पकलता रङ्गदेवी सुदेविका ।

तुङ्गविद्येन्दुलेखे ते अष्टौ सर्वगणाग्रिमाः ॥ १७४ ॥

(क) अथ प्रियसख्यः ॥

प्रियसख्यः कुङ्गाक्षी मण्डली मणिमुण्डला ।

मालती चन्द्रलातका माधवी मदनालसा ॥

मञ्जुमेधा शशिकला सुमध्या मधुरेक्षणा ।

कमला कामलतिका गुणचूडा वराङ्गदा ।

कीर्त्तिमती मातुमुद्रा हैं । कीर्त्तिमती का पति कुश और भानुमुद्रा का पति काश है । श्रीराधा के बड़े भ्राता श्रीदामा और कनिष्ठा भगिनी अनङ्गमञ्जरी हैं । श्वशुर वृकगोप और देवर दुर्मद नाम से हैं । जटिला सास तथा अभिमन्यु पतिम्मन्य (अर्थात् अपने को पति का अभिमान रखने वाले हैं) । ननन्द कुटिला है जो कि निरन्तर त्रिन्द्रानुसन्धान करने वाली थी । ललिता, विशाखा, सुचित्रा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, सुदेवी, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा ये अष्टसखी समस्त गणों में अग्रिम, परमप्रेष्ठसखी हैं ॥ १६७-१७४ ॥

अब प्रिय सखियों का नाम वर्णन करते हैं—ये सब कोटि कोटि

माधुरी चन्द्रिका प्रेममञ्जरी तनुमध्यमा ।
कन्दर्पसुन्दरी मञ्जुकेशीत्याद्यास्तु कोटिशः ॥

(स) अथ जीवितसख्यः ॥

उक्ता जीवितसख्यस्तु लासिका केलिकन्दली ।
कादम्बरी शशिमुखी चन्द्रेखा प्रियंवदा ।
मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभापिण्णी ।
रत्नावली मणिमती कपूरलतिकादयः ॥

(ग) अथ नित्यसख्यः ॥

नित्यसख्यस्तु कस्तूरी मनोदा मणिमञ्जरी ।
सिन्दूरा चन्दनवती कौमुदी मदिरादयः ॥

अथ श्रीराधाया मञ्जर्यः ॥

अनङ्गमञ्जरी रूपमञ्जरी रतिमञ्जरी ।
लवङ्गमञ्जरी रागमञ्जरी रसमञ्जरी ॥ १७५ ॥
विलासमञ्जरी प्रेममञ्जरी मणिमञ्जरी ।
सुवर्णमञ्जरी काममञ्जरी रत्नमञ्जरी ॥ १७६ ॥
कस्तूरीमञ्जरी गन्धमञ्जरी नेत्रमञ्जरी ।
श्रीपद्ममञ्जरी लीलामञ्जरी हेममञ्जरी ।
भानुमत्यन्तपर्याया सुप्रेमा रतिमञ्जरी ॥ १७७ ॥

संख्या में हैं जिनके नाम कुरङ्गादी इत्यादि हैं । मूल श्लोकों को देखें
अर्थ सरल है । (क)

अथ जीवित सखियों का नाम-लासिका इत्यादि है । मूल श्लोकों
को देखें । अर्थ सरल है । (स)

अथ नित्यसखियों का नाम कस्तूरी इत्यादि है । मूल देखें (ग)

अथ श्रीराधिका की मञ्जरियों का नाम दिखावे हैं । जिनके नाम
अनङ्गमञ्जरी इत्यादि हैं । मूल श्लोकों को देखें । अर्थ सरल है ।
॥ १७५-१७७ ॥

अथ श्रीराधाया उपास्य ॥

उपास्यो जगतो चक्षुर्भगवान् पद्मबन्धु ।

जप्य स्वाभीष्टससर्गी कृष्णनाम महामनु ।

पौर्णमासी भगवती सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी ॥ १७८ ॥

अथ सख्यादिविशेषा ॥

ललिताद्या अष्टसरयो मञ्जर्यस्तद्राज्य च ।

सर्व्या वृन्दाजनेश्वर्या प्राय सारूप्यमागता ॥ १७९ ॥

काननादिगता सख्यो वृन्दानुन्दलतादय ।

घनिष्ठा गुणमालाद्या वल्लवेश्वरगेहगा ॥ १८० ॥

कामदा नाम धात्रेयी सखीभावविशेषभाक् ।

रागलेखा कलानेली मञ्जुलाद्यास्तु दासिका ॥ १८१ ॥

नान्दीमुखी विन्दुवतीत्याद्या सन्धिविधायिका ।

सुहृत्पद्मतया ख्याता श्यामला मङ्गलादय ॥ १८२ ॥

अथ श्रीराधिका जी के उपास्य का वर्णन करते हैं । जगवासियों के नेत्र रूप, भगवान् पद्मबन्धु, सूर्यदेव उपास्य हैं । निज अभीष्ट ससर्गी कृष्णनाम महामन्त्र जप्य है । पौर्णमासी भगवतीजी समस्त सौभाग्यों को बढ़ाने वाली हैं ॥ १७८ ॥

अथ सखियों का विशेषता का वर्णन करते हैं । ललितादि अष्ट सखियों, मजरियों, उनके समस्त गण ये सब प्राय वृन्दाजनेश्वरी श्रीराधिका जी के सारूप्य (समान रूपता) को प्राप्त हुए हैं ॥ १७९ ॥

वृन्दा, वृन्दलतादिक सखियाँ वनादिकों में जान आन वाली तथा घनिष्ठा, गुणमालादिक ब्रजराज के घर पर रहने वाली हैं । कामदा नामक धात्रेयी विशेष करके सखी भाव से युक्त है । रागलेखा, कलानेलि, मञ्जुलादि दासिका है । नान्दीमुखी, विन्दुवती प्रभृति विवाद में सन्धि कराने वाली हैं । श्यामला, मङ्गलादिक सुहृत्पद्मा तथा

प्रतिपक्षतया ख्यातिं गताश्चन्द्रावली मुखाः ॥ १८३ ॥

कलावत्यो रसोल्लासा गुणतुङ्गा स्मरोद्धुरा ।

गन्धर्व्वास्तु कलाकण्ठा सुकण्ठी पिक्वकण्ठिका ।

या विशाखाकृतगीतीर्गायन्त्यः सुखदा हरेः ॥ १८४ ॥

वादयन्त्यश्च शुपिरं ततानद्धघनान्यपि ।

माणिकी नर्मदा प्रेमवती कुमुमपेशलाः ॥ १८५ ॥

सख्यश्च नित्यसख्यश्च प्राणसख्यश्च काश्चन ।

प्रियसख्यश्च परमप्रेष्ठसख्यः प्रकीर्त्तिताः ॥

अथ श्रीराधाभूत्याः ॥

रागलेखा कलाकेला भूरिदायास्तु दासिकाः ॥

दिवाकीर्त्तितनूजे तु सुगन्धा-नलिनीत्युभे ।

मञ्जिष्ठाङ्गरागाख्ये रजकस्य किशोरिके ॥ १८६ ॥

पालिन्द्री नाम सैरिन्द्री चित्रिणी चित्रकारिणी ।

मान्त्रिकी तान्त्रिकी नाम्ना दैवज्ञा दैवतारिणी ॥ १८७ ॥

चन्द्रावली आदिक प्रमुख प्रतिपक्ष वाली प्रसिद्धा हैं । रसोल्लासा, गुणतुङ्गा, स्मरोद्धुरा विविध कलावती हैं । कलाकंठी, सुकण्ठी, प्रिय-कण्ठिका गाने वाली हैं जो कि विशाखा रचित गानों को गा कर हरि को सुख देती हैं । ये सब शुपिर, तत, आनद्ध, घनादिकों को बजाती भी हैं । माणिकी, नर्मदा, प्रेमवती, ये सब पुष्पों की रचना करती हैं । इनमें से कोई कोई सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रिय-सखी, परमप्रेष्ठसखी करके कीर्त्तिता होती हैं । अब श्रीराधिका की दासियों का वर्णन करने हैं । रागलेखा, कलाकेली, भूरिदादिक दा-सिका हैं । सुगन्धा, नलिनी दोनों नापित की कन्या हैं । मञ्जिष्ठा, रङ्गरागा नामक दो रजककन्या हैं । गन्धद्रव्यादिकों को लगाने वाली पालिन्द्री है तथा चित्रकारिणी चित्रिणी है । मान्त्रिकी, तान्त्रिकी दो दैवज्ञा हैं । कात्यायनी आदिक वयोऽधिका दूतिका हैं । भाग्यवती, पुंजपुण्या नामक दो मोहतर की कन्या हैं । भृङ्गी, मल्ली, मतल्ली ये

तथा कात्यायनाद्या दूतिका वयसाधिकाः ।
 उभे भाग्यवती पुञ्जपुरणे हड्डिपुन्यके ॥ १८८ ॥
 भृङ्गी मल्ली मतल्ली च पुलिन्दकुलकन्यकाः ।
 केचित् कृष्णगणाश्चास्याः परिवारतया मताः ॥ १८९ ॥
 गार्गी मुख्या महीपूज्या चेट्यो भृङ्गारिकादयः ।
 सुवलोच्चलगन्धर्व्वमधुमङ्गलरक्तकाः ।
 विजयाद्या रसालाद्या पयोदाद्या विटादयः ॥ १९० ॥
 आसन्ना सर्वदा तुङ्गी पिशाङ्गी कलकन्दला ।
 मञ्जुला विन्दुला सन्धा मृदुलाद्यास्तु बालिकाः ॥ १९१ ॥
 समासमीना सुनदा यमुना बहुलादयः ।
 पीना वत्सतरी तुङ्गी ककुषट्टी वृद्धमर्कटी ।
 कुरङ्गी रङ्गिणी ख्याता चकोरी चारुचन्द्रिका ॥ १९२ ॥
 निजगुण्डचरी तुण्डीनेरी नाम मरालिका ।
 मयूरी तुण्डिका नाम्ना शारिके सूक्ष्मधी शुभे ॥ १९३ ॥
 वन्धानि ललितादेव्या ललितानि स्वनाथयोः ।
 पठन्त्यौ चित्रया वाचा ये चित्रीरुस्तः सखी ॥ १९४ ॥

सब पुलिन्द कन्यका हैं । इनमें से कोई तो कृष्णपत्नीया हैं और कोई राधिका के परिवारवाली मानी जाती हैं । गार्गी मुख्या ब्राह्मणीगण है । भृङ्गारिकादिक चेटियाँ हैं । सुवल, उज्ज्वल, गन्धर्व्व, मधुमङ्गल, रक्तक, विजयादिक, रसालादिक, पयोदादिक विटागण हैं । सदा सर्वदा निकट में रहने वाली तुङ्गी, पिशाङ्गी, कलकन्दला, मञ्जुला, विन्दुला, सन्धा, मृदुलादिक बालिकायें हैं । सुनन्दा, यमुना, बहुलादिक दूधेली गोएँ हैं । गोवत्सा का नाम तुङ्गी है । वृद्ध-मर्कटी के नाम ककुषट्टी, हरिणी का नाम रङ्गिणी और चकोरी का नाम चारुचन्द्रिका था । अपने गुण्ड में (श्रीपद्माकुण्ड) में चरने वाली हंसिनी का नाम तुण्डीनेरी था । तुण्डिका नामक मयूरी और सूक्ष्मबुद्धि वाली दो मङ्गलरूपा शारिकाएँ थीं । शारिका युगल भी ललिता के द्वारा सींगे

अथ भूषणानि ॥

तिलकं स्मरयन्त्राख्यं हारो हरिमनोहरः ।
 रोचनौ रत्नताडकौ घ्राणमुक्ता प्रभाकरी ॥ १६५ ॥
 द्यन्नकृष्णप्रतिच्छायां पदकं मदनभिधम् ।
 स्यमन्तकान्यपर्म्यायः शंखचूडशिरोमणिः ॥ १६६ ॥
 पुष्पवन्तौ क्षिपन् कान्त्या सौभाग्यमणिरुच्यते ।
 कटकश्चटकारायाः केयूरे मणिकर्बुरे ॥ १६७ ॥
 मुद्रा नामाङ्किता नाम्ना विपक्षमदमार्दिनी ।
 काञ्ची काञ्चनचित्राङ्गी नूपुरे रत्नगोपुरे ।
 मधुसूदनमारुद्धे ययोः शिञ्जितमञ्जरी ॥ १६८ ॥
 वासो मेघाम्बरं नाम कुरुविन्दनिभं तथा ।
 आद्यं स्वप्रियमन्नाभं रक्तमन्त्यं हरेः प्रियम् ॥ १६९ ॥
 सुधांशुदर्पहरणो दर्पणो मणिवान्धवः ॥ २०० ॥
 शलाका नर्मदा हर्मा स्वस्तिदा रत्नकङ्कती ।
 कन्दर्पकुहली नाम वाटिका पुष्पभूषिता ॥ २०१ ॥

हुए निजनाथ श्रीराधाकृष्ण सम्बन्धी विचित्र वचनों का पाठ कर
 सखियों को भी आश्चर्य्य युक्त करा देता था ॥ १८०-१८४ ॥

अथ श्रीराधा के भूषणों का वर्णन करते हैं । तिलक का नाम
 स्मरयन्त्र, हार का नाम हरिमनोहर, दोनों रत्न-ताड़ का नाम रोचन
 तथा नासिक में विराजमान मुक्ता का नाम प्रभाकरी है । पदक का
 नाम मदन है जो कि श्रीकृष्ण की प्रतिच्छाया से ढका रहता था ।
 शंखचूड से प्राप्त मणि का नाम सौभाग्यमणि है । जिसका दूसरा
 नाम स्यमन्तकमणि भी था तथा जो अपनी कान्ति से एक ही साथ
 चन्द्र सूर्य की कान्ति को फैकता था । कटक (कड़वा) सब चट-
 कारावा के नाम से कहे जाते थे । दोनों केयूरें (बाजू) का नाम म-
 णिकर्बुर था । मुद्रिका का नाम विपक्षमदमार्दिनी था । काञ्ची (कौ-
 धनी) का नाम काञ्चनचित्राङ्गी, तथा दोनों नूपुरों के नाम रत्नगोपुर

स्वर्णयूथी तडिद्वल्ली कुण्डं ख्यातं स्वनामतः ।

नीपवेदीतटे यस्य रहस्यकथनस्थली ॥ २०२ ॥

मल्लारश्च धनाश्रीश्च रागौ हृदयमोदनौ ।

छालिक्यं दयितं नृत्यं वल्लभा रुद्रवल्लकी ॥ २०३ ॥

जन्मना श्लाघ्यतां नीता शुक्ला भाद्रपदाष्टमी ।

कान्ता पोडशमी रेमे यत्रालिनिनिलये शशी ॥ २०४ ॥

इत्येतत् परिवाराणां श्रीवृन्दावननाथयोः ।

असंख्यानां गणयितुं दिङ्मात्रमिह दर्शितम् ॥ २०५ ॥

इति श्रीलक्ष्मीपादरूपगोस्वामिविरचितायां

श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिकायां लघुभागाः सम्पूर्णः (सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः)

थे । जिनकी शब्द मञ्जरी मधुसूदन श्रीकृष्ण का रोध कर देती थी । मेघाम्बर तथा कुरुविन्दनिभ नाम से दो वस्त्र थे । पहिला तो अपना प्रिय तथा मेघकान्ति के तुल्य था और दूसरा रक्तवर्ण तथा श्रीहरि के प्रिय था । दर्पण का नाम मणिवान्धव था जो कि चन्द्रमा के दर्प को हरण करता था । सुवर्ण शलाका का नाम नर्मदा तथा रत्नकङ्कती (कङ्गा) का नाम स्वस्तिदा था । कन्दर्पकुहली नामक घाटिका थी जो कि पुष्पों से भरपूर थी । सुवर्णयूथी का नाम तडिद्वल्ली तथा अपने नाम से ख्यात कुण्ड (राधाकुण्ड) है । जिसके नीपवेदी तट में रहस्यकथनस्थली है । मल्लार और धनाश्री ये दोनों राग हृदय मोहनकारी हैं । श्रीराधा को छालिक्य नामक नृत्य प्रिय था तथा रुद्रवल्लकी परम प्रिया थी । शुक्ला भाद्रपद की अष्टमी जन्म दिवस के कारण प्रशंसनीया है जहाँ अपनी पोलह भार्या (वल्लभा) के साथ चन्द्रमा रमण करता है । इति यह श्रीवृन्दावननाथ राधाकृष्ण के असंख्य परिवारों का गणना करने के लिये यहाँ दिङ्मात्र दिखलाया गया है ॥ १६५-२०५ ॥

इति श्रीलक्ष्मीपादरूपगोस्वामिविरचिते श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका के लघुभाग का अनुवाद सम्पूर्ण हुआ । अनुवादक-कृष्णदास ।

ॐ श्रीकृष्णलिलस्तवः ॐ

श्रीकृष्णाय नमो नमः ।

श्रीकृष्णस्य कथासूत्रं यथाभागवतक्रमम् ।

लिरयतेऽष्टोत्तरशतप्रणामानन्दसिद्धये ॥ १ ॥

ब्रह्मब्रह्मन्मम त्वामात्मब्रन्दीश्वरेश्वर ।

नानावतारकृत् कृष्ण मधुरानन्दपूरद ॥ २ ॥

[एवमादौ यथावदारम्भे नमस्कार एकः]

जय कृष्ण परब्रह्मन् जगत्तत्त्व जगन्मय ।

अद्वैत सच्चिदानन्द स्वप्रकाशारिजलाश्रय ॥ ३ ॥

* श्रीसनातनगोस्वामिने नमः *

एक सौ आठ प्रणाम कर आनन्दातिशय प्राप्ति के लिये श्रीमद्-
भागवत क्रम के अनुसार श्रीकृष्ण कथा के सूत्र अर्थात् बीज लिखे
जाते हैं ॥ १ ॥

हे ब्रह्मब्रह्मन् अर्थात् ब्रह्मा के अधीश्वर अथवा वेद प्रतिपाद्य
परम ब्रह्म !, हे आत्मन् अर्थात् व्यापक अथवा प्रियतम !, हे नन्दी-
श्वर महादेव के ईश्वर अथवा नन्दग्राम के सर्वप्राधान्यरूप ब्रज-नव-
युवराज !, हे मत्स्य-कूर्म-वराहादि नानावतारकारी !, हे सर्वचित्ता-
रूपक नन्दनन्दन श्रीकृष्ण !, हे मधुरानन्द पूरद अर्थात् माधुर्य सुख-
सागर अथवा शृंगाररससर्वस्व ! आपको नमस्कार है ॥ २ ॥

(यह प्रारम्भ में प्रथम नमस्कार है)

हे कृष्ण !, हे परब्रह्म अर्थात् सर्वाख्य सर्वश्रेष्ठ !, हे अखिल
ब्रह्माण्ड के मूलकारण ! हे जगन्मय अर्थात् एकांश से जगत् स्थिति
के कारण जगद्रूप ! हे सर्वांगिक !, हे सच्चिदानन्द अर्थात् सन्धिनी-
सम्बित्-रूपादिनी शक्तिविशिष्ट !, हे स्वयं प्रकाश !, हे अखिल आश्रय !
आप की जय हो ॥ ३ ॥

निर्विकारापरिच्छिन्न निर्विशेष निरञ्जन ।

अव्यक्त सत्य सन्मात्र परम ज्योति रक्षर ॥ ४ ॥ नमः २ ॥

परमात्मन् वासुदेव प्रधानपुरुषेश्वर ।

सर्वज्ञानक्रियाशक्तिदात्रे तुभ्यं नमो नमः ॥ ५ ॥

हृन्पद्मकर्णिकवास गोपाल पुरुषोत्तम ।

नारायण हृषीकेश नमोऽन्तर्यामिणेऽस्तु ते ॥ ६ ॥ नमः ३ ॥

हे निर्विकार ! हे अपरिच्छिन्न ! हे निर्विशेष ! अर्थात् प्राकृत
हेयगुण वर्जित ! हे निरञ्जन अर्थात् क्लेशरहित अथवा स्वरूपन्युति-
शून्य ! हे अव्यक्त अर्थात् अस्पष्ट प्रकारा ! हे सत्य अर्थात् यथार्थस्व-
रूप में स्थित अथवा सदा सर्वदा अव्यभिचारिरूप से विराजमान ?
हे सन्मात्र ! हे परम पुरुषोत्तम ! अथवा स्वरूपशक्ति के द्वारा नित्य
आलिङ्गित ! हे परम ज्योतिस्वरूप ! हे अक्षर अर्थात् प्रणव स्वरूप !
अथवा जिनकी प्राप्ति होने पर पतन नहीं होता है एतादृश ! ॥ ४ ॥
(दूसरा प्रणाम)

इसके परचात् भगवान् के सर्वान्तर्यामित्व-हेतु परमात्म स्वरूप के
आविर्भाव का स्तव करते हैं । हे परमात्मन् अर्थात् हे सर्वान्तर्यामिन्,
हे वासुदेव अर्थात् रोमरूप में निहित ब्रह्माण्डनिवासभूत प्रथमपुरुष
के देवता ! हे प्रधान पुरुषेश्वर अर्थात् प्रकृतिपुरुष के नियन्ता ! आप
समस्त ज्ञान-क्रिया-शक्ति के प्रदाता हैं आपको नमस्कार है नमस्कार
है ॥ ५ ॥

आप हृदयपद्म कर्णिका में अर्थात् अनाहतचक्र में निवास करते
हैं, वायव्य इन्द्रिय के द्वारा उलक्षित संकल इन्द्रियों के पालक होने
के कारण गोपाल हैं, आप पुरुषोत्तम हैं । जीव-समूह के आश्रय होने
के कारण अथवा अखिललोक के साक्षी होने के कारण आपका नाम
नारायण है । आप क्षेत्रज्ञ रूप से समस्त इन्द्रियों के अधीश्वर विष्णु
अन्तःकरण के नियामक होने के कारण अन्तर्यामी हैं । आपको नम-

परमेश्वर लक्ष्मीश सच्चिदानन्दविग्रह ।
 सर्वसल्लक्षणोपेत नित्यनूतनयौवन ॥ ७ ॥
 सर्वाङ्गसुन्दर स्निग्धघनश्यामाञ्जलोचन ।
 पीताम्बर सदा स्मेरमुखपद्म नमोस्तु ते ॥ ८ ॥
 परमाश्चर्य्यसौन्दर्य्य माधुर्य्यजितदृपण ।
 सदा कृपास्निग्धदृष्टे जय भूपणभूपण ॥ ९ ॥
 कन्दर्पकोटिलावण्य सूर्य्यकोटिमहाश्रुते ।
 कोटीन्दुजगदानन्दिन् श्रीमद्वैकुण्ठनायक ॥ १० ॥

स्कार है ॥ ६ ॥ (तीसरा नमस्कार)
 इसके अनन्तर विष्णुस्वरूप में आविर्भूत प्रभु का स्तव करते हैं—
 हे परमेश्वर ? हे लक्ष्मीपति ! हे सच्चिदानन्दविग्रह अर्थात् परि-
 पूर्ण आविर्भाव के कारण सच्चिदानन्दघन विग्रहधारिन् ! आप
 अत्युत्तम वत्तीस प्रकार के सल्लक्षण से युक्त हैं और नित्यनवयौवन
 में स्थित हैं ॥ ७ ॥

हे सर्व्वाङ्गमनोहर ! स्निग्ध जलधर की भाँति आपका चरण श्या-
 मल है और आप कमलनयन पीताम्बरधारी हैं । आपका मुखकमल
 सदा सर्वदा मन्दहास्य से शोभायमान है । आपको नमस्कार है ॥ ८ ॥
 आपका सौन्दर्य्य परम अद्भुत है तथा श्री अङ्ग की माधुर्य्यता
 सकल भूषणों का पराभवकारी है अर्थात् भूषणों का भूषणरूप है ।
 हे सदा सर्वदा करुणामृत वर्षण के द्वारा स्निग्ध-दृष्टिवाले ! हे भूषणों
 के भूषण अर्थात् शोभा समुद्र ! आपकी जय हो ॥ ९ ॥

हे कोटि कोटि काम ने भी समविक लावण्यधारिन् !, हे कोटि
 कोटि सूर्य्य से भी अविकतर जोज्वल्यमान कान्तिवाले !, हे कोटि
 कोटि चन्द्र से भी अति सुन्दर रूपसे जगत् के आनन्द प्रदानकारिन् !
 आप सर्व शोभा-सम्पत्ति निषेवित वैकुण्ठ के नायक हैं ॥ १० ॥

शङ्खपद्मगदाचक्रविलसच्छ्रीचतुर्भुज ।

शेषादिपार्षदोपास्य श्रीमद्गरुडवाहन ॥ ११ ॥

स्वानुरूपपरीवार सर्वसद्गुणसेवित ।

भगवन् हृदयोऽतीत महामहिमपूरित ॥ १२ ॥

दीननायैकशरण हीनार्थाधिकसाधक ।

ममस्तदुर्गतिप्रात वाञ्छातीतफलप्रद ॥ १३ ॥ नम ४ ॥

सर्वावतारजीजाय नमस्ते त्रिगुणात्मने ।

नम्ये सृष्टिकर्त्रेऽथ सहर्त्रे शिवरूपिणे ॥ १४ ॥

हे शङ्ख-पद्म-गदा-चक्र-विलासी सुन्दर चतुर्भुज विशिष्ट !, हे शेषादि पार्षदों के उपास्य !, हे गरुडवाहन ! ॥ ११ ॥

हे स्वानुरूप परिकरो से परिसेवित !, हे निश्चल कल्याणमयगुणों के द्वारा अलङ्कृत !, हे ऐश्वर्य्य कीर्त्यादि पदभङ्गों से युक्त अर्थात् पहलैश्वर्य्य परिपूर्ण स्वयं भगवान् !, हे त्रिपात् विभूति में अर्थात् दिव्य चिन्मय धाम में नित्य विराजमान रहने के कारण वाक्य-मन के अ-गोचर ! अतएव नम्यादिदेवताओं को मोह के उत्पादक परम विस्मयकारी महान् ऐश्वर्य्य से परिपूर्ण ॥ १२ ॥

हे निष्प्रियजन जनों के प्रभु तथा प्रेमात्र आश्रय ! हे निष्प्रियजन निज भक्ता में चतुर्भुज तिरस्कारकारी प्रेम महाधन का नितरण करने वाले ! हे समस्त लोगों के त्रिपादि दुःखों के त्राणकारी तथा उनको वाञ्छातीत फल के दाता ! आपको नमस्कार है ॥ १३ ॥

(चतुर्थ नमस्कार)

अब महाविष्णुरूप से स्तव करते हैं ।—हे मत्स्य-वृन्मादि स मस्त अवतारों के मूलकारण अर्थात् सर्वावतार बीजरूप ! आप से ही गुणात्रय का प्रकाश होता है । आप सृष्टि के मूलकर्त्ता होने के कारण ब्रह्मरूप तथा सहार के कारण शिवरूप हैं । आपको नमस्कार है ॥ १४ ॥

भक्तैर्नृदापूरुणव्यग्र शुद्धसत्त्वघन प्रभो ।
 वन्दे देवाधिदेवं त्वां कृपालो विश्वपालक ॥ १५ ॥
 सर्ववर्मस्थापक्य सर्वावर्मविनाशिने ।
 सर्वासुरविनाशाय महाविष्णो नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥
 ज्ञानामधुररूपाय नानामधुरवामिने ।
 नानामधुरलीलाय नानासजाय ते नमः ॥ १७ ॥ नमः ५ ॥
 श्रीधनुःसनरूपाय तुभ्यं श्रीनारदात्मने ।
 श्रीवराहाय यज्ञाय कपिलाय नमो नमः ॥ १८ ॥
 दत्तात्रेय नमस्तुभ्यं नरनारायणी भजे ।
 हे हयग्रीव हे हंस ध्रुवप्रिय नमोऽस्तु ते ॥ १९ ॥

हे भक्तैर्नृदा पूर्ति के लिये निरन्तर व्यग्रमानस तथा शुद्ध सत्त्व-
 गुण के आश्रय के द्वारा विष्णुस्वरूप में अवस्थित ! आप देवादिदेव,
 कृपालु तथा विश्वपालक हैं । आपकी वन्दना करता हूँ ॥ १५ ॥

हे सरलधर्म के स्थापक तथा सकल अधर्म नाशकारी ! हे स-
 मस्त असुरों के विनाशक ! हे महाविष्णु ! आपके श्रीचरण में नम-
 स्कार है ॥ १६ ॥

हे भक्तचित्त विनोदनार्थ विविध माधुर्यमय रूप धारणकारी !
 हे वास्य सत्य-वात्सल्य मधुर रस के आस्वादक ! आप की लीला
 अनन्त तथा नाम भी अनन्त हैं । आपको नमस्कार है ॥ १७ ॥

(पञ्चम नमस्कार)

अब चौदह मन्वन्तरावतार तथा लीलावतार रूप से स्तव करते
 हैं ।—हे सनत्कुमार-सनातन-सनक-सनन्दन स्वरूप ! हे नारदरूप !
 हे वराह-यज्ञ-कपिल स्वरूप ! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥ १८ ॥

हे दत्तात्रेय ! आपको नमस्कार है । हे नर नारायण ! आपका
 भजन करता हूँ । हे हयग्रीव ! हे हंस ! हे ध्रुवप्रिय ! आपके लिये
 नमस्कार है ॥ १९ ॥

पृथुं त्वामृगं चैव वन्दे स्वायंभुवेऽन्तरे ।

द्वितीये विभुनामानं तृतीये सत्यसेनकम् ॥ २० ॥

चतुर्थे श्रीहरिं वन्दे वैकुण्ठं पञ्चमे तथा ।

पष्ठेऽजितं महामीनं शेषं च धरणीधरम् ॥ २१ ॥

श्रीनृसिंहं च कूर्मं च सयन्वन्तरिमोहिनीम् ।

सप्तमे वामनं वन्दे नमः परशुराम ते ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्र हे व्यास नमस्ते श्रीहलायुध ।

हे बुद्ध कल्किन् मां पाहि प्रपन्नाशनिपञ्जर ॥ २३ ॥ नमः ६॥

अष्टमे सार्वभौमस्त्वमृषभो नवमे भवान् ।

विश्वकसेनश्च दशमे धर्मसेतुस्ततःपरम् ॥ २४ ॥

हे पृथु ! तथा हे ऋषभ ! आपकी वन्दना करता हूँ । ये बारह स्वरूप स्वायम्भुष मन्वन्तर में अवतीर्ण हुए हैं । द्वितीय मन्वन्तर में अर्थात् स्वरोचिष में विभु, तृतीय औत्तमीय में सत्यसेन, चतुर्थ तामसीयमें हरि, पञ्चम रैवतीय में वैकुण्ठ जी हैं । इन सबकी वन्दना करता हूँ । पष्ठ चालुगीय में अजित, महामीन, शेष धरणीधर, श्री नृसिंह, कूर्म, धन्वन्तरि के साथ मोहिनी जी हैं—इन सबकी वन्दना करता हूँ । सप्तम इस द्रैवस्वत मन्वन्तर में वामन हैं, उनकी वन्दना करता हूँ । हे परशुराम ! आपको नमस्कार है । हे श्रीरामचन्द्र ! हे व्यास ! हे श्रीहलायुध ! आप सबको नमस्कार है । हे बुद्ध ! हे शरणागत जन के लिये वज्र की तरह सुदृढ़ शरीरधारी कल्कि ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २० ॥

(पष्ठ नमस्कार)

अष्टम सावर्णीय में आप सार्वभौम, नवम दक्षसावर्णीय में ऋषभ, दशम प्रद्युम्नसावर्णीय में विश्वकसेन, एकादश धर्मसावर्णीय में धर्मसेतु, द्वादश रुद्रसावर्णीय में मुक्षामा, त्रयोदश देवसावर्णीय में योगेश्वर तथा चतुर्दश इन्द्रसावर्णीय में धृतराज्य हैं । इम प्रकार मत्तारंभ कदावातार तथा चाँदह मन्वन्तरपरतार हैं । भव भिन कर

सुधामा द्वादशे भावी योगेशस्तु त्रयोदशे ।
चतुर्दशे बृहद्भानुः सप्तत्रिंशत्तनो जय ॥ २५ ॥
शुक्लः सत्ययुगे यः स्याद्रक्तस्त्रेतायुगे तथा ।
द्वापरे तु हरिद्वर्णः कलौ कृष्णो महाप्रभो ॥ २६ ॥
तं त्वां श्रीकृष्ण ! वन्देऽहं जगदेकदयानिधे ।
निजभक्तविनोदार्थलीलानन्तावतारकृत् ॥ २७ ॥ नमः ७ ॥
प्रल्हादसंल्हादक भक्तवत्सल भक्तिप्रभावप्रकटिन् नृसिंह हे ।
स्वद्वेष्टवत्तःस्थलपाटन प्रभो शिष्टेष्टमूर्त्तं जय दुष्टभीषण ॥ २८ ॥
अन्तःकृपातिमृदुल बाहिराटोपसुन्दर ।
प्रल्हादाङ्गावलेहोरक स्फुटद्ब्रह्माण्डगर्जित ॥ २९ ॥ नमः ८ ॥

३७ अवतार हुए हैं । हे इन सब स्वरूपों में प्रकटशील श्रीप्रभु ! आप की जय हो । जो सत्ययुग में शुक्लवर्ण, त्रेता में रक्त तथा द्वापर में हरिद्वर्ण हैं, वे श्रीकृष्ण कलियुग में महाप्रभु हैं । हे जगत् में एकमात्र दयानिधान श्रीकृष्ण ! आपकी वन्दना करता हूँ । आप अपने भक्तों के विनोदार्थ लीला के अनुसार अनन्त अवतारों के प्राकट्यकारी हैं ॥ २४-२७ ॥ (सप्तम नमस्कार)

अब श्रीनृसिंह तथा श्रीरामचन्द्र इन परावस्थ स्वरूप दोनों का स्तव करते हैं—हे प्रल्हादके सम्यक् आनन्ददायक ! हे भक्तवत्सल ! हे भक्तिप्रभाव के द्वारा प्रकटनशील श्रीनृसिंह ! हे निज-शत्रु हिरण्यकशिपु के वत्तःस्थल-विदीर्णकारी ! हे प्रभु ! आप शिष्टों का अभीष्ट मूर्त्तिस्वरूप और दुष्टों के भयप्रद हैं । आपकी जय हो । आप अन्तर में करुणाधिक्य से अत्यन्त स्निग्ध तथा बाहिर में आटोप गर्जना के द्वारा परम सुन्दर हैं । प्रल्हादजी के अंग अवलेहना करने में आप उत्कण्ठित हैं । आपके गर्जन में ब्रह्माण्ड क्षिन्न-भिन्न सा हुआ था । (अष्टम नमस्कार)

॥ २८-२९ ॥

सीतापते दाशरथे रघूद्वह श्रीराम हे कोशलजासुताब्जदृक् ।

श्रीलक्ष्मणज्येष्ठ हनुमदीश्वर सुग्रीवबन्धो भरताम्रज प्रभो ॥ ३० ॥

हे दण्डकारण्यचरार्घ्यशील हे कोदण्डमाणे स्वरूपणांतक ।

वद्धाब्धिसेतोऽयि विभीषणाश्रित लंकेशघातिन् जय कोशलेन्द्र ॥ ३१ ॥

नमः ६ ॥

श्रीकृष्ण जीया मथुरावतीर्ण स्वप्रेमदानैकनितान्तकृत्य ।

नानासुमाधुर्यमहानिधान संन्यस्तितैश्वर्यकृपामहत्त्व ॥ ३२ ॥

। परीक्षितपृष्ठचरित सर्वसेन्यक्यामृत ।

कृतपाण्डवनिस्तार-परीक्षितेहगोपन ॥ ३३ ॥

हे सीतापति ! हे दाशरथि ! हे रघुकुल-मुकुट ! श्रीरामचन्द्र ! हे
कोशलानन्दन ! हे पद्मपलाशलोचन ! हे लक्ष्मणज्येष्ठ ! हे हनुमानके
प्रभु ! हे सुग्रीवबान्धव ! हे भरताम्रज ! हे प्रभु ! हे दण्डकारण्यवि-
हारी ! हे उत्तम चरित ! हे धनुर्वाण धारिन् ! हे स्वरूपणाशक !
हे समुद्रबन्धनकारी ! हे विभीषण के आश्रय अथवा विभीषण के
शरण ! हे रावण विवातक ! हे कोशलेन्द्र ! आपकी जय हो ॥ ३०-३१ ॥
(नम्रम नमस्कार)

अब समस्त स्वांशावतार का स्तव कर पश्चात् स्वयं भगवान्
श्रीकृष्ण का स्तव करते हैं ।—हे श्रीकृष्ण ! हे मथुरा में अवतीर्ण !
आप सर्वोत्कर्षरूप से विराजमान हैं । निज प्रेमप्रदान ही आप का
परम कर्तव्य है । आप नाना प्रकार से सुमाधुर्य के निधान हैं । आप
के ऐश्वर्य कृपा-महत्तादिक मथुरा के अवतरण में सुन्दररूप से अभि-
व्यक्त हो रहा है ॥ ३२ ॥

अब श्रीमद् भागवत् दशमस्कन्ध के लीलासूत्र का वर्णन करते
हैं—राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव के लिये आपकी चरित्रकथा का
प्रश्न किया है । आपका चरित्रामृत सत्रस मेघनीय है । भीष्मा, द्रो-
णादि महायोद्धाओं के साथ दुर्द्धर्ष संपाद से आपने ही पाण्डवों

वहिरन्तःस्थिताऽसाधुसाधुदुःखसुखप्रद ।
 शुभ्र पाकृष्टराजान्तर्नानाशंकानुपृष्ट हे ॥ ३४ ॥
 त्यक्तोदात्तनृपप्राण शुकोद्गीर्णकथामृत ।
 नृपत्याजासुरानीकभारार्त्तचित्तिरोदक ॥ ३५ ॥
 धरार्त्तनाददुग्धाद्विगतनह्नाद्युपस्थित ।
 ब्रह्माभ्यानश्रुतादेशकथाप्यायितभूसुर ॥ ३६ ॥ नमः १० ॥
 शूरसेनमहाराजधानीश्रीमथुराप्रिय ।
 देवकीयसुदेवैकविधाहोत्सवकारण ॥ ३७ ॥

का मृत्युमुर से निस्तार किया है । आप ने ही अश्वत्थामा के द्वारा
 चलाये हुए नह्नास्त्र से मातृगर्भ में दग्ध परीक्षित की रक्षा की थी ।
 वहिर्दृष्टि वाले असाधुओं के सम्बन्ध में आप कालरूप से दुःखदान
 तथा अन्तर्दृष्टि वाले साधुओं को अन्तर्प्यामी स्वरूप से सुख प्रदान
 करते हैं । आपने ही निजवृत्तान्त सुनाने की इच्छा से परीक्षित महा
 राज के चित्त का आकर्षण किया और उनके चित्त में नाना प्रकार
 की आशङ्का उठाकर उसका समाधान रूपा निज कथा की जिहासा
 की थी । अन्न जल परित्याग करी राजा के प्राणरूप से आप ही
 विराजमान हुए तथा शुक्रदेव के मुख से निज कथामृत का पान करा
 कर कृतार्थ किया था । आपने ही नृपति छल में दुष्ट असुर सेनाओं
 के भार से प्रपीडिता पृथिवी का रोदन करवाया तथा पृथिवी के
 आर्त्तनाद से क्षीरोद-समुद्र के तट पर समागत ब्रह्मादिदेवगण के
 सान्निध्य में आप ही उपस्थित हुए । ब्रह्मा के ध्यान में श्रुत निज प्र-
 त्यादेश वार्त्ता का प्रचार कराकर आपने देवगण के सम्यक् सन्तोष
 का विधान किया था ॥ ३३ । ३६ ॥ (दशम नमस्कार)

अत्र भोजेन्द्रबन्धनागार में अवतीर्ण होने का प्रसंग उठाते हैं—
 यदुराज शूरसेन का महाराजधानी श्रीमथुरा आपको परमप्रिय है अ-

वियद्वाग्वर्द्धितात्ताश्चपाशकंसातिदुर्नय ।

वसुदेववचोयुक्तिदेवकीप्राणरक्षक ॥ ३८ ॥

सत्यवाक् शौरिकंसाप्रनीतपुत्रविमोचन ।

देवर्षिकथितोदन्तकंसज्ञातेहिताव माम् ॥ ३९ ॥

कंसशृङ्खलितानेरु-वसुदेवादिबान्धव ।

देवकीजातपङ्गुर्भतातर्कसारिघातन ॥ ४० ॥ नमः ११ ॥

❀ इतिदशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ❀

कंसासुरबलोद्विग्नस्वयादवकुलार्त्तिवित् ।

देवकीसप्तमभ्रणधामन्मायानियोजक ॥ ४१ ॥

थवा आप मथुरा के परमप्रिय है । देवकी वसुदेव दोनों का विवा-
होत्सव का मुख्य कारण आप ही हैं । बरवधू के गृह गमन के समय
आकाशवाणी के द्वारा अरवरज्जुधारी कंस की दुर्नीति को अधिक
परिमाण से आपने ही बढ़ाया था और देवकी के प्राणनाश के लिये
उग्रत दुष्ट कंस के अत्याचार से वसुदेव के द्वारा युक्ति नैपुण्य से उस
की स्तुति कराकर देवकी की प्राणरक्षा आपने ही की थी । सत्यपरा-
यण वसुदेव के द्वारा कंस के सम्मुख में लाया हुआ प्रथम सन्तान
का विमोचन आपने करवाया पश्चात् देवर्षि नारद जी के द्वारा आप
का वृत्तान्त सुनाकर आपके वध के लिये देवकी पुत्रों की हत्या करना
युक्तियुक्त है-इस प्रकार कंस को उत्तेजित आपने ही कराया । आप
ने ही कंस के द्वारा वसुदेव देवकी प्रभृति अनेक बान्धवों को शृं-
खला के द्वारा बँधवा कर देवकी गर्भजात अप्रज छै जनों का वध
कराया था क्योंकि उससे दुष्टनाशरूप तथा साधु संरक्षण स्वरूप पृ-
थिवी-सरत्ता का निगूढ अभिप्राय सिद्ध हो सक्ता है । हे कृष्ण !
आपने सब कुछ किया है, आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३७-४० ॥

(एकादश नमस्कार)

देवकीपुत्रतावाप्तिद्वारोत्साहितमाय हे ।
 रोहिणीप्रापितस्वांश रौहियोयप्रियाऽव माम् ॥ ४२ ॥
 वसुदेवोल्लसच्छक्ते देवस्यष्टमगर्भग ।
 स्वसन्निहीलसज्ज्योतिः कसत्रासविपादकृत् ॥ ४३ ॥
 सदा कसमनोवर्त्तिन् ब्रह्मरुद्राद्यभिप्लुत ।
 सत्यात्मक जगन्नाथ शुद्धसात्त्विकरूपभृत् ॥ ४४ ॥

कंस के प्रलम्ब, वक्र, चाणूरादि सैन्यगण के द्वारा उद्विग्न निज यादवदश की आर्त्ति को जानने वाले आप ही हैं । आपने ही तो देवकी के सप्तम गर्भ में निज शेष नामक विग्रह का संस्थापन कर रोहिणी के गर्भ में सन्निवेश करने के लिये योगमाया को नियोजित किया है ॥ ४१ ॥

स्वयं आप देवकी के पुत्ररूप में जन्म धारण करेंगे—ऐसा कह कर योगमाया को उत्साहित किया था । इसके अनन्तर आपने योगमाया के द्वारा रोहिणीगर्भ में निजाश अनन्तजी का स्थापन करवाया । हे वलदेवप्रिय ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४२ ॥

आप वसुदेव के मन में अपनी शक्ति को निहित कर प्रकाशमान हुए हैं तथा उनके हृदय से देवकी के अष्टमगर्भ में विराजमान हुए हैं । आपने निज जननी देवकी के प्रकाशमान तेज के द्वारा कंस का भय और विपाद का उत्पादन करवाया ॥ ४३ ॥

फलतः शयन भोजन गमनादि सर्वावस्था में आपने सर्वथा कंस के मनोमन्दिर में निवास किया है । उस समय ब्रह्मा रुद्रादि देवतागण ने आपकी सर्व प्रकार से स्तुति की थी । वह स्तुति इस प्रकार की थी । हे सत्यव्रत ! सत्यपर ! इत्यादि रूप से सर्वथा सत्यात्मक ! सकल सृष्टि के कारण के लिये आप चौंझ भुवन के नाथ अर्थात् सर्वेश्वर हैं । आप शुद्धसात्त्विक सज्जन मुख्तारी मायालेख से रहित सुन्दर रूप को धारण करते हैं ॥ ४४ ॥

भक्तैकलभ्यसर्वस्व सर्वसर्वार्थकृद्रुपः ।

रूपनामाश्रिताविष्ट जन्ममात्रधरात्तिष्ठत् ॥ ४५ ॥

स्वभू भूषणपादाब्ज विनोदैकार्यजात हे !

जय भूभारहरण देवासवासितमावृक ॥ ४६ ॥ नमः १२ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॐ

भाद्रकृष्णाष्टमीजात प्राजापत्यर्चसम्भवः ।

महीमङ्गल-विस्तरिन् साधुचित्तप्रसादक ॥ ४७ ॥

केवलमात्र भक्ताण ही आपके पादाभय रूप महान् धन के अधिकारी हैं । आपके श्रीविग्रह चारवर्ण, चार-आश्रम प्रभृति के वेद-तपस्या-योग-समाधि आदि के द्वारा स्तुत्य सर्व्वपुरुषार्थ प्रदानकारी है । यद्यपि मन वाग्न्य के अगोचर होने के हेतु आपके नाम-रूप-गुण-जन्म-कर्मोदि निरूपण के विषय नहीं हैं तो भी भक्तों की उपासना के समय साक्षात्कार होने के लिये नामरूपादि का आश्रय कर उसमें आविष्ट रहने के कारण आप रूपनामाश्रिताविष्ट हैं । अतः आपके प्राकट्यमात्र से ही पृथिवी का आर्त्तिभार हरण हो जाता है ॥ ४५ ॥

आपके चरणकमल स्वर्ग-मर्त्य के भूषण स्वरूप हैं आप का आविर्भाव केवल धरा का भारहरणार्थ नहीं है परन्तु उसका मुख्य प्रयोजन क्रीडाविनोद है । मत्स्य-कूर्मादि विविध अवतारों के प्राकट्य के द्वारा त्रिभुवन का पालन करने के कारण आप भूभार हरणकारी हैं । आपकी जय हो । “हे मातः भाम्यवश आपके उदर में पुरुषोत्तम का प्रवेश दे” इस प्रकार के वाग्न्य के द्वारा आप देवतागण से निज माता का आशवासन देने वाले हैं । आपको नमस्कार है । ॥ ४६ ॥

(द्वादश नमस्कार)

अथ आविर्भाव होने का समय कहते हैं । भाद्रमास की कृष्णा-

महर्षिमानसोल्लास सन्तोषितमुरप्रज ।
 निशीथ-समयोद्भूत वसुदेवप्रियात्मज ॥ ४८ ॥
 देवकीगर्भसद्रत्न बलमद्रपियानुज ।
 गदाप्रज प्रसीदाशु सुभद्रापूर्वजाऽव माम् ॥ ४९ ॥
 आश्चर्य्यबाल मां पाहि दिव्यरूप-प्रदर्शक ।
 कारागारान्वकारघ्न सूतिकागृहभूषण ॥ ५० ॥ नमः १३ ॥
 वसुदेवस्तुतं साक्षाददृश्यात्म-प्रदर्शकं ।
 सत्प्रविष्टाप्रविष्टं त्यां वन्दे कारणकारणम् ॥ ५१ ॥

ष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र में आपका प्रादुर्भाव है। उससे पृथिवी का मंगल विस्तार तथा साधुओं का चित्त प्रसन्न हुआ है ॥ ४७ ॥

हे महर्षियों के मानस-उल्लास कारी तथा देवताओं का सन्तोष करने वाले ! आप निशीथ में वसुदेव पत्नी देवकी के गर्भ से प्रकट हुए हैं ॥ ४८ ॥

हे देवकी के उदरस्थानि के अति उत्कृष्ट इन्द्रनीलमणि ! हे बल-देव के प्रिय अनुज ! हे गदाप्रज ! आप मेरे लिये प्रसन्न होवें। हे सुभद्रा के पूर्वज ! हमें अपनी लीला की स्फूर्ति कराकर हमारी रक्षा कीजिये ॥ ४९ ॥

जन्म के समय पद्मपलाशलोचन आप शंख चक्रादियुक्त भुज-च-तुष्टय तथा श्री वरस-कौस्तुभादि धारण करके आश्चर्य्यान्वित बालक रूप से शोभित हुए थे और महामूल्य वैदूर्य्य-किरीट तथा कुण्ड-लादि के द्वारा शोभित होकर वसुदेव को दिव्य रूप का दर्शन कराया था। आपने अपने तेज से कारागार के अन्धकार का नाश किया तथा सूतिकागृह में भूषण रूप से विराजमान रहे। अब मेरी रक्षा कीजिये (त्रयोदश नमस्कार) ॥ ५० ॥

ऐश्वर्य्य दर्शन से पुत्रबुद्धि के अपगत होने पर वसुदेव के द्वारा

सिद्धाकर्तृत्वकर्तृत्वं जगत्क्षेमकरोदयम् ।

दैत्यमुक्तिदक्षरुण्य स्वजनप्रेमवर्द्धनम् ॥ ५० ॥

देवकीनयनानन्द जय भीतप्रसूस्तुत ।

निर्गुणाध्यात्मदीपातिलयकारक कालसृक् ॥ ५३ ॥

स्वपादाश्रित-मृत्युघ्न मासदग्दृष्टययोग्य हे ।

लोकोपहास-भीताभ्यावृतदिव्याङ्ग-सवृत्ते ॥ ५४ ॥ नमः १४॥

आप स्तुत हुए । आप प्रत्यक्ष रूप से अदृश्य हैं अर्थात् केवल अनु-
भवासिद्ध स्वरूप के प्रदर्शक हैं । “ब्रह्मा ने जगत् की सृष्टि कर उसमें
अन्त प्रवेश किया” इस श्रुतिप्रमाणजल से निज प्रकृति के द्वारा सृष्ट
सत् शब्द वाच्य विश्व के अन्तर में प्रविष्ट होने पर भी आप अप्र-
विष्ट अर्थात् निनिष्ठ हैं । भावार्थ यह है कि आप उसमें सद् रूप
से प्रविष्ट की भाँति प्रतीयमान होते हैं । आप जग के कारण ब्रह्मा
के भी आदिकारण हैं । आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ५१ ॥

आप निष्क्रिय होने के कारण अकर्ता अथवा ईश्वर होने के
कारण कर्ता हैं । इस विरुद्ध धर्म का समावेश आप में ही है ।
साधुओं की रक्षा के लिये “नाममात्र से राजा तथा कार्य में असुर”
उन समूह की हत्या कर आप जगत् के मंगल के लिये आविर्भूत होते
हैं आप दैत्यों का संहार करनेपर भी उनको मुक्ति प्रदान करने के का-
रण कारुण्य का प्रकाश करते हैं । हे स्वजन प्रीतिवर्द्धक ! आपकी
वन्दना करता हूँ ॥ ५२ ॥

अब देवकी स्तुति का वर्णन करते हैं ।—हे देवकी के नयना-
नन्द ! आसकी जय हो । कस से भयभीत जननी देवकी की पुत्रबुद्धि
समुचित हो जान पर उसने आपका स्तव किया है । हे गुणातीत !
हे निर्विशेष ! हे बुद्ध्यादिक इन्द्रिय समूह के प्रकाशक ! आप म-
हान् प्रलयकारी तथा प्रलयकारी काल के भी सृष्टिकर्ता हैं ॥ ५३ ॥

आप निनचरणाश्रित भूत्या के मृत्युहारी तथा मासमय प्राकृत

पितृप्राग्जन्मकथक स्पदत्तचरयन्त्रित ।
महाराधनसन्तोष त्रिजन्मात्मजतागत ॥ ५५ ॥
महानन्दप्रसूतात लीलामानुपचालक ।
नराकृति परब्रह्मन् प्रकृष्टाभार सुन्दर ॥ ५६ ॥
जनकोपायनिर्देष्ट र्यशोदाजातमाय हे ।
शायितद्वा स्थपौरादे मोहितागाररक्षक ॥ ५७ ॥

चलुः से अदृश्य हैं । “प्रलयागसान में निजदेह में समग्र विश्व ब्रह्माण्ड के समावेशकारी आप मेरे उदर जात हैं”—इस लोकापनाद से भयभीता देवकी के द्वारा प्रार्थित होकर आपने शंख-चक्रादि अलौकिक रूप का उपसंहार किया । आपको नमस्कार है ॥ ५४ ॥
(चतुर्दश नमस्कार)

आपने माता पिता देवकी वसुदेव को पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनाया तथा निजदत्तधर में वशीभूत रहे । वर्षा, वायु, धूप इत्यादि महान्कष्ट के सहन रूप आराधना में प्रसन्न होकर उनके तीन जन्म में पृथिनगर्भ-वामन-तथा वासुदेव रूप से पुत्रत्व को अ गीकार किया ॥ ५५ ॥

पिता माता को पूर्व जन्मों का स्मरण कराकर महान् आनन्दित उनके सम्मुख फिर लीला मनुष्य बालक रूप में अवस्थान हुए । इससे आप सर्वदा प्राकृत बालक सदृश नहीं हैं क्योंकि आप नराकृति होनेपर भी परब्रह्म हैं । आपका सर्व मनोहर आकार है । आप अभिनव रूप लाञ्छन के निधान हैं ॥ ५६ ॥

“यदि तुम कंस से भय करते हो तो मुझसे गोकुल में ले चलो”—इस प्रकार पिता वसुदेव को गोकुल ले जाने का निर्देश किया है । आपने यशोदा गर्भ में निजाश माया को प्रादुर्भूत कराया है । उस समय स्पन्दगमन के लिये द्वारपालों को तथा पुरवा-

स्वशक्तनुद्घाटिताशेषकपाटपितृवाहक ।
 शेषोरगफणछत्रयमुनादत्तसत्पथ ॥ ५८ ॥
 ब्रजमूर्त्तमहाभाग्ययशोदात्पशायित ।
 निद्रामाहितनन्दादि यशोदाऽविदितेहित ॥ ५९ ॥ नमः १५ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॐ
 कंसघातितदुर्गात्वा वन्दे दुर्गोदितोद्भवम् ।
 कसविस्मापकतात-मातृवन्धविमोचकम् ॥ ६० ॥
 समयस्मृतिसशुद्धचित्तकस-विवेकदम् ।
 कसात्मज्ञानसंश्लाघि-पितृमातृक्षमाप्रदम् ॥ ६१ ॥

सियों को निद्राभिभूत कराकर सृत्तिकागृह के रक्तकों को भी मोहित किया है ॥ ५७ ॥

अपनी शक्ति के प्राकट्य के द्वारा कपाट-समूह का उन्मोचन किया । पिता को वाहक बनाकर गोकुल के लिये यात्रा की, उस समय अनन्तदेव के फणसमूह ने छत्र होकर वर्षा का निवारण किया है । अगाधजलमयी-भयकर आनर्त्तन से युक्त श्रीयमुना ने आपके पिता को गमनोपयांगी मार्ग का प्रदान किया ॥ ५८ ॥

हे ब्रज के मूर्त्तिमान् महान् भाग्यस्वरूप ! आप वसुदेव के द्वारा यशोदा की शर्ण्या में शयन करने लगे । निद्रा के द्वारा आपने नन्दादि गोकुलवासियों को मोहित किया । उस समय यशोदा जी वसुदेव के द्वारा तुन्दारे आनयन कार्य का चिन्ह कुछ नहीं समझ सकी । हे कृष्ण ! आप को नमस्कार है ॥ ५९ ॥ (पञ्चदश नमस्कार)

आपके सम्वन्ध से कस के द्वारा दुर्गा को मारने के लिये पत्थर के ऊपर आघात करने पर दुर्गा ने उसके हाथ से उत्पत्ति होकर आप के आभिर्भाव की कथा कही थी । “पूर्वश्रुत आकाशनाली किस प्रकार मिथ्या हुई”—इस भावना से आपने कंस को विस्मित किया तथा वसुदेव-देवता के वन्धन विमोचन का कारण हुई ॥ ६० ॥

दुर्मन्त्रिगण-यागजालकंसदुर्मनवद्धनम् ।

सदतिक्रमदुर्मन्त्र-क्षयितासुरजीवितम् ॥ ६७ ॥ नमः १६ ॥

ॐ इतिदशमस्कन्धे चतुर्योऽध्याय ॐ

प्रदत्तपूर्वस्वपदा जसौहृद-प्रदान-दीप्तोचितदेशसङ्गत ।

स्वसेवक-ब्रह्मसुराधिकोत्सव प्रेमाकर क्रीडनकृन्नमोऽस्तु ते ॥ ६३ ॥

नन्दनन्दन सञ्ज्ञात-चातकर्ममहोत्सव ।

नानादानौघकृतात् श्रीमद्गोकुलमङ्गल ॥ ६४ ॥

कृतालङ्कारगोपाल-गोपीगणकृतोत्सव ।

गोपीप्रेममुदाशीर्माक् ब्रजगोरसकीर्ण हे ॥ ६५ ॥

भय के साथ अपने शिशुहत्या रूप अकर्म का स्मरण करा कर कस के चित्त में विवेक का उत्पादन किया । आपने पिता माता के द्वारा कस के आत्मज्ञान की प्रशंसा कराकर क्षमादान कराया ॥ ६१ ॥

दुष्ट मन्त्रिगण के पाक्यजाल से फिर कस की दुर्मति की आपने वृद्धि की जिससे महत् अतिक्रमणात्मक असत् परामर्श के फल-रूप असुरों का आयु क्षय होने लगा । हे त्राविध कृष्ण ! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ६२ ॥ (पौडश नमस्कार)

अब गोकुललीला का वर्णन करते हैं । पहले वसुदेव के द्वारा बाहित होकर जहाँ निनपादपद्म का प्रदान किया तथा जहाँ अवधि-रूप सुखदान करने के लिये स्वयं दीक्षित हैं अर्थात् सुख दान रूप व्रत का प्रहण किया है, उस लीला के उपयोगी गोकुल में सम्यक् रूप से आपका अवस्थान है । हे निजसेवक समाज को ब्रह्मानन्द से अत्यन्त उत्सन्नदायी प्रेम धन का सम्यक् दान करी, हे लीलाविनोदी ! आपको नमस्कार है ॥ ६३ ॥

हे नन्दनन्दन ! आपके जन्म के समय जात कर्मादिरूप महान् उत्सव हुआ है । आपके पिता नन्द ने आपके उत्सर्ग में अनेक वस्तु-ओं का दान किया है । आप गोकुल के मङ्गलरूप हैं ॥ ६४ ॥

नन्दव्रजजनानन्दिन् नन्दसन्मानितव्रज ।
 दत्तव्रजमहाभूते श्रीयशोदास्तनन्धय ॥ ६६ ॥
 प्राप्तपुत्र-महारत्न-रक्षा-व्याकुलतात हे ।
 करदानार्थमथुरागतनन्दगृहावित ॥ ६७ ॥
 वसुदेव-शुभप्रश्न-समानन्दितनन्द मे ।
 प्रसीद नन्दसद्वाक्यवसुदेवातिनन्दक ॥ ६८ ॥ नमः १७ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॐ
 वसुदेवोदितोत्पात-राङ्गानन्दशुभाश्रित ।
 व्रजमोहन-सद्वेष-विपस्तन-वकीर्तित ॥ ६९ ॥

उस समय गोप गोपीगण विविध अलङ्कारों से भूषित होकर
 महान् उत्सव करने लगे । गोपियों प्रेम के अतिशय से आनन्द के
 साथ विविध आशिर्वाद दे रही थीं । हे व्रजगोरस से परिव्याप्त ! ॥ ६५ ॥

हे नन्दव्रजजन के आनन्ददायिन् ! आपने नन्द के द्वारा व्रज का
 गौरव बढ़ाया तथा व्रज में महावैभव का विकास किया । आप ने
 यशोदा का स्तन-पान किया है ॥ ६६ ॥

। आपके पिता नन्द पुत्ररूप महारत्न आपको प्राप्त होकर रक्षा के
 लिये निरन्तर व्याकुल हुए । कर्म को वार्षिककर देने के लिये मथुरा
 गमनकारी व्रजराज के भवन में आप स्वयं रक्षित हुए हैं ॥ ६७ ॥

मथुरा में मङ्गलमय शुभ प्रश्नों के द्वारा वसुदेव ने आपके पिता
 नन्द का आनन्द-विधान किया है । नन्द जी भी सद्वाक्यों के द्वारा
 वसुदेव के आनन्द प्रदानकारी हुए । हे श्रीकृष्ण ! आप प्रसन्न हों ।
 ॥ ६८ ॥

(सप्तदश नमस्कार)

“गोकुल में उत्पात की आशङ्का है अतः यहाँ अधिक दिवस र-
 हना उचित नहीं है”—इस प्रकार वसुदेव से सूचित होकर नन्दमहा-
 राज ने व्रज में तुम्हारे मङ्गल के लिये प्रार्थना की थी । हे मनोश

लज्जामीलितनेत्राब्ज पूतनाङ्गाधिरोपित ।
 वकीप्राणपयःपायिन् पूतनास्तन-पीडन ॥ ७० ॥
 पूतनाक्रोशजनक पूतनोप्राणशोषण ।
 पटक्रोशोव्यापिभीदायि-पूतनादेशपातन ॥ ७१ ॥
 नानारक्षाविधानज्ञ-गोपस्त्रीकृतरक्षण ।
 विन्यस्तरक्षागोधूले गोमूत्रशङ्खदाप्लुत ॥ ७२ ॥
 गोपिकाविहिताजादि-श्रीजन्यासाभिमन्त्रित ।
 बद्धगानवकीदेह-सौरभ्यव्यापितक्षिते ॥ ७३ ॥
 पूतनामोचन द्वेष्टृराक्षसीसद्गतिप्रद ।
 नन्दाघात-शिरोमध्य जय विस्मापितव्रज ॥ ७४ ॥ नमः १॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ❀

हास्य-कटाक्ष-विशेषादि के द्वारा ब्रजवासियों के मनोमोहन ! विपस्त-
 नविशिष्टा सट्टेपा पूतना के द्वारा आप दृष्ट हुए हैं ॥ ६६ ॥

आपने उस समय कुछ लज्जा से नयनपद्म का निमीलन कर पू-
 तना के क्रोड़देश में आरोहण किया है और प्राण के साथ उसका
 स्तनपान कर कर युगल से उसके स्तनयुगल का गाढ़निपीडन किया ॥ ७० ॥

उस समय पूतना ने “छोड़ दो छोड़ दो” इस प्रकार चीत्कार
 किया था । परन्तु आपने उसका प्राणशोषण किया । और वह छै
 कोस तक विस्तृत भयानक शरीर धारण कर गिर गयी ॥ ७१ ॥

तत्परचात् गोपीगण ने गोपुच्छ भ्रमणादि के द्वारा नाना प्रकार
 रक्षाबन्धन किया था । गोरजः के द्वारा रक्षाबन्धन होने के पश्चात्
 गोमूत्र गोमयादि के द्वारा आपका शरीर व्याप्त किया गया ॥ ७२ ॥

गोपिकाओं ने श्रीजन्यासादिक मन्त्र उच्चारण कर विविध प्र-
 कार से रक्षाबन्धन किया । वकी पूतना का शरीर दम्ब होने पर उस
 समय उसके सौरभ से पृथिवी सुगन्धित हो गयी ॥ ७३ ॥

औत्थानिकोत्सवाम्नाभिपिक्त सञ्जातनिद्रदृक् ।
 महोच्चशकटाव स्यमालपर्यङ्कशायित ॥ ७५ ॥
 अब्जनस्निग्धनयन पर्यायाङ्कुरित-स्मित ।
 लीलाक्षतरला लोक मुग्धापितपदागुले ॥ ७६ ॥
 जयोत्सव-प्रियासक्त-वागीस्तन्यार्थरोदन ।
 उत्क्षिप्तचरणाम्भोज हेऽनो-निपरिचितक ॥ ७७ ॥
 ब्रजानिर्णयचरित शकटामुरभञ्जन ।
 द्विजोदित-स्वस्त्ययन मन्त्रपूत-जलाप्लुत ॥ ७८ ॥ नमः १६ ॥
 यशोदोत्सङ्गपर्यङ्क लीलानिष्कृतगौरवम् ।
 मातृविस्मयकर्तार तृणवर्त्तापनाहितम् ॥ ७९ ॥

हे पूतना मोचनकारी ! हे जिघासु राक्षसी के सद्गतिदायक !
 नन्दमहाराज ने आपके भस्तक का आघात किया है । आपने इस
 प्रकार की लीलाओं से समग्र ब्रजमण्डल को विस्मय अत्यन्त किया ।
 आपकी जय हो ॥ ७४ ॥ (अष्टादश नमस्कार)

हे औत्थानिक उत्सव में माता के द्वारा अभिपिक्त ! हे निद्रानि-
 मीलित नयनारविन्द ! हे महान् शकट के अधोभाग में बालपर्यङ्क
 के ऊपर शयनप्राप्त ! हे अब्जन के द्वारा स्निग्ध नेत्रमाले ! हे लीला-
 परिपाटी के द्वारा मन्दस्मितकारी ! हे लीला के वश चञ्चल अवलो-
 कन वाले ! हे मुखारविन्द में चरणारविन्द की अगुलियों के अर्पण
 करी ! उत्सवक्रिया में आसक्तकारिणी माता के स्तन पानार्थ रोदन
 करने वाले ! हे चरणों को उत्क्षिप्त अर्थात् बार बार ऊपर उठाकर
 शकट के छिन्न-भिन्नकारी ! हे ब्रजनासिया के द्वारा अनिर्णय चरित
 वाले ! हे शकटामुरभञ्जन ! हे ब्राह्मणगण के द्वारा स्वस्त्ययन के स-
 हित मन्त्रपूत जल से परिब्याप्त ! आपकी जय हो ॥ ७५-७८ ॥

(उनविंश नमस्कार)

जननी-मार्गितगतिं तृणावर्त्तातिदुर्वहम् ।
 गलग्रहणनिश्चेष्ट-तृणावर्त्तनिपातनम् ॥ ८० ॥
 तृणीकृततृणावर्त्त रुदद्गोपाङ्गनेक्षितम् ।
 गोपीधात्र्यर्पितं वन्दे त्वा ब्रजानन्ददायकम् ॥ ८१ ॥ तमः ८० ॥
 यशोदास्तन्यमुद्रित यशोदामुखधीक्षक ।
 यशोदानन्दनाहं ते यशोदालालिताऽव माम् ॥ ८२ ॥
 जननीचुम्ब्यमानास्य-मध्यदर्शितविश्व मे ।
 प्रसीद परमाश्चर्य्यदर्शिनं विस्मृतमातृक ॥ ८३ ॥
 पूतनाद्रियधालोकि-मातृशङ्काशतप्रद ।
 स्वभावविविधाश्चर्य्यमयना तन्निरासक ॥ ८४ ॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ❀

यशोदा के क्रोडरूप पर्य्यक से सुलालित, लीला से गौरव के आविष्कारी, माता के विस्मयकारक, तृणावर्त्त के द्वारा आनाश में अपवाहित, जननी के द्वारा अन्येषण प्राप्त, तृणावर्त्त के दुर्वह, गलवेशधारण में प्रयत्नवान् तृणावर्त्त के निपातनकारी, तृणावर्त्त को द्विभ्रम्भिन्न करने वाले, रोदनकारिणी गोपाङ्गनाओं के द्वारा दर्शित, गोपियों के द्वारा माता के लिये अर्पित, ब्रज के आनन्द दाता, आपकी चन्दना करता हूँ ॥ ७६-८१ ॥ (विंशति नमस्कार)

हे यशोदा के स्तनपान से प्रसन्नता प्राप्त ! हे यशोदा के द्वारा दर्शितमुख ! हे यशोदानन्दन ! हे यशोदा के द्वारा लालित ! मेरी रक्षा कीजिये । आपकी माता ने आपका मुख चुम्बन किया, उस समय आपने अपने मुख में विश्व का दर्शन कराया । हे परमैश्वर्य्य को दिखाने वाले ! हे मातृविस्मृतिकारी ! पूतनादि के बध के हेतु माता के हृदय में शत शत शङ्का के उत्पादन करने वाले ! आश्चर्य्यमय स्वभाव के द्वारा उन सप्त शङ्काओं के निराकरणकारी ! मुझ पर प्रसन्न हों ॥ ८२-८४ ॥ (एकविंश नमस्कार)

गर्गवाकचातुरीदृष्ट-नन्दनीतरह स्थलम् ।

प्रशस्तनामकरण गर्गसुचितवैभवम् ॥ ८५ ॥

साधुरक्षाकर दुष्टमारक भक्तवत्सलम् ।

महानारायण चन्दे महानन्दप्रियदर्शनम् ॥ ८६ ॥ नम. २२ ॥

जय रिङ्गणलीलाढ्य जानुचक्रमणोत्सुक ।

घृष्टजानुकरद्वन्द्व मौग्ध्यलीलामनोहर ॥ ८७ ॥

किङ्किणी-नादसदृष्ट व्रनकर्दमविभ्रम ।

व्यालम्बितचूलिकारत्न ग्रीवायाग्रनखोज्ज्वल ॥ ८८ ॥

पङ्कजानुलेपरुचिर मासलोरुकटीतट ।

स्वमुत्प्रतिविम्बार्थिन् प्रतिविम्बजानुकारक ॥ ८९ ॥

अयत्तबलगुणायुक्ते स्मितलक्ष्यरदोद्गम ।

धात्रीकर-समालम्बिन् प्रस्फलन्निचित्रचक्रम ॥ ९० ॥ नम. २३ ॥

गर्ग जी के वचन चातुरी से दृष्ट नन्द के द्वारा रहः स्थान म नीत, कृष्ण वासुदेव इत्यादि नामकरणों से युक्त, गर्ग के द्वारा सूचितवैभवशाली, साधुरक्षाकारी, दुष्ट नाशक, भक्तवत्सल, महानारायण, नन्द के आनन्द यदाने वाले श्रीकृष्ण आपकी घन्दना करता हूँ ॥

॥ ८५-८६ ॥

(द्वाविंश नमस्कार)

हे रिङ्गणलीला से युक्त ! अर्थात् हस्तपादों से चलनरूप विनाश से पूर्ण !, हे जानुचक्रमण म व्यग्र !, हे जानु हस्तों को धरती म घिस कर चलने वाले !, हे मोहनकारिणी लालाओं से मनोहर !, हे किङ्किणी नाटों से सप्रसन्न !, हे व्रनकर्दम विलासकारी ! हे लम्बमान चूडारत्नधारी तथा गले म न्याग्रनख से उज्ज्वल !, हे श्री अग म पक्ष्मपत्र से रुचिर !, हे स्थूल उदर-कटि वाले !, हे निम मुग्न प्रतिविम्ब न्यात म इत्युक्त ! हे प्रतिविम्ब के अनुकरणकारी !, हे अव्यक्त मनाहर घालन वाले !, आप जन मन् मन्द हँसते थे तब आ

जयाङ्गनागणप्रेक्षालयलीलानुकारक ।
 आनिष्कृताल्पसामर्थ्य पादनिक्षेपसुन्दर ॥ ६१ ॥
 वत्सपुच्छसमारुष्ट वत्सपुच्छविकर्षण ।
 विस्मारितान्यव्यापार-गोपगोपीप्रमोदन ॥ ६२ ॥
 गृहकृत्यसमासक्त-मातृनैयम्यकारक ।
 ब्रह्मादिकाम्यलालित्य जगद्गारचर्यशैशन ॥ ६३ ॥ नम. २४ ॥
 प्रसीद बालगोपाल गोपीगणमुदायह ।
 अनुत्पन्नयस्याप्त चारुकौमारचापल ॥ ६४ ॥
 अकालवत्स-निर्मोक्तत्रज्याक्रोशमुस्मित ।
 नवनीतमहाचोर वानराहारदायक ॥ ६५ ॥

पके श्रीमुख में किञ्चित् दोंते का उद्गम होना वीर्य जाता था । हे धातु के कर धारण कर चलने वाले ! हे गिरते हुए मनोहर चलने वाले ! आपकी जय हो ॥ ६७-६० ॥ (त्रयोविंश नमस्कार)

हे अङ्गनागण के द्वारा दृष्ट ! हे बाल्यलीला अनुकरणकारी ! हे अल्प सामर्थ्य आनिष्कृतगारक ! हे चरण क्षप से सुन्दर ! हे गो-वत्सगण के पुच्छ खींचने वाले ! हे उनके पुच्छ धारणकारी ! हे अन्य सकल क्रिया-कलाप के विस्मारक ! हे गोप-गोपी प्रमोदकारी ! हे गृहकार्य में आसक्ता माता के न्यप्रकारक ! हे ब्रह्मादि देवता के वाञ्छनीय, लालित्य जगद्गारचर्य शैशन वाले ! आपकी जय हो ॥ ॥ ६१-६३ ॥ (चतुर्विंश नमस्कार)

हे बालगोपाल ! हे गोपियों के आनन्दवाहक ! हे निजानुरूप शिशु वयस्यो से युक्त ! हे मनोहर कौमार अवस्था से चपल ! हे बिना कारण असमय वत्सगण के मोचनकारी, हे ब्रजवासियों के आक्रोश से मुस्मित ! हे नवनीत के महान्चौर ! हे वन्द्यो को आहार फेंकने वाले ! हे हाथ से अप्राप्य शिम्काभाण्डों में पीठ व उरगल से आ-

पीठोलसलसोपान क्षीरभाण्ड-विभेदक ।

शिक्ष्यभाण्डसमाकर्षिन् ध्वान्तागारप्रवेशकृत् ॥ ६६ ॥

स्वाङ्गरत्नप्रदीपाढय गोपीधाष्टर्यातिवाङ्क ।

गोपीनातोक्तिभीष्माम्यन्नेत्र मातृ-प्रहर्षण ॥ ६७ ॥ नमः २५॥

भक्तोपालम्भनानन्द वाञ्छाभक्षितमृत्तिक ।

रामादिप्रोक्तमृद्वात्तं हितैष्यम्यातिभर्त्सित ॥ ६८ ॥

कृतकत्रासतोचात् मित्रान्तर्गूढविग्रह ।

यलादिवचनाक्षेपजर्जननी-प्रत्ययावह ॥ ६९ ॥

व्यात्तस्मल्पाननाब्जान्त मातृदर्शितविश्व हे ।

यशोदाभिहितैश्वर्यं जय स्वाच्छन्दममोहन ॥ १०० ॥

रोहणकारी !, हे दुग्धभाण्ड को फोड़ने वाले !, हे शिक्षाभाण्ड को स्वीचने वाले !, हे अन्वकार गृह में प्रवेशकारी !, हे निजागरत्न रूप प्रदीप से युक्त !, हे गोपियों के द्वारा निज धृष्टता धर्षण करने पर तुम सत्र ही चोर हो, मैं तो बड़े घर का लाला हूँ” इस प्रकार प्रतिपाद करने वाले !, गोपियों की निन्दा के भय से तथा माता के रोध होने के भय से नेत्र फिराकर माता को हँसाने वाले !, आप पसन्न हों ॥ ६४-६७ ॥ (पञ्चविंश नमस्कार)

हे निज भक्तों के प्रेम गर्भ तिरस्कार से आनन्दित ! हे मृत्तिका भक्षण में इच्छा रखने वाले ! आप के मृत्तिका भक्षण का वृत्तान्त सग्यादिक ने माता में कहा था । उस समय हितैरी माता ने आप को भर्त्सन किया । हे दृष्टिमरूप भयानुकरण से चञ्चल नेत्र वाले ! हे मित्र बालकों के मध्य में गुप्त विहारी ! हे रामादि के आक्षेप वचन के प्रतिपादी ! रामादिव मिथ्या कहने वाले हैं, मैं सच्चा हूँ-इस प्रकार के वचनों में जननी को विश्राम दिलाने वाले ! हे मुग्न कमल का स्वन्य व्यादन कर उम में माता के लिये विश्व विग्नाने वाले !

सवित्रीस्नेहसंश्लिष्ट यशोदा-स्नेहवर्द्धन ।

स्वभक्तब्रह्मसन्दत्तधराद्रोणवरार्थकृत् ॥ १०१ ॥ नमः २६ ॥

* इति दशमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः *

दधिनिर्मन्यनारम्भ-सवित्रीस्तन्यलोलुप ।

जननीगीतचरित दधिमन्यनदण्डधृक् ॥ १०२ ॥

मातृस्तन्यामृतावृत्त क्षीरोत्तारगतान्विक ।

मृदाकोप-प्ररूपोष्ठ दधिभाजनभञ्जन ॥ १०३ ॥

शिश्वहयङ्गचस्तेन नवनीतमहाशन ।

हयङ्गधीनरसिक नवनीतावकीर्णक ॥ १०४ ॥

नवनीतचिलिप्तांग किङ्किणीक्वणसूचित ।

नवनीतमहादातृपाश्रो चौर्यशङ्कित ॥ १०५ ॥

हे यशोदा को अपने ऐश्वर्य्य अनुभव करने वाले ! हे स्वेच्छाचरण से मोहन ! हे माता के स्नेह से व्याप्त ! हे यशोदा के स्नेह को बढ़ाने वाले, हे निज भक्त ब्रह्मा के द्वारा दिये हुए, धरा-द्रोण के लिये जो घर है, उसकी पूर्ति के लिये व्यग्र ! आप की जय हो ॥ ६८-१०१ ॥

(पङ्क्तिशनमस्कार)

हे दधि निर्मन्यन में नियुक्त जननी के स्तनपान में लुब्ध !, जननी ने तुम्हारी चरितावली का गान किया, तुमने बाल्यचापल से मन्यनदण्ड को धारण किया था । ॥ १०२ ॥

• माता के द्वारा स्तन्य प्रदान करने पर भी आप तृप्त नहीं हुए । माता चुली के उपरिस्थित दुग्ध के उछलने को देखकर उसके उत्तारण के लिये गयीं । उस समय मिथ्या क्रोध से तुम्हारा ओष्ठ कम्पायमान हुआ और तुमने दधिपात्र को तोड़ दिया ॥ १०३ ॥

हे शिक्क में स्थित सद्योत्पन्न नवनीत के चोर ! हे नवनीत भक्षण में अतिशय लोलुप ! आप नवनीत के रसिक हैं । आपने चारों ओर नवनीत का विकीरण किया है ॥ १०४ ॥

मातृभीधावनपर गोष्ठाङ्गनविनोदन । -

जननीश्रमविज्ञातर्दामोदर नमोऽस्तु ते ॥ १०६ ॥

दामाकल्पचलापाङ्ग गाढोलुखल-बन्धन । -

यशोदा-वत्सलानन्तदामबन्धनियन्त्रित ॥ १०७ ॥ नमः २७ ॥

✽ इति दशमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ✽

दृष्टाजुर्नतरुद्वन्द्व कुबेरसुतशपभित् ।

अपराधिसमुद्धारदयानारदगीतवित् ॥ १०८ ॥

तुम्हारे किंकिणीशब्द से माता ने तुमको जान लिया कि तुम कहाँ थे । उस समय तुमने नवनीत का स्रव्वांग में लेपन किया था । हे वन्द्यों को भी नवनीत वितरण करने वाले ! उस समय तुमने माता के भय से कपट-अश्रु का त्याग किया तथा चोरी के भय से शङ्कित हुए ॥ १०५ ॥

माता के भय से तुमने पलायन किया तथा गोष्ठांगन में इधर-उधर भागने लगे । बार बार तुमको रज्जु के द्वारा बाँधने के लिये यत्नवती माता के परिश्रम को जानकर दामबन्धन को अंगीकार दिया तथा दामोदर नाम से ख्यात हुए । हे एतादृश तुमको नमस्कार ॥ १०६ ॥

उस समय दाम ही तुम्हारा भूषण बना था । तुम्हारे दोनों नेत्र-प्रान्त चञ्चल हो गये और तुम ऊखल में बँध गये । हे यशोदानन्दन ! तुमने यशोदा जी को वात्सल्यरस का दान अर्थात् आस्वादन कराया । आप अनन्त होकर भी आज दामबन्धन में नियन्त्रित हुए । आपको नमस्कार है ॥ १०७ ॥ (सप्तविंश नमस्कार)

आपने दोनों अर्जुनवृत्त को देखा तथा उनका शपभोचन किया । वे दोनों पूर्वजन्म में नलकुबेर और मणिग्रीव नामक कुबेर जी के पुत्र थे । उनसे श्रीमन्नारद जी का अपराध हो गया था । उस समय दया परवश नारदजी के द्वारा उनके उद्धारार्थ जो वचन दिया गया था उसके आप जानते थे ॥ १०८ ॥

अकिञ्चनजनप्राप्य श्रीमदान्वाद्यगोचर ।
 आकृष्टेलखलालान जय श्रीनारदप्रिय ॥ १०६ ॥
 वृत्तदेवर्षिगीतार्थ-यमलार्जुनभञ्जन ।
 धनदात्मज-सस्तोत्र-स्तुत सर्वेश्वरेश्वर ॥ ११० ॥
 जीव-दुज्जेयमहिमन् सदा भक्तैश्चित्तभाक् ।
 असाधारणलीलोद्य विश्वमङ्गलमङ्गल ॥ १११ ॥
 स्वदासदासताप्रीत भक्तभक्तातिरत्सल ।
 गुह्यमार्थित-सर्गाङ्ग-हृषीक-भजनामृत ॥ ११२ ॥
 शिरोमित्र-सूत्रस्तोत्र सन्तोषामृतवर्षिणाक् ।
 स्वभक्तनीतामाहात्म्यनादिन् प्रेमवरप्रद ॥ ११३ ॥ नम २८ ॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे दशमोऽध्याय ❀

आप निष्किञ्चन के प्राप्य और धनादि मदगर्बितजनों के अ-
 गोचर हैं। आपकी जय हो ॥ १०६ ॥

देवर्षि जी की वाग्यरक्षा के लिये आपने यमलार्जुन का निपात
 किया। उस समय उन दोनों कुवेरपुत्र ने अत्युत्तम स्वरूप के द्वारा आ-
 पकी इस प्रकार स्तुति की थी—हे सर्वेश्वर ॥ ११० ॥

जीवगण आपकी महिमा को नहीं जानते हैं। आप सर्वत्र भक्तों
 का चित्तनिनोद करते रहते हैं। असाधारण अर्थात् असमोद्धर्ष ली-
 लावलि के द्वारा आप युक्त हैं। भक्तजन उसके आश्रय को न जान
 कर नाना प्रकार के कुतर्क वितर्क किया करते हैं। आप समस्तमङ्गल
 के निधान हैं ॥ १११ ॥

निन दास्यगण के दास्य में आप अधिक प्रीति लाभ करते हैं
 और भक्त के भक्तों के लिये अतिरत्सल हैं। गुह्यक दोनों ने आपके
 निकट सर्गाङ्ग व सर्वेन्द्रिय के द्वारा भजन करने की प्रार्थना की ॥ ११२ ॥

उनके स्तोत्र से प्रसन्न होकर आपने सन्तोषामृत वर्षिणी वाली
 का उच्चारण किया तथा निन भक्तदर्शन की महिमा का वर्णन कर

गोपविस्मापनक्रीड वालसक्थितेहित ।

सम्भ्रान्त-नन्दसदृष्ट स्मितभिन्नौष्ठसंपुट ॥ ११४ ॥

पतिताञ्जु नमध्यस्थ महोलखल-वर्षक ।

गोपाशालि-लसन्मध्य नन्दमोचित-यन्वन ॥ ११५ ॥

स्वभक्तवश्यतादर्शिन् बल्लभीस्तोभ-नर्तित ।

वालकोद्रीति-निरत बाहुक्षेपमनोरम ॥ ११६ ॥

गोप्याज्ञाधृतपीठाद्यं नयनीतार्थनाम्नो ।

ब्रजमोहवरक्रीडासुगसिन्धो नमोऽस्तु ते ॥ ११७ ॥ नमः ५६ ॥

उपनन्दाहितप्रीते घृन्दावनरसोत्सुक ।

प्रस्थानशकटाहृद गोपिकागीतचेष्टित ॥ ११८ ॥

उनको प्रेम कर का ही प्रदान किया । आपको नमस्कार है ॥ ११३ ॥

(अष्टात्रिंश नमस्कार)

हे गोपाण की विस्मयकारिणी क्रीडा करने वाले !, बालकों ने ब्रजवासियों से उस समय आपकी चेष्टा का वर्णन किया है । ब्रज राज ने भय-आदर से आपको देखा । आपका ओष्ठ स्मित से प्रस्रसित हो रहा था । आप अञ्जु नयुगल के बीच में पड़े हुए थे तथा महान् खलखल के कार्यणकारी थे । उस समय गो रज्जु से आपका मध्यदेश शोभायमान था । नन्द महाराज न उसका मोचन किया । आप निज भक्तवश्यता स्वभाव को दिखाने वाले हैं । आपने गोपियों से करतालि प्रभृति के द्वारा प्रोत्साहित होकर नृत्य किया है । बालकों की भाँति आप उच्चस्वर से बोलने में निरन्तर चेष्टा करते हैं । बाहुक्षेप में आप परम मनोहर हैं । गोपियों के सङ्केत से अममर्थ होने पर भी पीठादिवारण में चेष्टा रखते थे । आप नयनीत माँगने में बड़े चतुर हैं । हे ब्रजमोहवारी क्रीडा के सुशामान ! आपको नमस्कार है ॥ ११४-११७ ॥

(उन्त्रिंश नमस्कार)

हे उपनन्द जी के प्रेम परायण ! हे घृन्दावन-रसस्वादन में उ-

हृदयवृन्दायनास श्रीवृन्दायनचन्द्र हे ।
 वृन्दायनप्रिय श्रीमद्वृन्दायननिभूपण ॥ ११६ ॥
 व्याघ्रादिहिंस्र-सहजवैरहर्त्त प्रसीद मे ।
 श्रीगोवर्द्धन-कालिन्दी-पुलिनालोकहर्षित ॥ ११७ ॥ नमः ३० ॥
 व्रजनन्दाकरप्रीड मनोज्ञकलभाषण ।
 वत्सपालनसञ्चारिन् व्रजादूर-वराचर ॥ ११८ ॥
 रामादिवालकाराम नानाकीडापरिच्छेद ।
 वशीवादन-ससक्त वेणुचित्रस्थनाकर ॥ ११९ ॥
 मुरलीवदन श्रीमत्त्रिभङ्गीमधुराकृते ।
 क्षेपणीक्षेपणप्रीत क दुक्प्रीडनोत्सुक ॥ १२० ॥
 वृषवत्सानुकरण वृषध्याननिडम्बन ।
 जयान्योन्यरणप्रीत सर्वान्तरुतानुकृत् ॥ १२१ ॥ नमः ३१ ॥

स्फटित । हे उपनन्द जी की मन्त्रणानुसार वृन्दायन गमनार्थ प्रस्तुत शकट में आरोहणकारी । गोपियों ने आपकी लीला का गान किया है । हे मनोहर वृन्दायन निवासी । हे वृन्दायन के चन्द्रमा । हे वृन्दायन के प्रिय । हे श्रीमद् वृन्दायन के निभूपण । हे व्याघ्रादि हिंस्र जन्तु के निज सौन्दर्य माधुर्य से स्वाभाविक वैर भाव के हरणकारी । मेरे लिये प्रसन्न हों । आप श्री गोवर्द्धन यमुना पुलिन का अवलोकन कर परम हर्षित हुए ॥ ११६-१२० ॥ (त्रिश नमस्कार)

हे व्रज आनन्ददायिनी-कीड़ा परायण । हे मनोहर अचक बो-लने वाले । हे वत्स पालनार्थ इतस्तत विचरणकारी । हे व्रज की निकट भूमि में विचरणशाली । हे रामादि वालकों से मनोहर । हे नाना प्रकार के कीड़ापरिच्छेदधारी । हे वशीवादनरत । हे वेणु से मनोहर विचित्र शब्द करने वाले । हे वशीवदन । हे त्रिभङ्गी-भङ्गी से मधुर । हे बिल्व-आघ्रादि फलों के क्षेपण में प्रीत । हे कदुक-कीड़ा में उत्कण्ठित । हे वृष वत्सों के अनुसरणकारी । हे वृषधनी

जय वत्सासुरध्वंसिन् कपित्थव्रातपातन ।
 बालप्रशंसासंहृष्ट पुष्पवर्ष्यमरार्चित ॥ १२५ ॥
 गोवत्सपालनैकाग्र्य बालवृन्दाद्भुतावह ।
 विकलागारगामिन् मां पाहि गोधूलिधूसर ॥ १२६ ॥
 सुमनोऽलंकृतशिरो गुब्जाप्रालम्बनावृत ।
 पुष्पकुण्डलवर्ह स्तक् पत्रवाद्यविनोदक ॥ १२७ ॥
 मनोज्ञपल्लवोत्तंस वनमालाविभूषित ।
 वनधातुविचित्राङ्ग यर्हियर्हावतंसक ॥ १२८ ॥ नमः ३२ ॥
 प्रातर्भोजनसंयुक्त वत्सव्रात-पुरःसर ।
 गिरिशृङ्गमहाकाय-वकासुरगतेक्षण ॥ १२९ ॥

को अनुकरण के द्वारा विडम्बना करने वाले ! हे सखाओं के साथ पारस्परिक रणक्रीड़ा में प्रसन्नता प्राप्त ! हे सकल जन्तुओं के रोदना-नुकरणकारी ! आपकी जय हो ॥ १२१-१२४ ॥ (एकत्रिंशदनमस्कार)

हे वत्सासुर ध्वंसी ! हे उसके प्रहार से कपित्थ वृक्षों को गिराने वाले ! उस समय बालकों ने साधु साधु इस प्रकार प्रशंसा की थी । देवताओं ने पुष्पों से आपकी अर्चना की । हे गोवत्सपालन में एकाग्रचित्त ! हे बालकगण के आश्चर्य्यकारी ! आप अपराध के उपरान्त नित्य नन्दव्रज के लिये गमन करने हैं । आप गोधूलि में धूसासंग हैं । मेरी रक्षा कीजिये ॥ १२५-१२६ ॥

आपका मस्तक पुष्पों से अलंकृत है । गुब्जा निर्मित लम्बायमान माला से आपका गलदेश आच्छादित है । हे पुष्पों से विरचित कुण्डलधारी ! हे मयूर-विच्छ की माला से शोभित ! हे पत्रादि के द्वारा निर्मित वाद्यों के वादन में विनोदशील ! हे मनोहर पल्लवों से रचित शिरोभूषण के धारणकारी ! हे वनमाला से विभूषित ! हे वनधातुओं से विचित्र अंगवाले ! हे मस्तक में मयूर-पुच्छ धारिन् ! आप रक्षा कीजिये ॥ १२७-१२८ ॥ [द्वात्रिंशदनमस्कार]

तीक्ष्णनुण्डवक्त्रस्त-मूर्च्छाविष्टमुहदग्ण ।
महावक्त्रमप्राक्रीड वक्त्रालुप्रदाहक ॥ १३० ॥
जय दुष्टैर्कोट्योर्ण वरुचञ्चुमिदारण ।
घलादि-बालमश्लिष्ट पुष्परि-सुरेडित ॥ १३१ ॥ नमः ३३ ॥
ॐ इतिःशमस्तन्धे एकादशोऽध्यायः ॐ

प्रातर्न्याशनावाङ्मिह शृङ्गानारितयत्सप ।
असत्ययत्ससञ्चारिन् अमर्त्यार्मकसङ्गत ॥ १३० ॥
शिम्यचौर्योदिविविध-बालक्रीडातितोषित ।
स्वपादस्पर्शक्रीडापदुबालकहपित ॥ १३३ ॥
वयस्याशम्यसहन-क्षणमात्रावलोकन ।
शुक्लीतमहाभाग्य प्रजबालक वेष्टित ॥ १३४ ॥ नमः ३४ ॥

हे वनभोजनार्थ माता से प्रातःकालीन भोजन की इच्छा करने वाले । हे वत्सगण के अग्रगामी । हे पर्यंत शृंगार महाकाय वकासुर को देखने वाले ! उस समय उसने आपको तीक्ष्णमुख से निगल लिया था । आपके सत्पागण मूर्च्छित हो गये । आपने महान् वकासुर के मुखको क्रीडागृह बना लिया । उसका तालु जलने लगा । आप फिर उसके मुखसे निकल आये तथा उसके मुखको फाड़ दिया । हे घलादि बालकों से आलिङ्गित । आपकी जय हो । उस समय दे-घताओं ने पुष्पों के वर्षण के द्वारा आपकी स्तुति की थी ॥ १३६-१३१ ॥

[त्रयोविंश नमस्कार]

अब वनभोजन लीला का प्रारम्भ करते हैं—हे प्रातः माता से वनभोजन के लिये अभिलाषी । हे शृंगवाद्य के द्वारा सत्पाओं के आवाहनकारी । हे असत्य गोवत्स सञ्चारणशील । हे असत्यसत्पाओं के साथी । हे शिम्यचौर्योदि निविध बालक्रीडामें प्रसन्नचित्त वाले । हे निजचरणस्पर्शरूप क्रीडामें चतुर बालकों से हर्ष प्राप्त ! आप का अनवलोकन क्षणमात्र भी वयस्यगणों के लिये असहन

दुष्टुद्विसुप्रपीनाहीतरथोत्प्रेक्षकानुग ।

दुरचेष्टाघासुरभिज्ञ मुग्धार्मकरिरक्षिपो ॥ १३५ ॥

कृत्यचिन्ता-महालील सर्वस्यान्तःप्रवेशकृत् ।

अवदानवसंहर्तृवत्सवत्सप-जीवन ॥ १३६ ॥

अमरानन्दविस्तारिन् निन्द्यदानवमुत्तिद ।

विस्मापितागतब्रह्मज्ञाश्चर्यान्धे नमोऽस्तु ते ॥ १३७ ॥ नमः ३५ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॐ

पौगण्डाल्यातकौमार महाश्चर्य्यचरित हे ।

परीक्षिच्छुकदेवातिविमोहन कयामृत ॥ १३८ ॥

होता था । आप श्रीशुकदेव के द्वारा प्रगीत महान् भाग्यशील ब्रज-
वालकों से वेष्टित हैं ॥ १३७-१३८ ॥ (नमः ३४)

अब अघासुर-वध लीला का वर्णन करते हैं-आपकी सुखमयी
क्रीडा दर्शन में अत्तम, आप को मारने के लिये इच्छुक, दुष्टदुष्टि
से युक्त, शयनकारी, स्थूलकाय सर्प का दर्शन कर आपके सहचरों
ने विचार किया था कि यह कोई वृन्दावन की गुहा विशेष होगी ।
किन्तु आप उस को विशेष रूप से जानते थे । फलतः उसके मुख-
विबर में प्रवेश के लिये इच्छुक गोप बालकों की रक्षा के इच्छुक
हुए । उस समय बालकों ने उसके मुख में प्रवेश किया । यह दुष्ट
आपकी प्रतीक्षा में था । आपने करणीय विषय की चिन्ता कर उसके
उदर में प्रवेश किया और अपने शरीर की वृद्धिरूप लीला का वि-
स्तार कर अघासुर का विनाश किया । जिससे गोवत्स-सत्यागण
जीवित हुए तथा देवगण ने आनन्द लाभ किया । आपने हम प्रकार
के निन्दनीय दानव को मुक्ति दी । इन सब लीलाओं का दर्शन कर
विस्मय प्राप्त प्रजा आपके निकट आये । हे आश्चर्य्य के सागर !
आपको नमस्कार है ॥ १३५-१३७ ॥ (नमः ३५)

अब प्रजा के द्वारा गोवत्स-दरुण लीला का वर्णन करते हैं-

स्तुतरम्यसरस्तीरादृशद्वल-जेमन ।

सर.सुपुलिनासीन वालमण्डलमण्डित ॥ १३६ ॥

सखिश्रेयन्तरस्थात ब्रजार्भक-सहाशन ।

पीतवस्त्रोदरन्यस्तवेणो वन्यविभूषण ॥ १४० ॥

धामकक्षान्तरन्यस्तशृङ्गवेत्र प्रसीद मे ।

यामपाणिस्थदधन् कचलाशनसुन्दर ॥ १४१ ॥

अंगुलीसन्धिविन्यस्त-फल वालालिचिप्तद्वत् ।

स्वतर्महास्यमानार्भ स्वर्ग्योश्चर्यकराशन ॥ १४२ ॥ नमः ३६ ॥

अदृश्यतर्णकान्येपिन् वल्लभार्भकभीतिहन् ।

अदृष्टवत्सप-त्रात वत्सवत्सपमार्गग ॥ १४३ ॥

हे पौगण्ड अवस्था में कौमारलीला के आचरणकारी !, हे महान् आश्चर्य्य चरित्र वाले !, आप का क्यामृत परीक्षित तथा शुक्रदेव जी को भी विमोहनकारी है । स्तुतियोग्य, रमणीय, सरोवर के निकट नवीन तृणों से शोभायमान देश में सखाओं के साथ आपने भोजन लीला की । सरोवर के सुन्दर पुलिन में वालमण्डल से मण्डित हो कर विराजमान हुए । सखाओं के बीच में आपने रहकर उनके साथ धनभोजन किया । उदर के पीतवस्त्र में वंशी को निहित किया । हे वन्यविभूषण ! धामकक्ष के मध्य में शृङ्ग-वेत्रधारी ! मेरे ऊपर प्रसन्न हों । उस समय यामद्वस्त में दधि-अन्न मौजूद था । आप अन्न-प्राप्त में शोभायमान थे । अंगुलियों के सन्धिस्यल में फल-समूह विन्यस्त था । आप बालों के चित्त को हरण करते थे तथा नर्म परिहास से उनको हँसाते थे । वह भोजन देवताओं के चित्त में चमत्कार था ॥ १३८-१४२ ॥ (नमः ३६)

हे अदृश्यमान, दूरप्रचारी, वत्सों को दूँ देने वाले ! हे गोपबालकों के भयहारी ! उस समय गोवत्स गोपबालकगण अदृश्य होगये थे, उन्हें आप दूँ देने लगे, और यह सब ब्रह्मा की कृति है—ऐसा

विदितब्रह्मचरित वत्सवत्सपरूपवृक् ।

वत्सपालहरब्रह्म-तत्तन्मातृमुदिच्छक ॥ १४४ ॥

यथाब्रजार्भवकार यथावत्सपचेष्टित ।

यथावत्सक्रियारूप यथास्थाननिवेशन ॥ १४५ ॥ नमः ३७ ॥

गोगोपीस्तन्यपाहन्त गोगोपीप्रीतिवर्द्धन ।

वलरामोहितोदन्त पितामहविमोहन ॥ १४६ ॥

शुद्धसत्त्वघन-स्वीयबहुरूप-प्रदर्शक ।

अत्याश्चर्येक्षणाशक्त-ब्रह्म-व्युत्थानकारक ॥ १४७ ॥

स्यान्तर्दृष्ट्यतिदीनाज-बहिर्दृष्टिसुरप्रद ।

गोपार्भवश रुचिर सपाणिकृपाय माम् ॥ १४८ ॥

जान लिया । आपने वत्स-गोपवालों का रूप का धारण किया क्योंकि वत्स-वत्सपालकहारी ब्रह्मा के अभिमान नाश के लिये तथा उन उन वत्स-वत्सपालकों की माताओं को आनन्द देने के लिये आपकी इच्छा हुई । ठीक जिस प्रकार के वत्स व वत्सपालक थे उनकी जैसी चेष्टा थी तथा जिस प्रकार किया थी उसी प्रकार के आप हुए । ऐसी चेष्टा करने लगे तथा ऐसी क्रिया की थी कि वे सब जहाँ जैसे रहते थे ठीक वहाँ ही वैसे आप रहने लगे ॥ १४३-१४५ ॥ (नमः ३६)

॥ गोप-गोपियों का स्तन्यप अर्थात् पुत्राभिमान ! हे गो गोपियों के प्रेमवर्द्धक ! श्री बलराम के द्वारा हमका रहस्य ज्ञात हुआ था । आप ब्रह्मा के विमोहनकारी हुए । वह सब (गोवत्स तथा यानरूप) आपका ही विशुद्ध सत्त्वघनमय असंग्रह्यरूप था । आपके उन सब अनि आश्चर्यकर रसमय विशुद्ध सत्त्वघन स्वरूपों का दर्शन कर ब्रह्मा जी विह्वल हो गये । आपने उनका प्रमोदन किया । उस समय सर्वत्र आपके दर्शन के हेतु वे अतिदीन हो गये । आपने उनको बा-
हिर दृष्टि से मृन्मयनादिकों का दर्शन कराकर सुख प्रदान किया । हे गोपपालकों के वशी ! हे सुन्दर ! हे क्षय मे क्षि-अथ माम से मो-

व्यालीनसृष्टवत्सार्भगण ब्रह्मत्रपाकर ।

ब्रह्मानन्दाश्रुधौताङ्घ्रे दृष्टतत्त्वविधिस्तुत ॥ १४६ ॥ नमः ३८ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॐ

विधिवाम्यामृताब्धीन्दु गोपबालकवेश हे ।

ब्रह्मावतार-दिव्याङ्गाचिन्त्यमाहात्म्यरूपभृत् ॥ १५० ॥

मृपाज्ञानभ्रमार्शिरि-भक्त्येकमुखनिर्जित ।

भेयःसारात्युदासीन-दुर्बुद्धिवलेशशेषक ॥ १५१ ॥

पूर्वपूर्वविमुक्तौघाभितभक्तिसुमार्ग हे ।

नैर्गुण्याधिक-दुर्ज्ञेयार्चय्यान्तमहागुण ॥ १५२ ॥

केवलात्मरूपापांगवीक्षापेक्षकमोक्षक ।

निबन्दितापरावातिभीत पुत्रार्थितक्षम ॥ १५३ ॥

भावमान ! मेरी रक्षा कीजिये । आपने उसी समय फिर घरबालकों को निज विग्रह में समावेश कर ब्रह्मा को लज्जित किया । ब्रह्मा ने भी आनन्दवारि सिञ्चन से आपके चरण युगल का प्रक्षालन किया तथा आपका तत्त्व-समूह को अवगत कर आपकी स्तुति करने लगे ।

॥ १४६-१४६ ॥

(नमः ३८)

अब ब्रह्मस्तुति का वर्णन करते हैं—हे ब्रह्मा के वाक्यामृतसागर के चन्द्रमा ! हे गोपबालकवंशधारी ! हे ब्रह्मा के लिये अवतीर्ण दिव्याङ्ग अचिन्त्यमहिमा वाले ! हे मिथ्या ज्ञान भ्रम से रहित एकमात्र मुख्यभक्ति के द्वारा घरीभूत ! परम मङ्गल के अभ्युदयरूप अपवर्गों के साररूप भक्तिमार्ग में उदासीन केवल बोध प्रार्थी दुर्बुद्धि जनों का क्लेश ही सार है । आपकी भक्ति सर्वोपरि है । पहले योगिगण ज्ञानाश्रयी थे पश्चात् उसे परित्याग कर भक्तिमार्ग में प्रवेश किया । गुणातीत स्वरूप से भी अधिक दुर्ज्ञेय, आश्चर्य्यकर, अनन्त, महान् आपके गुण मङ्गल हैं ! केवल निज कृपारूपी अपाङ्गदृष्टि की अपेक्षा करने वाले व्यक्तियों के द्वारा आपके स्वरूप का बोध होता है । निज

रोमकूपभ्रमत्कोटिकोऽब्रह्माण्डमण्डल ।

प्रसूयदागःसहन जगन्मात जगत्पितः ॥ १५४ ॥

नाभ्यञ्जजनितत्रह्यनारायण निरावृते ।

स्वगर्भांश्वाप्रपञ्चेक्ष्ण-तदसत्यत्वदर्शक ॥ १५५ ॥

सत्यलीलावतारौघाचिन्त्यलीलातिवैभव ।

मिथ्यासत्यत्वसंपादिन् सदा परमसत्य हे ॥ १५६ ॥

गुरुप्रसादसंहस्य प्रपञ्चजनकास्मृते ।

बन्धमोक्षादि-मिथ्यात्वकृद् विचारणमात्रक ॥ १५७ ॥

अपराध का जानकर अति भयभीत निज नाभिकमलजात पुत्र ब्रह्मा के (मेरे) अपराधादिकों को सहने वाले हे कृष्ण ! आपके रोमकूप में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड सकल परमाणु की तरह घूमते हैं । बालक के पादप्रहार को सहने वाली माता की तरह आपने मेरे अपराध का सहन किया है । आप जगत् की माता हैं अर्थात् आपके कुक्षि में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मौजूद रहते हैं । हे जगत् के पिता ! आपके नाभिकमल से मेरा जन्म है । आप मूलनारायण हैं तथा देश-कालादिकों से अपरिच्छिन्न हैं । आपने निज जननी यशोदा को निज उदर में प्रपञ्च दिखाकर जगत् का अनित्यत्व तथा मायाकृतत्व का प्रतिपादन किया है । गुणवतार तथा लीलावतार प्रभृति में आपका मूलत्व विद्यमान रहने के कारण वे सब यथार्थ सत्य हैं । आपकी लीला की महामहिमा मन के अगोचर है । इससे आप अचिन्त्य हैं । प्रपञ्चसकल मिथ्याभूत होने पर भी आपके सम्बन्ध में आकर सत्यवत् प्रतीयमान होता है । आप सर्वदा परमसत्य अर्थात् निर्विपर हैं । आप इस प्रकार होने पर भी गुरुकृपा से सम्यक् रूप से दर्शन के विषय होते हैं । आपका विस्मरण ही प्रपञ्च का कारण है । बन्ध-मोक्षादि अज्ञान युक्त हैं । सत्यज्ञान से ये सब विनाश का प्राप्त होते हैं । आप ज्ञानालोक प्रगलित कर उनके मिथ्यात्व का सम्पादन करते हैं । अन्यकार

असत्यागि-स्वभक्तान्तर्वाहिरात्माधिकस्फुट ।

स्वपाद-महिमज्ञापि-स्वपादाञ्जप्रसाद हे ॥ १५८ ॥

विवात्भूरिभाग्यैक-प्राध्यदासानुदास्यक ।

चतुर्मुखमुहुर्गोत-भक्तिमाहात्म्य पाहि माम् ॥ १५९ ॥ नमः ३६ ॥

धन्यधन्यव्रजवधू-धेनुतर्पित-मोदित ।

नित्यपूर्ण-महाभाग्य व्रजोकोमित्रतां गत ॥ १६० ॥

व्रजवासिप्रसङ्गान्तर्देवतायदुसौरयद ।

व्रजजाताङ्घ्रिरेणुस्पृक्तृणजन्मेप्सु-पद्मज ॥ १६१ ॥

नाराक मूर्य की भाँति नित्यज्ञानरूप विशुद्ध आत्मतत्त्व के द्वारा आप वन्द्य-मोक्ष के तुच्छत्व का प्रतिपादन कराते हैं । असत् शब्दवाच्य मिथ्या-अवस्तु का परित्याग कराकर भक्तों के भीतर-बाहिर में व्यापक प्रियस्वरूप में समधिक रूप से अभिव्यक्त होने हैं । आपके चरण की कृपा ही आपके चरण की महिमा को जनाती है । अनन्तर विधाता ने इस प्रकार की स्तुति कर परिशेष में प्रचुरभाग्य के वश केवल आपके दास के अनुदास होने की प्रार्थना की । चतुर्मुख ब्रह्माजी ने धार धार आपकी भक्ति की महिमा का कीर्तन किया है । हे कृष्ण ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ १५०-१५९ ॥ (नमः ३६)

हे परमधन्या व्रजवधूण और धेनुगण के द्वारा स्तन्यदान में तृप्त तथा परमप्रसन्न ! नित्य परिपूर्ण महा-भाग्यशाली व्रज-बालकों के साथ आपकी मित्रता है । व्रजवासियों के मनो-सुद्धि-अहंकारादिकों के अविष्ठाता रूप से स्थित होकर चन्द्रादि देवतागण प्रकारान्तरमें इन के संग कर पृथक् पृथक् इन्द्रिय के द्वारा आपके सौन्दर्य यशः सौगन्ध्य प्रभृति के पृथक् पृथक् रस आस्वादन करते हैं । ब्रह्माजी ने भी व्रज में जात किसी व्यक्ति का भी चरणरेणु स्पर्शशील तृणजन्म की प्रार्थना की है । प्रेमीभक्तगण ने आपको प्राणादि समस्त समर्पण किया है । अथवा आप भी उनके लिये निज आत्मा पर्यन्त सर्वस्व

प्रेमभक्तापिताशेर घोषवासिमहाशृणिन् ।

सद्वेशमात्रसंज्ञात-पूतनात्म-प्रदायक ॥ १६२ ॥

विरक्तप्राप्यदानानुरक्तापर्य्याप्ति-यन्त्रित ।

पुत्रत्वाद्यनुकारातिसुहृदानृण्य-लज्जित ॥ १६३ ॥

अविद्वन्मानि-सच्चित्तवागगोचर-वैभव ।

अत्यानन्द-मुहूर्नामकीर्त्तनप्रह्लावन्तित ॥ १६४ ॥ नमः ४० ॥

ब्रह्मप्रसाद-सुमुख भक्तवत्सल चाकप्रिय ।

स्मितेच्छाहर्षितप्रह्लाद-ब्रह्मानुज्ञाप्रदायक ॥ १६५ ॥

दान कर देते हैं । ब्रजवासियों के निकट आप महान् ऋणी हैं क्योंकि उनकी प्रीति के विनिमय में कोई वस्तु प्रत्यर्पण के योग्य नहीं ठहरती है । सदभावना युक्त ब्रजवासिनी धात्रीजन के वेश मात्र को ही देखकर आपने पूतना के स्वभाव को जानने पर भी उसके निकट अपने को स्तन्यपायी शिशुरूप से न्यस्त किया । विरक्त सन्यासियों को आप अपने से अन्य कुछ प्रदान नहीं करते हैं । तुममें एकनिष्ठ व्यापार सम्पन्न ब्रजवासिगण उनसे समधिक भजनशील हैं अतएव ब्रजवासियों को आप किसी फल का प्रदान कर कृतार्थता का लाभ नहीं करते हैं । अतः उनके पुत्रत्वादि का अनुकरण करके भी प्रत्युपकार साधन नहीं कर सकते हैं । इस कारण से आप लज्जित रहते हैं । आपका विचित्र-अनन्त-महान् वैभव परिदृष्टमानों साधुओं के चित्त और दाणी का अगोचर है । इस प्रकार स्तुति करते हुए भगवत् कृपा से निखिल अभिमान दूर हो जाने पर परम दैन्यता के वश ब्रह्मा जी अति आनन्द के साथ आपका नाम कीर्त्तन कर आप की वन्दना करने लगे ॥ १६०-१६४ ॥ (नमः ४०)

हे ब्रह्मा को कृपा करने में प्रमत्त-मूर्ख ! हे भक्तवत्सल ! हे स्तुतिप्रिय ! हे स्मितनिरीक्षण के द्वारा ब्रह्मा जी को प्रसन्नकारी ! हे निःस्वार्थ साधनार्थ ब्रह्मा जी को आज्ञा देने वाले ! हे यत्स-यत्मयों

वत्स-वत्सप-मोहज्ज यथापूर्वाभितर्क ।
 पुलिनानीत-वत्सोद्य नम स्तेऽद्भुतकर्मणे ॥ १६६ ॥
 सुधवालालिवाग्जातहास ब्रजगृहोत्सव ।
 विचित्र-वेशचरित गोपीहृदयमोहन ॥ १६७ ॥
 आत्माधिकप्रियतम सर्वभूतमुहद्वर ।
 परिक्षिच्छुक्रसंवाद-निश्चित-प्रेमसागर ॥ १६८ ॥
 विचित्रलील मां पाहि निलायनविहारवित् ।
 क्रीडासेतुविधानज प्लवङ्गप्लवनोद्धत ॥ १६९ ॥ नमः ४१ ॥
 ॐ इतिदशमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥
 पौगण्डागम गोपाल वृन्दायिपिनमङ्गल ।
 वृन्दावनान्तःसञ्चारिन् सम्मानितनिजाग्रज ॥ १७० ॥
 वृन्दावन-गुणस्थान-मिष-दत्तमहावर ।
 अतिवृन्दावनप्रीत नानारसिविचक्षण ॥ १७१ ॥

के मोहहरणकारी ! हे पहले की भाँति उनको यत्नाकर पुलिन में लाने वाले ! हे अद्भुत कर्मकारी ! आप को नमस्कार है । मोहित बालकों के वचन से जात प्रसन्न ! हे ब्रजगृह के उत्तमवरूप ! हे विचित्र वेश-चरित्र वाले ! हे गोपियों के हृदयमोहन ! हे गोपियों के आत्मा से भी प्रियतम ! हे समस्त-भूतों के श्रेष्ठवाग्धव ! हे परिक्षित श्रीर शुकदेव के संवाद के द्वारा प्रेम-सागर करके निश्चय प्राप्त ! हे विचित्र लीलाकारी ! मेरी रक्षा कीजिये । आप पलापन क्रीडा में पारदर्शी हैं । आपने सरोवरादिक में सेतु बाँध कर लंका-गमन का अनुकरण किया है तथा चान्दरो की भाँति लम्फ प्रदानादि रूप विविध चात्यचाञ्चल्य का प्रकाश किया है ॥ १६५-१६९ ॥ (नमः ४१)

हे पौगण्ड अवस्थाशाली ! हे गोपाल ! हे वृन्दावन के मङ्गल ! हे वृन्दावन के मध्य विहारकारी ! हे निज अग्रज के सम्मानदायक ! हे वृन्दावन के गुणों के वर्णन के छल से महान् कर देने वाले ! हे

भृङ्गानुकारिन् मां पाहि कूजनिर्जित-कोकिल ।
 उपात्तहंसगमन शिखिनृत्यानुकारक ॥ १७२ ॥
 प्रतिध्वानप्रमुदित शाखाकूर्दन-कोविद ।
 नामाकारितगोवृन्द रञ्जुयज्ञोपवीतभृत् ॥ १७३ ॥
 नियुद्धलीलासंहृष्ट यलभद्रभ्रमापनुत् ।
 गोपप्रशंसानिपुण वृत्तञ्जयाद्भुतभ्रम ॥ १७४ ॥
 पुष्पपल्लवतल्पाढ्य गोपोत्संगोपवर्हण ।
 गोपसंवाहितपद गोपव्यजनवीजित ॥ १७५ ॥
 गोपगान-मुखस्थान जितैश्वर्याम्यचेष्टित ।
 रमालालित-पादाब्जाद्वित वृन्दावनस्थल ॥ १७६ ॥ नमः ४२ ॥

वृन्दावन के लिये अति प्रसन्न ! हे नाना क्रीड़ा में विचक्षण ! हे भ्र-
 मरशब्दानुकारी ! हे निज कंठ ध्वनिसे कोकिल जयशील ! मेरी रक्षा
 कीजिये । हे हंस की भाँति गमनानुकारी ! हे मयूर-नृत्य के अनु-
 कारक ! हे प्रतिध्वनि श्रवण से प्रसन्न प्राप्त ! हे वृत्तों के शाखा से
 कूदने में परिष्ठित ! हे गोवृन्द का नाम लेकर आह्वान करने वाले !
 हे गोरञ्जु तथा यज्ञसूत्र के धारणकारी ! हे सखाओं के साथ याहु-
 युद्ध में प्रसन्न ! हे यलदध के भ्रमहारक ! हे गोपों की प्रशंसा करने
 में निपुण ! हे वृत्तों की छाया में बैठ कर भ्रम दूर करने वाले ! हे
 पुष्पों के पल्लव से शय्या बनवाकर उसमें विराजमान ! हे गोपवा-
 लकों के फोड़देश में मस्तक रखकर शयन करने वाले ! हे गोपवा-
 लकों के द्वारा चरण-कमल संवाहित ! हे उनके द्वारा व्यजन से
 धोजित ! हे गोपव लकों के गान से सुख शयनकारी ! हे निज ऐ-
 श्वर्य को द्वाकर प्राम्य चेष्टा को करने वाले ! हे रमालालित चरण
 कमलों से वृन्दावन को अद्वितकारी ! जाइ रक्षा कीजिये ॥ १७०-
 १७६ ॥ (नमः ४२)

जय श्रीदामसुवल-स्तोककृष्णैकान्धव ।
 वृपाल-धृपभोजस्वि-देवप्रस्थ-वयस्य हे ॥ १७७ ॥
 वरूथपाज्जु नसख भद्रसेनांशुवल्लभ ।
 तालीवनकृतक्रीड बलपातितधेनुक ॥ १७८ ॥
 वत्ताल-ताल-राजीभिद् रासभासुरनाशन ।
 गोपवृन्द-स्तवानन्दिन् पुण्यभवणकीर्तन ॥ १७९ ॥ नमः ४३ ॥
 गोपीसौभाग्य-संभाव्य गोधूलिच्छुरितालकम् ।
 अलकावद्धसुमनःशिखण्डं रुचिरेक्षणम् ॥ १८० ॥
 सग्रीवहास-विनयकटाक्षोप-सुन्दरम् ।
 गोपीलोभनवेशं त्वां वन्दे गोपीरतिप्रदम् ॥ १८१ ॥
 जयाम्बा-कौरितस्तान पुण्डरीकावर्तसक ।
 मुक्ताहार-लसत्कण्ठ करकङ्कणसुन्दर ॥ १८२ ॥

हे श्रीदाम-सुवल-स्तोककृष्ण के एक मात्र बान्धव ! हे वृपाल-
 धृपमे-ओजस्वी और देवप्रस्थ के वयस्य ! हे वरूथपा और अर्जुन
 के सखा ! हे भद्रसेन तथा अशुमान के बल्लभ ! हे तालीवन में
 क्रीडाकारी ! हे बलदेव के द्वारा धेनुकासुर को मारने वाले ! ऊँचे
 वृक्षों से तालफलों को गिराने वाले ! हे गर्वभासुर-नाशन ! हे
 गोपवृन्द के स्वामी से प्रसन्न ! आपकी जय हो ! आपका कीर्तन अ-
 धरण परमपुण्य रूप है ॥ १७७-१७९ ॥ (नमः ४३)

गोपियों के सौभाग्य से चिन्तनीय, गोधूलियों से रञ्जित कु-
 टिल कुन्तल, अलकावलि में पुष्प और मयूरपुच्छ धारणकारी, म-
 नोहरनयन, किञ्चित् लज्जा के द्वारा हास्ययुक्त और विनययुक्त
 कटाक्षपात में सुन्दर ! गोपियों के लोभनीय वेशधारी ! गोपियों के
 रतिदायक आपकी वन्दना करता हूँ ॥ १८०-१८१ ॥
 हे माता के द्वारा कृतस्तन ! हे मस्तक में पुण्डरीकावर्त ! हे
 कंठ में मुक्ताहार के धारक ! हे हाथों में कंकणधारण से सुन्दर ! हे

मञ्जुशिञ्जितमञ्जीर स्वर्णालङ्कारभूषण ॥ १५१ ॥
 दिव्यद्यग् गन्धवासोभृज्जनन्युपहृतान्नमुक् ॥ १५२ ॥
 विलासललितस्मेर गर्व्वलीलावलोकन ॥ १५३ ॥
 सुखपल्यद्वसंविष्ट राधासंलापनिवृत्त ॥ १५४ ॥ नमः ४४ ॥
 यमुनातटसञ्चारिन् कालियहृदतीरग ॥ १५५ ॥
 नमस्तेऽतिसुधादृष्टे विपार्त्तव्रजजीवन ॥ १५६ ॥
 अतिविस्मितगोपाल-कुलानुमितचेष्टित ॥ १५७ ॥
 जय स्वजन-रक्षार्थ-निगूढैश्वर्य्यदर्शक ॥ १५८ ॥ नमः ४५ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे पञ्चदशाध्यायः ॐ
 तुङ्गनीप-समारूढ सर्पहृदविहारिणम् ॥ १५९ ॥
 कालियप्रोधजनकं क्रुद्धाहिकुलयेष्टितम् ॥ १६० ॥
 मोहमग्मसुहृद्वर्ग साश्रुगोकुलवीक्षितम् ॥ १६१ ॥
 महोत्पात-समुद्रिन्मन्त्रजान्विष्टगतिं भजे ॥ १६२ ॥

मनोहर शङ्करी मञ्जीर के धारक ! हे सुवर्ण अलङ्कारों से विभूषित ! हे दिव्य माला-गन्ध-यस्त्रादि धारण करने वाले ! हे माता के द्वारा दत्त अन्नादि के भोजनकारी ! हे विलास से ललित, मन्दहास्य से युक्त !, यौवनोत्थित मत्तता से युक्त लीलावलोकनारी ! हे सुगमय पलङ्क में शयन करने वाले ! हे राधिका के वार्त्तालाप में परम आनन्दित ! आपकी जय हो ॥ १५२-१५४ ॥ (नमः ४४)
 हे यमुना के तट में सञ्चारणशील ! हे कालियहृद के तीरगामी ! हे अति अमृतमय दृष्टि वाले ! हे त्रिप से पीडित व्रज-जन के जीवन ! "आप कालियनाग को कृतार्थ करेंगे" ऐसी आपकी चेष्टा पर अनुमान संग्राह्यो ने किया था । आप स्वजन रक्षा के लिये निगूढ ऐश्वर्य्य को दिग्वाये हैं । आपकी जय हो ॥ १५५-१५८ ॥ (नमः ४५)
 अत्युच्चनीप वृक्ष में आरोहणकारी, सर्प के हृद में विहारशील, कालिय के प्रोध उत्पादक, मोहित सर्पों से परियेष्टित, संग्राह्यो के

पदचिन्हाप्तमार्गं त्वां मृतप्रायस्त्ववान्वये ।
रामरक्षितनन्दादिमुम्पुं ब्रजशोचितम् ॥ १८६ ॥ नमः ४६ ॥

नमस्ते स्वीयदुःखञ्च सर्पक्रीडाविशारद ।

कालियादि-फणारङ्ग-नट कालियमर्दन ॥ १८७ ॥

कालिय-फणमाणिक्य-रञ्जित-श्रीपदाब्जुज ।

निजगन्धर्व-सिद्धादि-गीतवाद्यादिनर्तित ॥ १८८ ॥

पादाम्बुज-विमर्दतिनमिताहीन्द्र-मस्तक ।

रक्तोद्गारि-विभिन्नाङ्ग-दीनकालिय-संस्मृत ॥ १८९ ॥ नमः ४७ ॥

नागपत्नीस्तुति-प्रीत-हितार्योचितदण्डकृत् ।

क्रोधप्रसाद-गाम्भीर्य महापुण्यैकतोप्य हे ॥ १९० ॥

मोहितकारी, गोकुलवासियों के द्वारा अश्रु-नयन से दृष्ट, महा उत्यात से सम्यक् उद्धिन्न ब्रजवासियों की गति, आपका हम भजन करते हैं । उस समय आपको ब्रजवासियों ने न देखकर ध्वज चिन्हादि युक्त चरण चिन्ह देख आपकी खोज की । वे सब मृतप्राय हो गये थे । धनदेव जी ने उनको आश्वासना देकर जीवित किया । वे सब बड़े सोच में पड़ गये ॥ १८७-१८८ ॥ (नमः ४६)

हे निज जनों के दुःख-नाशन ! हे सर्प के साथ क्रीड़ा करने में परिणत ! हे कालिनाग के फणरूप रङ्गमञ्च में नृत्य करने वाले ! हे कालिय-मर्दन ! हे कालिनाग के फणों में स्थित मणि-माणिक्यों से रञ्जित चरणकमल वाले ! उस समय गन्धर्व-सिद्धादिकों ने गीत-वाद्य किया और आपने नृत्य किया । आपके चरण प्रहार से उसके फणा-गण मर्दित होकर नीचे की अवन्त हो गये । उसने रक्त का उद्गार किया तथा उसका अंग समूह छिन्न भिन्न हो गया । वह दीन होकर आपको स्मरण करने लगा ॥ १८७-१८९ ॥ (नमः ४७)

हे नागपत्नियों की स्तुति से प्रीत ! हे हित के लिये उचित दण्डकारी ! आप क्रोध करने पर भी-मीतर में प्रसाद रखते हैं, अतः यह

निरुपाधिकृपाकारिन् सर्पस्त्रीप्रार्थ्यनायक ।
 सन्नार्थत्यागिभक्तार्थ्य-स्वाङ्गि-प्रेरणाचिह्नोरग ॥ १६४ ॥
 अचिन्त्यैश्वर्यमहिमन्नानानीरस्वभाउमृक् ।
 नानाक्रीडनक्रीडिन् स्वप्रनाग क्षमोचित ॥ १६५ ॥
 नागस्त्री-पतिभिन्नाद जय कालियभाषित ।
 अपराध-सृष्टदुष्टागोऽयोग्यमोहितनिग्रह ॥ १६६ ॥
 स्वाङ्गमुद्राङ्किताहीन्द्र-मूर्द्धन कालियशासन ।
 पूर्वस्थानापिताहीन्द्र सुपर्णजभयापहृत् ॥ १६७ ॥
 नागोपायनहृत्प्रात्मन् कालियातिप्रसान्ति ।
 यमुनाहृद-सशोधिन् हृन्नेत्सारितकालिय ॥ १६८ ॥ नमः ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे षोडशोऽध्याय ॐ

आपका गम्भीरभाव है। आप महान् पुण्यों से प्रसन्न होते हैं। हे निरुपाधि कृपाकारी! नागपत्नियों की प्रार्थना को पूरति करने वाले! उस समय आप ने कालिय के मस्तक में निज चरणचिह्न रख दिया है। जिसे कि सन्नार्थत्यागी भक्तगण निरन्तर चाहते हैं। हे अचिन्त्य ऐश्वर्य्य महिमा वाले! हे नाना प्रकार के जीवों के नाना विध स्वभाव के सृष्टिकारी! हे नानाविध क्रीडोपकरण से क्रीडित! निज प्रनागों के अपराध क्षमाकारी! नागपत्नियों को पतिरूप भिन्नाको देने वाले! हे कालियनाग से स्तुत! आपकी जय हो। दुराग्रह के कारण आप के द्वारा ही यह दुःस्वभाव सृष्ट हुआ है। कार्यतः इस प्रकार माया मोहित जीव को निग्रह करना उचित नहीं है। आपने उसके मस्तक में निज पञ्चिह्न का स्थापन किया तथा उसके पश्चात् 'हे कालिय! तुम अब यहाँ नहीं रह सकते हो' इस प्रकार कह कर रमणरु डीप जाने के लिये आज्ञा दी। आपने उसको, पूर्व स्थान में भेजा और उसको गरुड से जो भय या उसे निजपञ्चिह्न के द्वारा दूर कर निरापद किया। नाग के द्वारा प्रदत्त, दिव्य, वस्त्र मणिमाल्यादि उपायन

स्वचल्यशनकालीय-दर्पमर्दनवाहन ।
 सौभग्युक्ति-स्वकागम्य-सर्पावास-हृदोद्धर ॥ १६६ ॥
 दिव्यस्नग्गन्धवस्त्राढ्य दिव्याभरणभूषित ।
 महामणिगणाकीर्ण व्रजजीवनदर्शन ॥ २०० ॥
 सहास-श्रीवलाश्लिष्ट गोपालिङ्गननिर्वृत ।
 प्रसोद पीतदावाग्नं स्वजनार्त्ति-विनाशन ॥ २०१ ॥ तमः ५६ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॐ
 काकपक्षधर श्रीमद्वसन्तित-निदाघ हे ।
 नयनाच्छादनक्रीड राजलीलानुकारक ॥ २०२ ॥
 मृगादिचेष्टा-क्रीडाहृदोलानोका-विनोदक ।
 नानालौकिकलीलाभूताना-स्थान-विहारकृत् ॥ २०३ ॥

प्राप्त होकर आप प्रसन्न हुए और कालिय को अति भक्त बनाया ।
 पश्चात् यमुना हृद को अमृतमय कर अपने आपको सबका प्रिय बनाया । हे सपरिवार कालियनाग को दूरीकृत करने वाले ! आप की जय हो ॥ १६३-१६८ ॥ (तमः ४८)
 हे निज पार्षद (वाहन) गरुड़ जी के लक्ष्य भोजनरूप कालियनाग का दर्प नाराज ! सौभरिष्पति के निषेध से सर्पपूर्ण वह हृद गरुड़जी का अगम्य था । आपने उसका उद्धार किया । हे दिव्य-माल्य-गन्ध से युक्त ! हे दिव्याभरण से भूषित ! हे महामणियों से व्याप्त ! हे दर्शनामृत दात से व्रज के जीवन ! हे हास्य के साथ बलदेव से आलिङ्गित ! हे गोपों के आलिङ्गन से परम प्रसन्न ! हे दावाग्नि के पानकारी, हे निजजनों के आर्त्तिनाराज ! आप प्रसन्न हों ॥ १६६-२०१ ॥ (तमः ४९)

हे काकपक्षधारी ! आपके लिये निदाघऋतु सर्वशोभायुक्त वसन्तऋतु की तरह हो जाता था । हे सखाओं के साथ आँख मीचनी क्रीड़ा खेलने वाले ! हे राजलीला के अनुकरणकारी ! हे मृगादिकों

क्रीडासप्राप्तभाण्डीर जय भाण्डीरमण्डन ।

गोपस्त्रिप्रलम्बज्ञ द्वन्द्वक्रीडाप्रवर्त्तक ॥ २०४ ॥

वाह्यवाहककेलीमन् जय श्रीदामवाहक ।

चलपातित-दुर्द्धर्प-प्रलम्ब चलउत्सल ॥ २०५ ॥ नम ५० ॥

❀ इति दशमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्याय ❀

जय मुञ्जाटवीभ्रष्टमार्ग-पशुार्त्तिनाशक ।

वायाग्निभीतगोपालदृङ्निमीलन-देराक ॥ २०६ ॥

मुञ्जाटव्याग्निशमन पीतोत्पण्डवानल ।

भाण्डीरापित-गो-गोप-योगाधीश नमोऽस्तु ते ॥ २०७ ॥ नम ५१ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्याय ❀

प्रावृट्श्रीभूतितारण्य घृष्टिकाल-विनोदकृत् ।

गुहा-वनस्पति-कोडसेविन् मूलफलारण ॥ २०८ ॥

की चेष्टा के अनुकारक । हे दोलारेख तथा नौकाविहार में विनोदी । हे नाना प्रकार की लौकिकलीला के करने वाले । हे नाना स्थान में विहारकारी । हे क्रीडा करते हुए भाण्डीर वट में उपस्थित । हे भाण्डीरवट के मण्डन । आपकी जय हो । हे गोप रूपधारी प्रलम्बासुर को जानने वाले । हे द्वन्द्वक्रीडा में प्रवर्त्तक । हे वाह्य वाहक रूप क्रीडा परायण । हे दाम के वाहक । हे चलदेव के द्वारा प्रलम्बासुर का नाश करने वाले । आपकी जय हो ॥ २०४-२०५ ॥ (नम ५०)

हे मुञ्जाटवी भ्रष्ट मार्ग भूलने वाले पशुओं की आर्त्ति के नाशक । आपन उस समय वायाग्नि से भीत गोपालों को नत्र मूँटन के लिये कहा । हे मुञ्जाटवी अग्नि के शमनकारी । हे प्रज्वलित अग्नि के भक्षक । हे भाण्डीरवट के निकट गो-गोपों के सञ्चारशील । हे योगाधीश । आपको नमस्कार है ॥ २०६-२०७ ॥

आपन वर्षाऋतु में शोभा समृद्धि से घृष्टितारण्य को भूषित किया तथा वर्षाकाल में विविध क्रीडा-विनोद किया । पर्वतों की गुहा में

पापाण्यस्त-दध्यन्नभुग् वर्षाद्वर्षितत्रज ।

शाद्वलाशन-वर्षाश्री-सम्मानक नमोऽस्तु ते ॥ २०६ ॥

हे शरत्निर्मल-योमचारुकान्ते । प्रसीद मे ।

शरच्चन्द्र-लसद्वक्त्र कृतगोपीमहास्मर ॥ २१० ॥ नम ५२ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे विशोऽध्याय ❀

शरद्विहार-मधुर शरत्पुष्पत्रिभूषण ।

कणिकारान्तस रत्ना नटवेशधरं भजे ॥ २११ ॥

विन्यस्त-वदनान्भोज-लोचन-प्रान्तनर्त्तक ।

त्रिन्धाधरार्पितोदारवेणो जय सुगायन ॥ २१२ ॥

नमो ब्रह्मावलोकय त्रिभगललिताय ते ।

वेणुमोहित-विश्राय गोपिकेदुगीत-कीर्त्तये ॥ २१३ ॥ नम ५३ ॥

तथा वृद्धोंके नीचे क्रीडास्थान बनाया और फल मूल का भोजन किया । प्रस्थर में दधि अन्न रखकर भोजन किया था । आपने वर्षाकाल में त्रज को प्रसन्न किया । वृण भोनी वृषादि को तथा वर्षा-श्री को सम्मान दिया । आपको नमस्कार है । हे शरत्कालीन मेघशून्य आकाश की भाँति मनोहर पान्ति वाले । हे शरच्चन्द्रमा की तरह शोभायमान सुग । हे गोपियों को महाकन्दर्प दायिन् । मुझ पर प्रसन्न हों ॥ २०८-२१० ॥ (नम ५२)

हे शरत्कालीन विहार से मधुर । हे शरत्ऋतु के पुष्पों से विभूषित । हे अन्तस में कणिकार के धारी । नटवेश से विभूषित आप का भजन करता हूँ । हे [सुग्यकमल में] अपागभगी के द्वारा सुन्दर नेत्र वाले । हे अवर विम्व में उगार उसी निहितकारी । हे सुन्दर गायक । आपनी जय हो । ब्रह्म अलोकनकारी, त्रिभगसे ललित, वेणुध्वनि से विश्व मोहित करने वाले, गोपियों के द्वारा उद्गीत की तृिशाली । आपको नमस्कार है ॥ २११ ॥ २१३ ॥ [नम ५३]

चक्षुःसाफल्य-सम्पादि-श्रीमद्वक्त्राञ्ज-वीक्षण ।
 नानामाला-लमहेश गोपालसभ-शोभन ॥ २१४ ॥
 सदातिपुण्यवद्देवगु-पीयमानाधरामृत ।
 घृन्दायनातिवीक्षितश्रीपद-पदाब्जलक्षण ॥ २१५ ॥
 अपूर्वमुरलीगीतनादनर्चित-वर्हिण ।
 शास्त्रोत्कीर्ण-शकुन्तीच सर्पप्राणिमनोहर ॥ २१६ ॥
 विस्मारितवृणप्रास-मृगीकुलविलोभित ।
 मुशीजरूपसङ्गीत-देवीगण-विमोहन ॥ २१७ ॥
 गाढरोदितगोवृन्द प्रेमोत्कर्षित-तर्णक ।
 निर्व्यापारीकृताशेष-मुनिवृत्त्यविहङ्गम ॥ २१८ ॥
 गीतस्तव्यसरित्पूर च्छत्रायितवलाहक ।
 पुलिन्दीप्रेमकूटपासलग्नपादाब्ज-कुङ्कुम ॥ २१९ ॥

हे नेत्र साफल्यक्षरी शोभायमान मुख कमल वाले । हे नाना
 प्रकार मालाआ से परिभूषित । हे गोपालसभा में शोभन । वशी ने
 बड़ा भारी पुण्य किया जिससे वह निरन्तर अवरामृत का पान करती
 है । आपके चरणकमल घृन्दायन की कीर्ति श्री को देने वाले हैं ।
 आपके अपूर्व वेगुनाच का श्रवणकर मयूरगण नृत्य करने थे । वृ
 क्षों की शाखा में पक्षिगण चित्र की भाँति हो जाते थे । आप सकल
 जीवों के मनोहर हैं । आपकी वशीध्वनि से मृगीगण वृण प्रास भूल
 कर विलाभित हो जाते थे । आप मुशीलता रूप सौन्दर्य संगीतादि
 से देवीगण के विमोहक हैं । गोगण गाढरूप से आपका वशीनाद
 श्रवण से व्याकुल होकर रोदन करते हैं । गोवृत्सगण प्रेमसे ऊपर की
 तरफ कानों को उठाकर वेगुध्वनि का श्रवण करते थे । आपकी वशी
 ध्वनि पक्षियों को अशेष व्यापार से हटाकर मुनिगण की भाँति मौनि
 बना देती थी । यमुना का प्रवाह स्थगित हो जाता था । मेघ छत्रा-
 कार बन कर आपके अग में सूर्यताप को ढक देता था । आप के

हरिसेवकवर्ष्यत्वसम्पद्गोवर्द्धनार्चित ।
 स्वप्रेमपरमानन्द-चित्रायित-चराचर ॥ २२० ॥
 रागपल्लवितस्थाणो गीतानमितपादप ।
 गोपालविलसद्देश गोपीमारविबद्धन ॥ २२१ ॥
 अशेषजङ्गमस्याणु-स्वभाव-परिवर्त्तक ।
 आर्द्राकृत-शिलाकाष्ठ निर्जीवोज्जीवनाव नः ॥ २२२ ॥ नमः ५४ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे पुरुषविशोऽध्यायः ॐ
 गोपकन्याव्रतप्रीत प्रसीद वरदेश्वर ।
 जलक्रीडा-समाशक्त-गोपीवस्त्रापहारक ॥ २२३ ॥
 कदम्बारुद्ध धन्दे त्वां चित्रनम्भोक्तिकोविद ।
 गोपीस्तवविलुब्धात्मन् गोपिका-याचितांशुक ॥ २२४ ॥

चरणकमल का कुंक्षुमें तृण से लग कर पुलिन्दकन्याओं के वक्षः में
 संलग्न हो जाता था । आप हरिसेवकों में श्रेष्ठ परम प्रसिद्ध श्रीगोव-
 र्द्धन पर्वत से सेवित है । आपने निज प्रेमदान से चराचर सबको
 परमानन्द तथा चित्र की भाँति मुग्ध बनाया । वंशीध्वनि के द्वारा
 आपने शास्त्रारहित वृत्तों को भी पल्लवित किया तथा फल फूलों से
 नीचे को झुकाया । हे गोपालवेश से विलासी ! हे गोपियों के स्मर-
 विबद्धक ! हे अशेष स्थावर जङ्गम का स्वभाव के परिवर्त्तक ! हे
 प्रस्थर काष्ठ को पियलाने वाले ! हे निर्जीव के जीवनदाता ! हम सब
 की रक्षा कीजिये ॥ २१४ ॥ २२२ ॥ [नमः ५४]

हे गोपकन्याओं के व्रत से प्रसन्न ! हे वरदेश्वर ! हे जलक्रीड़ा
 में सम्यक् आसक्त ! हे गोपियों के वस्त्रापहारी ! आप प्रसन्न हों । हे
 कदम्बारुद्ध ! हे मनोहर नम्भोक्ति में परिणत ! आपकी वन्दना क-
 रता हूँ । हे गोपियों के स्तव से आत्मविस्मरणकारी ! गोपियों ने उस
 समय आपको वस्त्र की याचना की थी । हे यगुना का स्रोत ही जि-
 नका वस्त्र है ऐसी अर्थात् नग्ना, जलमग्ना, शोभायमाना गोपकन्या

श्रोतोवासःशुभद्रगोपकन्याकर्मण-लालम ।
 शीतार्तयमुनात्तीर्ण-गोपीभाव-प्रमादित ॥ २२५ ॥
 स्कन्धारोपिनगोपस्त्रीयस्त्र मम्मितभाषण ।
 गोपीनमस्तियादेष्ट गोप्येककरवन्दित ॥ २२६ ॥
 गोप्यञ्जलिविशोषार्थिन् गोपस्नानममृत ।
 गोपीयस्यद् हे गोपीकामिताकामितप्रद ॥ २२७ ॥
 गोपीचित्तमहाघोर गोपकन्याभुजङ्गम ।
 देहि रगोपिज्ञदास्यं गोपीभावविमोहित ॥ २२८ ॥ नमः ५५ ॥
 श्रीवृन्दावन-दूरस्थविप्रा-मायाभिकर्षित ।
 आतपत्रायितारोपतरुदर्शनहर्षित ॥ २२९ ॥
 परोपराधनिरत-तरुजन्माभिनन्दक ।
 यमुनामृतमंथन गो-गोपगणसेवित ॥ २३० ॥ नमः ५६ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॐ

के आकर्षण में लालस ! हे शीतार्त यमुना से उन्नित उनके भाव से प्रसन्नताप्राप्त ! हे स्कन्ध में उनके यस्त्र के धारणकारी ! हे स्मित-भापी ! हे गोपियों को नमस्कार के लिये आदेशकारी ! हे उनसे हाथों के द्वारा वन्दित ! हे गोपियों को अञ्जलि जोड़ने के लिये प्रार्थी ! हे गोपकन्याओं से नमस्कृत ! हे गोपियों को यस्त्र दायक ! हे गोपियों की कामना और कामनातीत वस्तु को देने वाले ! हे गोपियों के चित्त के महान् घोर ! हे उनके कामविष का उद्गारकारी सर्परूप ! हे गोपियों के भाव से विभावित ! आप मुझे निज गोपीदास्य दीजिये ॥ २२३ ॥ २२८ ॥ (नमः ५५)

हे वृन्दावन से दूरस्थिना विप्रपत्नियों का भाव से आकर्षित ! आप छत्राकार अशेष वृक्षों के दर्शन से हर्ष प्राप्त हुए हैं । आपने परोपकारी वृक्ष जन्म का अभिनन्दन किया है । आप यमुना के अमृत-

यज्ञपत्नीप्रसादार्थ-गोपक्षुद्रतिवर्द्धन ।
 लुधार्त्त-गोपवाग्ध्यग्र जय यज्ञाजयाचक ॥ २३१ ॥
 दुष्प्रज्ञ-यज्ञावज्ञात भक्तविप्रा-दिदक्षित ।
 ब्राह्मण्याकर्षकोदन्त यज्ञपत्नीमनोहर ॥ २३२ ॥
 ब्राह्मणीतापभिच्छिन्नवेशावस्थानभूषण ।
 जय द्विजसतीरलाधिन् यज्ञपत्नीप्रदायक ॥ २३३ ॥
 ब्राह्मणीकाकुसन्तुष्ट ब्राह्मणीप्रेमभक्तिद ।
 पतिरुद्धसतीसद्योविमुक्तिद नमोऽस्तु ते ॥ २३४ ॥
 यजमानीधित्तीर्णाश्रुत विप्रानुतापद ।
 स्वीयसगद्विजज्ञानप्रद ब्रह्मण्यदेव हे ॥ २३५ ॥ नमः ५७ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

मय जल से सिक्त हैं और गो-गोपों से परिसेवित हैं ॥ २३६ ॥ २३० ॥
 (नमः ५६)

हे श्रीकृष्ण ! आपने यज्ञ पत्नियों को कृपा करने के लिये ही सत्ताओं की लुधा की वृद्धि की तथा लुधार्त्त सराओं के वचन से व्यग्र हुए । आपने उनके द्वारा याज्ञिकों के यज्ञाज की याचजा की थी । आपकी जय हो । दुर्युद्धि उन्होंने मनुष्यज्ञान से आपका अनादर किया था । पश्चात् निजभक्त यज्ञ-पत्नियों को देखने के लिये आपकी इच्छा हुई । आपने वार्त्ता के द्वारा उनका आरुर्पण किया तथा उनसे शोभायमान हुए । हे यज्ञपत्नियों के तापहारी ! हे मनोहर बेप-भूषण वाले ! हे द्विजपत्नियों के प्रशंसाकारी ! हे उनके इष्ट-दायक ! हे उनके विनय वचन से सन्तुष्ट ! हे उनके प्रेम भक्ति के प्रदायक ! हे निज पति के द्वारा रुद्ध सती का सद्यःमोचनकारी ! आप को नमस्कार है । आप द्विजपत्नियों के अन्न के द्वारा तृप्त हुए थे । आपने विप्रों को अनुताप दान किया । निज २ पत्नियों के संग से उनका निज स्वरूप का ज्ञान हुआ । हे ब्रह्मण्यदेव ! आपकी जय हो ॥

जय वासवयागज्ञ पितृप्रष्टमसार्यक ।

श्रुततातोक्त-यज्ञार्य कर्मवादावतारक ॥ २३६ ॥

नानापन्यायप्राप्तौघ-शक्रयागनिगारक ।

गोवर्द्धनाद्रि-गोयज्ञप्रवर्त्तक नमोऽस्तु ते ॥ २३७ ॥

प्रोक्ताद्रि-गो-भग्ननिधे यज्ञदत्तोपहारभुक् ।

गोपनिवासनार्थाद्रि-ललस्थूलान्यस्पृष्टक् ॥ २३८ ॥

गोवर्द्धनशिरोरत्न गोवर्द्धनमहत्त्वम् ।

कृतभूपाशनाभीर-कारिताद्रि-परिक्रम ॥ २३९ ॥ नमः ५८ ॥

✽ इति दशमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ✽

जनिनेन्द्रकृप शक्रमन्वृष्टि-शमोन्मुखम् ।

गोवर्द्धनाचलोद्धर्त्तस्त्रा वन्देऽद्भुतविग्रहम् ॥ २४० ॥

लीलागोवर्द्धनधर प्रनरत्नापरायण ।

भुवानन्तोपरियस्त-द्वमानिभद्वमाभृदुत्तम ॥ २४१ ॥

॥ २३१ ॥ २३५ ॥

(नमः ५७)

१ हे इन्द्रयज्ञ के ज्ञाता ! आपने अपने पिता को यज्ञ का उद्देश्य पूछा तथा उनसे यज्ञका तात्पर्य अवगत हुए । आपने कर्मवान की अवतारणा की । नाना प्रकार के अपवाद देकर इन्द्रयज्ञ का खण्डन किया । आपने गोवर्द्धन पर्वत की पूजा के द्वारा गायज्ञ का प्रवर्त्तन कराया । आपको नमस्कार है । गो गोवर्द्धन यज्ञ की विधि आपने बतलाई । आपने सेव्य स्वरूप से यज्ञान्त उपहार का भोजन किया । गोपों के विश्वासार्थ पर्वत छल से स्थूलकाय धारण कर सब को उत्साहित किया । हे गोवर्द्धन के मस्तकरत्न ! हे गोवर्द्धन के महत्त्व दाता ! आपने गोपों से भूषित हो तथा नाना प्रकार भोजन कर पर्वत की परिक्रमा की ॥ २३६ ॥ २३८ ॥ (नमः ५८)

आपने इन्द्र का क्रोध उपान्न किया तथा इन्द्र ने अभिमान से जो वृष्टि की उसका उपशम करने में समर्थ हुए । उस समय आपने

गोवर्द्धनं च त्रदण्डभुजागलं महाबलम् ।
सप्ताहविधृताद्रीन्द्रमेघवाहनगर्वभित् ॥ २४२ ॥
सप्ताहैकपदस्थायिन् व्रजलुत्तुङ्गनुदीक्षणम् ।
जयभङ्गेन्द्रसङ्कल्पमहावर्षनिवारणम् ॥ २४३ ॥
स्वस्थानस्थापितगिरेगोपीदध्यक्षताचितम् ।
देवतासुमनोवृष्टिसिक्तवासवभीषणम् ॥ २४४ ॥ नमः ५६ ॥
ॐ इति दशमस्कन्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॐ
जयाद्भुतमहाचेष्टाविस्मितव्रजशङ्कितम् ।
गोपानुपृष्टजनकगोपोद्रीताखिलेहितम् ॥ २४५ ॥

गोवर्द्धन पर्वत का धारण किया । हे अद्भुत पराक्रम-वाले ! आप की वन्दना करते हैं । हे लीलामात्र से गोवर्द्धनधारणकारी ! हे व्रज के रक्षापरायण ! अनन्त देवके ऊपर न्यस्त पृथ्वी की तरह एक ही हस्त की एक ही अंगुलि में गिरिराज गोवर्द्धनधारी ! उस समय गोवर्द्धन छत्र रूप से विराजमान रहा था । आपके भुज मानों छत्रदण्ड की भाँति हुआ । हे महान् बलवान् ! आपने एक सप्ताह पर्यन्त पर्वतराज को धारण किया और उससे मेघवाहन इन्द्र का अभिमान दूर किया । आप सप्ताह पर्यन्त एक चरण में अवस्थित रहे । आपने दृष्टिपात से ही व्रजवासियों की लुधा-पिपासा को दूर किया । उससे इन्द्र का सङ्कल्प टूट गया । हे महावर्षा के निवारक ! आप की जय हो । अनन्तर आपने गोवर्द्धन पर्वत को पहले की भाँति निजस्थान में रखा । गोपियों ने दधि-अक्षतों से आपकी पूजा की । देवताओं की सुमन-वृष्टि से आप सिक्त हुए तथा इन्द्र के लिये भयानक हुए ॥ २४०-२४४ ॥ (नमः ० ५६-)

हे अद्भुत महान् चेष्टा के द्वारा व्रजवासियों को विस्मय तथा शङ्का उत्पादन करने वाले ! उस समय गोपों से आपके पिता को परिचय पूछा गया था और गोपों के द्वारा आपकी अखिलचेष्टा का गान

नन्दोत्तर्गसद्वास्य-गोपाशङ्कानिरासक ।

गोष्ठरक्षक मां रक्ष गोपालानन्दवर्द्धन ॥ २४६ ॥ नमः ६० ॥

❀ इति दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ❀

भीतलज्जितदेवेश-किरीटस्पृष्टपाद हे ।

चामयस्तुत सर्वज्ञ जितमायास्तदूपण ॥ २४७ ॥

धर्मपाल खलध्वंसिन् दुष्टमानघ्नचेष्टित ।

स्थीयापराधक्षमण शरणागतवत्सल ॥ २४८ ॥

शक्रशिक्षक शक्तवप्रव हे सुरभीक्षित ।

सुरभीप्रार्थितेन्द्रस्य श्रीगोविन्द नमोऽस्तु ते ॥ २४९ ॥

कामधेनुपय-पूराभिपित्तामरपूजित ।

ऐरावत-करानीत-वियद्गगाजलाप्लुत ॥ २५० ॥

गागोप-गोपिकानन्दिन् सर्वलोकशुभङ्कर ।

हर्षपूरितदेवेन्द्र जगदानन्दवर्द्धन ॥ २५१ ॥ नमः ६१ ॥

❀ इति दशमस्कन्धे सप्तविंशोऽध्यायः ❀

किया गया । नन्द ने गर्ग का सद्वास्य का अनुस्मरण कराकर उनकी शङ्का को दूर किया । हे गोष्ठरक्षक ! हे गोपों के आनन्द-वर्द्धक ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २४५ । २४६ ॥ (नमः ६०)

हे भीत और लज्जित देवेश इन्द्र के मस्तक किरीट से स्पर्शप्राप्त चरण कमल वाले ! हे चामय के द्वारा स्तुत ! हे सर्वज्ञ ! हे माया-दूपण से रहित ! हे धर्मपालक ! हे खलध्वंसिन् ! हे निज चेष्टा के द्वारा खलों के अभिमान नाशक ! हे निज से इन्द्रापराध के क्षमाकारी ! हे शरणागत वत्सल ! हे इन्द्र को शिक्षा देने वाले ! हे इन्द्राधिकार प्रदायक ! हे सुरभी के द्वारा स्तुत ! हे सुरभी के द्वारा इन्द्रत्व के लिये प्रार्थित ! हे श्रीगोविन्द ! आपको नमस्कार है । हे कामधेनु की दुग्धधारा से अभिपित्त ! हे देवपूजित ! हे ऐरावत हस्ति के द्वारा

प्रसीद मे पयोमग्न-नन्दान्वेपिन् पितृप्रिय ।
 वरुणालयसंप्राप्त वरुणभीष्टदर्शन ॥ २५२ ॥
 वरुणार्चिचतपादाञ्ज वरुणातिप्रसादित ।
 वरुणागःक्षमाकारिन् नन्दबन्धविमोचन ॥ २५३ ॥
 नन्दभावितमाहात्म्य गोपहानातिवैभव ।
 गोपसंकल्पविज्ञातः करुणाकुलमानस ॥ २५४ ॥
 स्थलोलोकलोकसंहृष्ट-गोपवर्गार्यवर्गद ।
 ब्रह्महृदोद्भृताभीराभीष्टब्रह्मपदप्रद ॥ २५५ ॥ नमः ६२ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॐ

जय जय निजपादाम्भोजसत्प्रेमदायिन्
 रसिकजन-मनोहृद् रसलीलाविनोदिन् ।
 विद्युतमधुरकैशोरातिलीलाप्रभाव
 प्रियजनघशक्तिन् व्यक्त-सत्यस्वभाव ॥ २५६ ॥

आनीत आकाशगंगा के जल से स्नात ! हे गो-गोप गोपियों के आ-
 नन्दकारी ! हे समस्त लोक के मङ्गलकर ! हे इन्द्र को प्रसन्नकारी !
 आप जगत् के आनन्द वर्द्धक हैं ॥ २५७ ॥ २५१ ॥ [नमः ६१]

हे जलमग्न नन्द के अन्वेपणकारी ! हे पितृप्रिय ! हे वरुणालय
 गमनकारक ! हे वरुण के अभीष्टदर्शक ! हे वरुण के द्वारा अर्चिचत
 चरणकमल ! हे वरुण को अति प्रसादित करने वाले ! हे वरुण का
 अपराध के क्षमाकारी ! हे पिता के बन्धविमोचन ! उस समय नन्द
 ने ब्रजवासियों को आपकी महिमा सुनाई तथा गोपों ने आपके अत्य-
 न्त वैभव को जाना । उस समय गोपों ने महा वैकुण्ठ का दर्शन कर-
 ने का संकल्प किया । आप करुणा से व्याकुल मन होकर उन्हें निज
 लोक वैकुण्ठ का दर्शन कराकर प्रसन्न करने लगे तथा उनकी कामना
 को आपने पूरा किया । ब्रह्महृद में पहले उन्हें भग्न कराकर पश्चात्
 उन्हीं को उठाया तथा उनको अभीष्ट ब्रह्मपद वैकुण्ठ का अनुभव क-

त्यक्तात्मरामतामाय तुन्द्रीकृतनिजागम ।

भक्तप्रार्थ्यनिजप्रेमधारानार्थरसकृत् ॥ २५७ ॥

शरन्निरा-निहारोत्त चन्द्रोदयरताशय ।

गोपी-प्रिमोहनोद्गीत परमाकर्षणदित ॥ २५८ ॥

अनादृतनिपेयोपी-कृतगोपसतीगण ।

त्यक्त-सर्वधियापेक्ष-गोपस्त्रीप्राप्तसङ्गम ॥ २५९ ॥ नमः ६३ ॥

प्रसीद भर्तृसरुद्धगोपी-प्रेमाग्निवर्द्धन ।

• रसकामोन्मत्तगोपस्त्रीनेहवन्वप्रिमोचन ॥ २६० ॥

राया । हे एतादृश आप प्रसन्न हों ॥ २५७ ॥ २५५ ॥ (नम ६२)

हे निज-चरणरमलों के सत् प्रेम के दाता । हे रसिकपनों के मन-हरणकार । हे रसलीला के विनोदी । आपने मधुर मनकैशोर का प्राकट्य कर अति लीला प्रभाव का विस्तार किया । आप मिय-जन के वेशनर्ती हैं । आपका सत्य स्वभाव जगत् में व्यक्त है । आप ने आत्माराम के अभिमान का त्याग कर भगवत्ता के आविष्कार के द्वारा परन्तार के साथ निनाद किया । क्योंकि रसप्रसंग में आत्मारामता आवश्यक नहीं थी । प्रतीप आचरण के द्वारा यह दिखाया कि मैं वेद विधि से पर हूँ । भक्तों के प्रार्थनीय निज प्रेमामृतधारा के प्रदानार्थ आपने रसलीला की । शरत्कालीन रात्रि का अलोलोम्बन कर आप निहारार्थ उत्सुक हुए । उस समय पूर्ण चन्द्रमा का उदय था । गापियों को मोहित करने के लिये आप वशी बनाने लगे । उन के आर्पण विश्वास को आप भली भाँति जानते थे । गोपसतियों सब का अनादृत कर वाया निधनों का उलघन करती हुई आपके पास आई थी । उस समय उन्होंने सकल क्रिया को तिलाञ्जलि दे आपकी प्राप्त की । हे एतादृश । आपकी जय हो जय हो ॥ २५६ ॥ २५६ ॥

शुकक्रोधोत्तिनिर्णीत-महामहिमसागर ।
 क्रोधादिभजमानार्थप्रदस्मरण मा स्मर ॥ २६१ ॥ नमः ६४ ॥
 गोपिकानयनास्त्राय गोपीनञ्चनवाक्पटो ।
 गोपीमिष्टोक्तिशुभ्रपा-स्वधर्मभयदर्शक ॥ २६२ ॥
 गोपीमहाविचिस्तारिन् गोपीरोदनचर्द्धन ।
 गोप्यर्थिताङ्गससग गोपीकामूक्ति निर्वृत ॥ २६३ ॥
 अयद्विस्था-परित्यक्त प्रोद्यन्मानस प्रिञ्जिय ।
 धूर्त्ताप्रगण्य मा पाहि काममुग्र स्मितानन्त ॥ २६४ ॥
 व्यक्तस्त्रभाजमधुर स्मरलोलितलोचन ।
 गोपीमनोहरपाग गोपिकारातयूयप ॥ २६५ ॥

हे पति के द्वारा निरोधित गोपियों के प्रेमाग्नि वर्द्धनरील ! हे निज कामोन्मत्त गोपस्त्रियों का देहवन्ध के रिमोचक ! शुकदेव ने आक्षेप के साथ आपके महिमा सागर का निखेय किया है । आपका स्मरण काम क्रोधादि भाव से भजनकारियों को भी पुरुषार्थदायक है । आप मेरा स्मरण रखे ॥ २६० ॥ २६१ ॥ [नमः ६४]

हे गोपिया के नयन के द्वारा आस्त्रायमान ! हे गोपियों के वञ्चनार्थ वाग्बिलास में चतुर ! हे गोपियों के परिहास गर्भ मधुरवचन सुनने के लिये धर्मभय के दर्शक ! हे गोपियों को उस समय महान् पीडा विस्तारकारी ! हे गोपियों के रोदन की वृद्धि करने वाले ! उस समय उन्होंने आपके अग सग की प्रार्थना की । उनके विनय युक्त वचनों से आप परमसुखी हुए और निज भाव गोपन नहीं कर सके । आपकी मन की इच्छा उद्वल उठी । हे धूर्त्तशिरोमणि ! हे काम-मोहित ! हे स्मितवदन ! मेरी रक्षा कीजिये । आपका भीतरका भाव व्यक्त हो जाने पर आप परम मधुर हुए । स्मरचेष्टा से आपके नयन युगल लोलायमान हो गये । आपकी अपागदृष्टि गोपिया के लिये मनोहर थी । शत शत गोपियूथों के आप रक्तक हुए । हे वैजयन्ती-

वैजयन्तीस्त्रगाङ्ग्य शरच्चन्द्रनिभानन ।

यमुनापुलिनासीन गोपीरमण पाहि माम् ॥ २६६ ॥

जितमन्मथ सन्त्रप्त गोपीमानविवर्द्धन ।

गोपिक्रान्तिप्रसादार्थकृतान्तर्धानविभ्रम ॥ २६७ ॥ नमः ६५ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे ऊनत्रिशोऽध्यायः ॐ

जय गोपीगणान्विष्ट वृद्धसंप्लुष्टशेन ।

तुलसी-मालती-मल्ली-यूथिकापृष्ट-वीक्षण ॥ २६८ ॥

क्षिरयुत्सव-समालोक-सम्भावित-समागम ।

गङ्गापृष्ठादिप्रपापृष्टलतोत्पुटाक-सूचित ॥ २६९ ॥

उन्मत्तगोपयोग्योप गोपिकानुकृतेद्दिन ।

जय गोपीगणाविष्ट स्वभावापितगोपिक ॥ २७० ॥

माला से विभूषित ! हे शरच्चन्द्रमा की भोंति सुन्दर वदन वाले !
हे यमुना की पुलिनावली में विराजमान ! हे गोपीरमण ! हे मन्मथ-
रीति को जानने वाले ! हे गोपियों के मान वर्द्धक ! हे गोपियों का
सौभाग्य जगत् में दिखाने के लिये अन्तर्धानकारी ! मेरी रक्षा की-
जिये ॥ २६२ । २६७ ॥ (नम० ६५)

हे गोपियों के द्वारा अन्वेषित ! उस समय उन सबने उन्मत्त हो
कर आपके दर्शन के लिये वृद्धों से पूछा । तुलसी, मालती, मल्ली, यू-
थिकादि लताओं के लिये भी आपके दर्शन की वात्ता पूछने लगी ।
पृथिवी में उत्सव दायक आपके ध्वज वज्रादि अंकित चरणचिह्नों
का अवलोकन कर उन सबने आपके आगमन की सम्भावना की ।
उन्होंने हरिणियों के दर्शन अभिनिवेश से, वृद्धों के फल-पुष्पों से नम्र-
ताभाव के द्वारा तथा लताओं का पुलकांकुर दर्शन से आपके आगमन
का निर्द्धारण किया था । आपने गोपियों को उन्मादिन किया । वे सब
आपका अनुकरण करने लगी । हे एतादृश ! आपकी जय हो । हे
गोपिगण में आविष्ट ! गोपियों के द्वारा, अपने अपने भाव का कि-

गोपीलक्षितपादाब्ज-लक्ष्ममार्गित-पद्धते ।
 अन्यस्त्रीयुक्तपादाब्जचिह्नेष्वा-गोपिकार्त्तिद ॥ २७१ ॥ नमः ६६ ॥
 राधारणित राधेश राधिका-प्राणवल्लभ ।
 राधारमण बन्दे त्वां राधिकप्रेमनिर्जित ॥ २७२ ॥
 राधासंन्यस्तसर्वस्व स्त्रीस्त्रैण्यगतिदर्शक ।
 राधानुतापसंमोहरान्तर्धान-कौतुक ॥ २७३ ॥
 सखीगणाप्रराधोक्त तद्विस्मापनचेष्टित ।
 राधासहितगोपस्त्री-मुहुर्मार्गित पाहि माम् ॥ २७४ ॥ नमः ६७ ॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ❀
 पुनःपुलिनसंप्राप्त गोपीगीतार्थितोदय ।
 जन्ममात्रप्रजश्रीद स्वजनान्येपणार्त्तिद ॥ २७५ ॥

किंचित् अनुभव प्राप्त किया । गोपियाँ आपके चरणचिह्न से अङ्कित मार्ग का अनुसन्धान करने लगीं । अन्य कोई स्त्री से युक्त चरणचिह्न का अवलोकन कर उनकी अत्यधिक आर्त्ति बढ़ने लगी । हे एतादृश । आपकी जय हो ॥ २६८ । २७१ ॥ (नमः ६६)

हे राधिका के द्वारा आराधित ! हे राधापति ! हे राधिका के प्राणवल्लभ ! हे राधारमण ! राधिका के प्रेम से पराजित आपकी बन्धना करता हूँ । हे राधिका में सर्वस्व अर्पित ! हे लोकशिक्षा के लिये स्त्री और कामियों की यथाक्रम से दुरात्मता और दैन्यरूप गति के दर्शक ! उस समय आपने राधिका को अनुतापित और मोहित करते हुए अन्तर्धान कौतुक का अवलम्बन किया । श्री राधा ने सखियों से प्राप्त होकर समस्त बात सुनाई । आपकी चेष्टा उन सबका विस्मापक है । उस समय राधिका जी गोपस्त्रियों से मिलकर आपका वार वार मार्गानुसन्धान करने लगीं । हे एतादृश ! मेरी रक्षा कीजिये । ॥ २७२-२७४ ॥ (नमः ६७)

हे पुनर्वार पुलिन में उपस्थित गोपियों के गान द्वारा आगमन

हृगञ्जहन्यमानस्त्रीवध-निःशङ्कहृदय ।
 विषादिनानादुःखघ्न स्वीयार्त्तिघ्नाऽन्तरात्मदृक् ॥ २७६ ॥
 विश्वरक्षार्थसञ्जात भक्ताभयद-हस्त हे ।
 स्वजनप्राप्त्यसंस्पर्श नानागुणपदाम्बुज ॥ २७७ ॥
 मनोज्ञ-मधुरालाप दासीगणविमोहन ।
 श्रुतिमङ्गलसन्तप्रणार्थदकथामृत ॥ २७८ ॥
 मनःक्षोभकमाधुर्य्य मृदुलाङ्घ्रिवनाटक ।
 युगायितयियोगाणो मनोहृदयमृत ॥ २७९ ॥
 सर्वत्यागार्थितगते महामोहनरूप हे ।
 ब्रजमङ्गलकृद्व्यक्ते स्वजन-प्रार्थ्यपूरक ॥ २८० ॥

के लिये प्रार्थित ! हे जन्ममात्र से ही ब्रज में श्री के दाता ! हे निज-
 जनों की आर्त्ति को बढ़ाने वाले ! आप नयनकमल से हन्यमानास्त्रियों
 के वध में निशङ्क हृदय वाले हैं तथा विषादि नाना प्रकारके दुखों के
 नाशकारी हैं । आप निजजनों की आर्त्ति को जान लेते हैं क्यों कि
 आप सबके अन्तरात्मा को जानते हैं । आपने विश्व की रक्षा के लि-
 ये अवतार लिया है । आपके हस्तकमल भक्तों को अभय देने वाला
 है । निज जन गोपियों ने आपका संस्पर्श की प्रार्थना की है । आपके
 चरणकमल नाना गुणों की रत्न है । हे मनोहर मधुर आलापकार !
 हे निजदासियोंके विमोहित कारक ! आपका कथामृत श्रवण मङ्गलरूप
 तथा प्राण-अर्थ को देने वाला है । आपका माधुर्य्य जगमन का क्षोभ
 कारक है । आप कोमलचरणों से वृन्दावन में विचरण करने वाले हैं ।
 आपका निमेषमात्र विरह गोपियों के लिये युग की भौति प्रतीयमान
 होता है । आपका अग्रामृत मन हरणकारी है । जो सर्वस्व परित्याग
 कर आपके शरण में आता है उसे आप रक्षादिक के लिये दृढव्रत हो
 जाते हैं । हे महामोहन रूपधारी ! हे ब्रजमङ्गल के लिये अभिव्यक्त !
 हे निजजन की प्रार्थना के पूरणकारी ! हे वृन्दावन के कण्टकमय

अतिकोमलपादाब्ज-कण्ठकारण्यसञ्चर ।

गोपस्त्रीजीविताकर्पि-दुर्गभूध्रमणाऽन माम् ॥२८१॥ नम ६८॥

ॐ इति दशमस्कन्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॐ

अत्युच्चगोपिकादुःख-रोदनोन्मथितेन्द्रिय ।

जय गोपीपुनर्दृष्ट-स्मयमान-मुखाब्जुज ॥ २८२ ॥

श्रीमन्मदनगोपाल पीतकौशेयप्रस्त्रधृक् ।

प्रीत्युत्फुल्लाक्ष-गोपस्त्री-वेष्टित प्राणनायक ॥ २८३ ॥

वल्लरीस्तनसत्ताडिघ्न गोपीनेत्राब्जपट्पद ।

गोपस्त्रीविरहार्तिघ्न वल्लरीकामपूरक ॥ २८४ ॥

गोपीचेलाञ्चलासीन गोपीगण-सभाजित ।

जय गोपीसदोजाताधिक-श्रीराममान है ॥२८५॥ नम. ६९॥

अरण्य में अति कोमल चरणों से सञ्चरण शील । गोपियों आप के अरण्य प्रदेश में इस प्रकार विचरण देखकर मृतप्राया हो जाती थीं ।

हे एतान्श । आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ १७५-२८१ ॥ [नम० ६८]

अत्यन्त उच्च स्तर से गोपियों ने जो दुःखमय रोदन किया है उससे आपके इन्द्रियगण व्याकुल हो गया था । आप नहीं रह सके । हँसते हुए उनके बीच में उपस्थित हुए । हे श्रीमन् मदन-गोपाल । हे पीत-कौशेय वस्त्रधारी । हे प्रीति से परिफुल्ल नेत्र वाली गोपस्त्रियों से वेष्टित । हे उनके प्राणनायक ! हे गोपियों के उत्तम स्तनकमल में चरणकमल के अर्पक । हे गोपियों के नेत्ररूप कमलों के भ्रमर । हे गोपस्त्रियों के विरह नाशक । हे उनके काम पूरक । उस समय गोपियों ने निज निज वस्त्राञ्चल को बिछा कर उस आसन पर आपको बैठाया । आप उनकी सभा में विराजमान हुए । हे गोपियों की सभा में सर्वविलक्षण श्री के प्रकाश के द्वारा राजमान । आपकी जय हो ।

(नम० ६९)

॥ २८२ ॥ २८५ ॥

विदग्धगोपिकागाढ-त्रिप्रश्नोत्तरदायक ।

विज्ञातगाप्यभिप्राय महाचतुर-सिंह हे ॥ १८६ ॥

स्वयानुत्थाताकृतज्ञत्वादिदोष-परिहारक ।

निजासाधारणप्रेम-कारुण्यस्थापकाऽव माम् ॥ १८७ ॥

स्वीयसङ्गापरित्यागिन् स्वदानातृप्रमानस ।

* प्रियोपकार-संश्रयप्र विरहप्रेमवर्द्धन ॥ १८८ ॥ नमः ७० ॥

❀ इति दशमस्कन्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ❀

गोपीविरह-मन्तापहरालिङ्गन-कोविद ।

रासनीडारसाकृष्ट जय गोपीप्रियङ्कर ॥ १८९ ॥

रासोत्सव-समारम्भन् गोपीमण्डल-मण्डित ।

गोपीहेममणिश्रेणी-मध्यमध्य-हरिन्मणि ॥ १९० ॥

विदग्धा गोपियों ने गाढ रूप से तीन प्रश्न किये थे । आप ने उन के प्रश्नों का स्पर्श नहीं कर चतुराई से उत्तर दिया । आपने गोपियों का अभिप्राय जान लिया क्योंकि आप चतुरशिरोमणि हैं । आपने अपनी कथा से अकृतज्ञत्वादि दोष का परिहार कर अपने असाधारण प्रेमकारुण्य की स्थापना की । आप के लिये जो लौकिक-वैदिक सकल मर्यादा का लघन करते हैं, आप उनके निजनिषयक आनुगत्य वदाने के लिये यद्यपि क्षण भर के लिये विरह प्रदान करते हैं तो भी कदापि उनके मग का नहीं परित्याग करते हैं । आप उनके लिये अपने को शान करने पर भी उममे वृत्त नहीं होने हैं । प्रेयसियों के उपकार के लिये अथ निःस्व न्यप्र चित्त रहते हैं हम लिये उनको विरह देकर प्रेम की वृद्धि करते हैं । हे एतादृश ! आप मेरी रक्षा कीजिये ॥ १८६ ॥ १८८ ॥

(नमः ७०)

हे गोपियों के विरह मन्ताप हरणकारी ! हे गोपियों को आलिङ्गन करने में कोविद ! हे रासनीडारस मे आकृष्ट ! हे गोपियों के प्रियकारी ! आपकी जय हो । हे रासोत्सव आरम्भकारी ! हे गोपि-

स्वस्वपार्श्वस्थितिज्ञानानन्दितस्त्रीगणावृत ।
 देवतागणगीतादिसुसेवित नमोऽस्तु ते ॥ २६१ ॥
 गोपिकोद्गीत-सुप्रीत नृत्यगीत-विचक्षण ।
 स्वात्मास्यदत्तताम्बूल आन्तगोपीधृतांसक ॥ २६२ ॥
 स्वानुरूप-ब्रजवध-नृत्य-गीतादि-हर्षित ।
 विमोहितशशाङ्कादि-स्थैर्य-राश्र्यतिदैर्घ्यकृत् ॥ २६३ ॥ नमः ७१ ॥
 विदग्धवल्लवीवृन्द-रतिचिन्हाङ्कितांग हे ।
 रतिभ्रान्तब्रजवधूमुरमाज्जन-तत्पर ॥ २६४ ॥
 जलक्रीडातिकुशल स्वमालालिकुलावृत ।
 सहासगोपिकाप्रात-सिष्यमान नमोऽस्तु ते ॥ २६५ ॥
 यमुनाजललीनाङ्ग कालिन्दीकेलिलोलित ।
 यमुनातीरसञ्चारिन् कृष्णकुञ्जरतिप्रिय ॥ २६६ ॥

मगडल से मरिडत ! हे गोपीरूप सुवर्ण-मणियों के मध्य मध्य में इन्द्र-
 नीलमणि स्वरूप ! उस समय गोपियों में प्रत्येक ने ऐसा समझा कि
 हमारे पास ही श्रीकृष्ण विराजमान हैं । उन सब गोपियों ने आन-
 न्दित होकर आपको बीच में रख नृत्यगान किया था । देवताओं ने
 भी गीतादि के द्वारा आपकी सेवा की । हे एतादृश ! आपको नम-
 स्कार है । हे गोपियों के गान में सुप्रीत ! हे नृत्य गीतमें विचक्षण !
 हे ताम्बूलचर्चण कर निज मुर से गोपियों को प्रदान करने वाले !
 हे रासपरिभ्रान्त राधिन के स्कन्ध धारणकारी ! हे निजानुरूप ब्रज-
 वधुओं के नृत्य-गीतादिकों में हर्ष प्राप्त ! उस समय आकाश में च-
 न्द्रमादि विमोहित होकर स्थिर हो गये तथा रात्रि अति दीर्घ हो गई ।
 हे विदग्ध गोपियों के रतिचिह्न से अङ्कित सव्यांग ! हे रति परिभ्रान्त
 ब्रजवधुओं के मुरमाज्जन में तत्पर ! आपको नमस्कार है ॥ २६६-
 २६५ ॥ (नमः ७१)
 हे जलक्रीडा में अतिकुशल ! हे भ्रमरों से वेष्टित पुष्प वनमालाधारी !

जय श्रीराधिकासक्त जय चन्द्रावलीरत ।
 पद्मास्यपद्मपानाले ललितापाङ्गलालित ॥ २६७ ॥
 विशाखार्थविशेषार्थिन् श्यामलारतिनिर्मल ।
 भद्राभद्ररसावीन धन्या-प्राण-धनेश्वर ॥ २६८ ॥
 गोपजन्मागतस्वस्त्रीनिरन्तरविलासकृत् ।
 गोपीलम्पट हे गोपीस्तन-कुङ्कुममण्डित ॥ २६९ ॥ नमः ७२ ॥
 परीक्षितपृष्टरासार्थ शुकोत्तैश्वर्य्यसञ्चय ।
 मुमुक्षु-मुक्त-भक्तार्थ-सच्चिदानन्दचेष्टित ॥ ३०० ॥
 गोपीमहामहिमद् गोपासूयाद्यनास्पद ।
 गोपापितृगृहापत्य-पत्नीप्राण प्रसीद मे ॥ ३०१ ॥ नमः ७३ ॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ❀

हे हास्यसुधा से गोपियों के सिञ्चनकारी ! आपको नमस्कार है ।
 हे यमुनाजल मे उन्मज्जित ! हे यमुना मे खेल करन के लिये लोला-
 यमान ! हे यमुना के तार सञ्चरणशील ! हे यमुना के कुञ्ज में रात-
 प्रिय ! हे राधिका मे आसक्त ! हे चन्द्रावली मे रत ! आपको
 जय हो । हे पद्मा के मुखकमल के पान के लिये अमररूप ! हे ललि-
 ता के कटाक्षदृष्टि से लालित ! हे विशाखा के प्रेमधन के लुब्धचित्त-
 चाले ! हे श्यामला की विशुद्ध रति से निर्मल ! हे भद्रा के श्रेष्ठ
 शृंगार रस के अधीन ! हे धन्या के प्राणधन के ईश्वर ! हे गोपज-
 न्म प्राप्त नित्यप्रियागण के साथ निरन्तर विलासकारी ! हे गोपील-
 म्पट ! हे गोपियों के स्तन कुङ्कुम से रञ्जित ! आपकी जय हो ॥ २६५-
 २६९ ॥ (नमः ७२)

महापूज परीक्षित ने शुक्रदेव जी के लिये आपके रास का तात्पर्य्य
 पूछा था । शुक्रदेव जी ने आपका परम ऐश्वर्य्य का वर्णन कर परी-
 क्षित का सन्देह दूर किया । आप मुमुक्षु-मुक्त और भक्त के लिये
 नित्य सच्चिदानन्दमयी चेष्टा करते हैं । हे गोपियों की महामहिमा

जयाम्बिकावनप्राप्त सारस्वतजलाप्लुत ।
 निजपादाम्बुजस्पृष्टनन्दग्राहिमहोरग ॥ ३०२ ॥
 विद्याधरेन्द्र-शापघ्न जय नन्दविमुक्तिद ।
 आधिताहि-पुरावृत्त सुदर्शनविमोचन ॥ ३०३ ॥ नमः ७४ ॥
 कामपालसहक्रीडा-सम्मानितनिशामुख ।
 मनाहरमहागीत-मोहित-स्त्रीगणवृत्त ॥ ३०४ ॥
 शङ्खचूड-परित्रस्त-गोपिकाक्रोशधावित ।
 स्त्रीरक्षास्थापितबल शङ्खचूड-शिरोहर ॥ ३०५ ॥
 शङ्खचूड-शिरोरत्न-प्रीणितप्रज पाहि माम् ।
 अन्योन्य-गोपीसायन्त्यानुत्पादक नमोऽस्तु ते ॥ ३०६ ॥ नमः ७५ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॐ

के दिग्गजाने वाले ! आप गोपों के द्वारा जो असूयादिक हैं उनके विषय नहीं रहे । अर्थात् परम साधुवाद के योग्य हुए । इसलिये गोपों ने गृह-पुत्र-स्त्री-प्राणादिक आपको अर्पण कर दिये । हे एतादृश आप प्रसन्न हो ॥ ३०० ॥ ३०१ ॥ (नम० ७३)

हे अम्बिकावन में उपस्थित ! हे सरस्वती के जल में स्नात ! वहाँ अजगर सर्प ने आपके पिता को मार डाला । वह सर्प आपके चरणस्पर्श पाकर शाप मुक्त हो अपने पहला विद्याधर रूप का धारण करने लगा । हे नन्द के विमोचनकारी ! आपने उस अजगर से पूर्व-जन्म की वार्ता मज्जवासियों को सुनाया । हे सुदर्शन-विमोचन ! आपकी जय हो ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ (नम० ७४)

हे बलदेव के साथ होरीक्रीड़ा के द्वारा दिवस का शेषभाग को सम्मानन देने वाले ! मनाहर गानों से मोहित स्त्रीगण के द्वारा परि-वेष्टित ! हे शङ्खचूड से भयभीत गोपिका श्रीराधिका के क्रन्दन से धावित ! हे गोपियों के रक्षार्थ बलदेव जी का नियोग करने वाले ! हे शङ्खचूड के शिरोरत्न के हरणकारी ! हे शङ्खचूड के मस्तकरत्न प्र-

अहविह-सन्तप्त गोपी-गीतगुणोदय ।
 जय शोभा विनिस्तार-प्रकारात्युच्चकीर्तन ॥ ३०७ ॥
 साचीकृताननान्भोज व्यत्यस्त-पदपल्लव ।
 नर्तितभ्रुयुगापाग वेणुवाद्यनिशारद ॥ ३०८ ॥
 विश्वमोहनरूप त्वा सिद्धस्त्रीकामवर्द्धनम् ।
 बन्दे चित्रायिताशेष-त्रजारण्यपशुत्रजम् ॥ ३०९ ॥
 अनाहितप्रजहौघ लतादिमधुवर्षक ।
 स्वपाशार्पितह सादे परन्यन्छत्रसेवित ॥ ३१० ॥
 ब्रह्माद्यतर्कसंगीत कामार्पक-समीक्षण ।
 स्वपदोद्धृतभूताप वनितातरुभाजकृत् ॥ ३११ ॥

दान के द्वारा बलदेवजी के प्रसन्नकारक । मेरी रक्षा कीजिये । इससे
 गोपियों का परस्पर सापल्य नहीं हुआ । किसी गोपी को देते तो अ-
 पश्य असूया उत्पन्न होती । इसलिये बलदेव जी को आपने उस रत्न
 को दिया । हे एतादृश ! आपको नमस्कार है ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

[नमः ७५]

दिवस में आपका वनगमन से निरहानुर होकर गोपियाँ आ-
 पका गुणगान करती थीं क्योंकि आपका उच्च स्वर से गुण-कीर्तन
 उनके शोक सागर का निगारक होता था । आप वाम बाहु के ऊपर
 वाम कपोल रत्न चरण के ऊपर चरण धर त्रिभंगी भंगी से खड़े
 होते थे । भ्रुयुगल को नचाकर अपाङ्गनट्टि को छोड़ते थे । आप वेणु-
 वाद्य में परम परिणत हैं । हे विश्वमोहनरूप वाले ! हे सिद्धस्त्रिया के
 कामवर्द्धक ! वन में मरल पशुओं को चित्र की भाँति कर देने वाले
 आपकी वन्दना करना हूँ । आप वंशीध्वनि में नटियों के प्रयाद को
 रोध करने वाले हैं तथा लताओं में मधुगारा को बनाने वाले हैं ।
 वंशीध्वनि से मुग्ध होकर हंसगण में आप चारों ओर से घिर जाते
 थे । भोज छत्र की भाँति वनर आपकी सेवा करना था । आप की

हृतचित्तमृगीप्राप्त-दिनान्तश्रान्तिकान्तित ।
 यमुनास्नानरभ्याङ्ग सुगन्धवायु-प्रपूजित ॥ ३१२ ॥
 ब्रह्मादिवन्द्यमानाङ्घ्रे सुहृदानन्द चर्द्धन ।
 मदच्छुरितलोलोलाक्ष मुदिताननपङ्कज ॥ ३१३ ॥
 चनमालापरीताङ्ग गजेन्द्रगतिसुन्दर ।
 गोपिकाभाषितोत्कर्ष हृष्टमातृक पाहि माम् ॥ ३१४ ॥ नमः ७६ ॥
 ❁ इति दशमस्कन्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ❁
 अरिप्रवासिताशेष-व्रजाश्वासक रक्ष माम् ।
 स्वभुजास्फोटनाह्वान वृषभासुरकोपन ॥ ३१५ ॥
 उत्पाटितविपाणाम्र घातितोम्रवृषासुर ।
 गोकुलारिप्रविध्वंसिन् अरिष्टासुरभञ्जन ॥ ३१६ ॥ नमः ७७ ॥

गानगला ब्रह्मादिक के लिये भी दुर्जय थी । आप ईच्छामात्र से नारियों के हृदय में काम उत्पन्न कर देते थे । आपने निज-चरण से पृथिवी का ताप दूर किया । वनितायें भाव से स्तब्ध हो जाती थीं । हरिणीगण हृतचित्त होकर आपका संग नही छोड़ते थे । जब आप सायाह्न में गौओं का सम्भाल करते थे तब उनकी विश्रान्ति होती थी । हे यमुना के स्नान से रम्याङ्ग ! हे सुगन्धमय वायु से सेवित ! हे ब्रह्मादि के द्वारा वन्द्यमान चरण ! हे सुहृदों के आनन्द चर्द्धक ! हे मद-विधूर्णितलोचन ! हे प्रसन्नवदन वाले ! हे चनमाला से घेष्टित ! हे गजेन्द्र गमन से सुन्दर ! हे यशोदा के द्वारा उत्कर्ष आवित ! हे माता के प्रसन्नकारी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३०७ । ३१४ ॥

(नमः ७६)

हे अरिष्टासुर के द्वारा भयभीत समस्त व्रजवासियों को आश्वासन देने वाले ! हे निजभुजों के आस्फाटन के द्वारा उसको आह्वान करो ! हे वृषभासुर के कोपकारक ! हे उसके सींग के उत्पाटनकारी ! हे वृषभासुर के नाशक ! हे व्रज में अरिष्टों के विध्वंसकारी ! हे अ-

नारदज्ञापितोदन्त-कंस-दुर्मन्त्र-वर्द्धन ।
 कंससंप्रार्थिताक्रूर-पुरानयन पाहि माम् ॥ ३१७ ॥
 दुष्टोपाय-दुरोधोग-शताकुलित-कंसराट् ।
 राजज्ञानन्दिताक्रूर जय दानपतिप्रिय ॥ ३१८ ॥ नमः ७८ ॥
 : ❀ इति दशमस्कन्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ❀
 जय गोकुलसंत्रासि-केशि-विक्षेपण प्रभो ।
 ह्यासुरमहास्यान्तःप्रवेशितमहाभुज ॥ ३१९ ॥
 हेलाहतमहादैत्य जय केशिनिसूदन ।
 केशधं केशिमथनं वन्दे त्वां देवतार्चिचतम् ॥ ३२० ॥ नमः ७९ ॥
 जय भागवतभ्रेष्ठभ्रीनारद-समीडित ।
 अपरिच्छिन्नसन्मूर्त्ते सूर्यजीवेश्वरेश्वर ॥ ३२१ ॥

रिष्टासुरनाशन ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३१५ । ३१६ ॥ [नमः ७७]

अथ ब्रजलीला की समाप्ति कर मथुरा गमन लीला का उद्घा-
 टन करत हैं-नारद जी के द्वारा आपने कंस को समस्त रहस्य सुना
 कर उसकी दुर्मन्त्रणा की शृद्धि करायी । कंस ने अक्रूर से आपको
 मथुरा ले जाने के लिये प्रार्थना की । आपने सय कुछ करवाया । आप
 मेरी रक्षा कीजिये । कंस ने आपको मारने के लिये शत शत मन्द उ-
 पायों का उद्योग किया । कंस की आज्ञा प्राप्त होकर अक्रूर जी वड़े
 प्रसन्न हुए । हे दानपति अक्रूर के प्रिय ! आपकी जय हो ॥ ३१७ ॥ ३१८ ॥
 [नमः ७८]

हे गोकुल में भय उत्पादन करने वाले केशी दैत्य को शन धनु
 परिमित दूरस्थान में फेंक देने वाले ! हे प्रचुरशक्तिमान् ! आपने ह-
 यामुर के यदन में अपने विशाल भुजा का प्रवेश करवाया तथा हेला
 मात्र से उसे मार डाला । हे केशीनारदन ! केशिमथन, देवताओं से
 अर्चिचत केशध आपकी वन्दना करना हैं ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

[नमः ७९]

सृष्टिस्थित्यन्तरुन्मायागुणसृक् सत्यवाञ्छित ।
 ऋषिबावस्मृतत्रेवार्थ-कंस-संहरणादिक ॥ ३२० ॥
 नारदज्ञापिताशेषकार्य-स्वीकारबोधिद ।
 दर्शनोत्सव-सदृष्ट-श्रीनारद-नमस्कृत ॥ ३२३ ॥ नमः ८० ॥
 हे मेपायितगोपाल-पालन-स्तेयविभ्रम ।
 गोपवेशधर-न्योमचौर्यनीत-सुहृद्गण ॥ ३२४ ॥
 दुष्टन्योमासुरप्राहिन् जय व्योमनिपातन ।
 मयपुत्रगुहारुद्ध-गोपवर्गपिमोक्षक ॥ ३२५ ॥ नमः ८१ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॐ
 जय दानपतिभ्यात-महामहिमसङ्घय ।
 सल्लक्ष्णार्थसद्भाव्याक्रूरसम्भाजिनेदण ॥ ३२६ ॥

हे भागवत श्रेष्ठ श्रीनारदजी से मन्थक् स्तुत्य । हे अपरिच्छिन्न मूर्ति स्वरूप । हे सर्व जीवों के ईश्वर के ईश्वर । आप सृष्टि स्थिति अन्तकारिणी माया के द्वारा गुणों का सृजन करते हैं । हे सत्यस-कल्प । आपने नारद जी के वचन से देवताओं का कार्य-साधन तथा कंस के पगादि को स्मरण किया । नारद जी के द्वारा कहे गये अशेष कार्यों को परम चतुरता से स्वीकार किया । आपके दर्शन उत्सव से प्रसन्न होकर श्रीनारद जी ने आपको नमस्कार किया । हे एतादृश ! आपकी जय हो ॥ ३२१ । ३२३ ॥ [नम० ८०]

हे मेप के आचरणकारी गोपालों के पालन में तथा चौर्यलीला में विभ्रम विहारशाली ! उम समय व्योमासुर गोपवेश धारण कर आपके सखाओं को चोरी करने लगा । आपने उसे जान लिया तथा उसको पकड़ लिया । हे न्योमासुर विधातन ! हे मयपुत्र व्योमासुर के द्वारा गुहा में रुद्ध मग्नाओं के मोक्षणकारी । आपकी जय हो ॥ ३२४ । ३२५ ॥ [नम० ८१]

दान-पति अक्रूर ने आपकी महिमाओं का ध्य न किया था । शुभल-

पादाब्जध्यायकाऽक्रूरलालसानन्दवर्द्धन ।
 अक्रूररथसप्राप्त गोष्ठगोदोहनागत ॥ ३२७ ॥
 जय दानपतीक्ष्मात् क्षितिकौतुककृत्यद ।
 श्वाफलिकलुठनाधानपादाम्बुज-रजोव्रज ॥ ३२८ ॥
 जय श्वफल्कतनय-नयनानन्द-वर्द्धन ।
 रथान्प्लाविताक्रूर जयानुराभिधन्वित ॥ ३२९ ॥
 सुप्रीत्यालिङ्गिताक्रूर जय प्रणतवत्सल ।
 गान्दिनी-नन्दनारोप-मनोनाञ्छित-पूरक ॥ ३३० ॥ नमः ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॐ
 अक्रूरवर्णिताशेषकसदुर्घृत्तकोपित ।
 देवकीवसुदेवादि-दुःख-भरणदुःखित ॥ ३११ ॥
 यात्रामन्त्रितगोपेश मथुरागमनोन्मुख ।
 प्रातर्मधुपुरीयानभ्रजणाङ्गलगोकुल ॥ ३३२ ॥

क्षण रूप धन के सद्भाग्य से युक्त अक्रूर के द्वारा आपके दर्शन की सम्भावना हुई । हे आपके चरण के ध्यानकारी अक्रूर की लालसा-प्रसन्नता के बढ़ाने वाले ! अक्रूर ने रथ में बैठ कर आपको दूर से देखा । आप गोष्ठ में गोमाहनाथ विराजमान थे । हे अक्रूर के द्वारा दर्शन प्राप्त । हे वनप्रित्री के अलङ्कृत रूप चरण कमल वाले ! उस समय अक्रूर जी आपके चरणों की रज में लुण्ठित होने लगे । आपने उनसे नयनानन्द के वर्द्धक रूप हो कूट कर उन्हें चटाया तथा उन के द्वारा उन्धित हुए । आप प्रीति के माय उन्हें आलिङ्गन करने लगे । हे प्रणतवत्सल ! आपकी जय हो । इस प्रकार आप अक्रूर जी की अशेष मनोममना के पूर्णकारी हैं ॥ ३२६ । ३३० ॥ [नमः ८२]

अक्रूर जी ने कम के अशेष मन्द कर्म का चर्णन किया, आप उन्हें मुन पर प्रीति हुए । देवकी-वसुदेवादि के दुःख या भरण कर आप दुःखित हुए । वनपन न मथुरा जाने की मन्त्रणा की ।

यशोदाहृदयाशङ्काचिन्ताञ्जरशतप्रद ।
 शोकाब्धिपातिताशेषत्रजयोनिदृग्गणाऽव माम् ॥ ३३३ ॥
 शून्यायमानजगतीगोपीजीवन-तापन ।
 गोपीरोदनवाह्यारासंवर्द्धितनदीगण ॥ ३३४ ॥ नमः ८३ ॥
 जयाक्रूररथारुद्ध गोपीरोदनकातर ।
 शकटारुद्धनन्दादि-गोपालगणवेष्टित ॥ ३३५ ॥
 गोपीवियोगसन्तप्त राधिकाविरहासह ।
 स्वदूतप्रेममिश्रोक्ति-गोपिनारवासनाकुल ॥ ३३६ ॥
 गोपीहाहामहारावरोदनार्त्ति-निवर्त्तित ।
 मृतप्रायत्रजवधू-चुम्बनालिङ्गनासुद ॥ ३३७ ॥
 प्रसीद सान्ननाभिज्ञ नानाशपथ-कारक ।
 कृतावधिनिनो जीया आशाप्राणप्रदायक ॥ ३३८ ॥ नमः ८४ ॥

आप मथुरा जाने के लिये उन्मुख हुए। आप प्रभात में मथुरा जायेगे ऐसा सुनकर समस्त गोकुल व्याकुल होने लगा। उस गमनने यशोदा के हृदय में शत शत शङ्काओं का उत्पादन कर दिया। यशोदा चिन्ता-ञ्जर में डूब गयी। समस्त ब्रज की रमणियों शोरु सागर में डूब गयीं। हे श्रीहरि ! मेरी रक्षा कीजिये। उस समय गोपियों के लिये त्रिजगत् शून्यमय हो गया। उनका हृदय आपकी विरहाग्नि से तपायमान होने लगा। उनकी रोदनधारा से ब्रज की नदियों बढ़ने लगी ॥ ३३१ । ३३४ ॥ [नम० ८३]

हे अक्रूर के रथ में आरुढ़ ! हे गोपियों के रोदन से कातर ! हे शकटारुद्ध नन्दादि गोपालों से वेष्टित ! हे गोपियों के वियोग से तपायमान ! हे राधिका के विरह से असह्य ! आप उस समय दूतादि के द्वारा मधुर वचन से गोपियों को आश्वासन देने के लिये व्याकुल हो गये। गोपियों के हाहाकार महारोदनार्त्ति से आप रथ से घूट कर उनसे मिले। मृतप्राय ब्रज-वधुओं को चुम्बना-लिंगन के

श्वाफल्कि सञ्चालितयानवाह गोप द्वनासवृत-यानमार्गम् ।

धारीमहारोदनदुःखित त्वा निर्वाक्यनन्दादिधृत नमामि ॥ ३३६ ॥

मारितस्त्रीकतिपय कतिस्त्रीमूर्च्छनाकर ।

उन्मादितैकतद्व्यूथ रोदितस्त्रीसहस्रक ॥ ३४० ॥

महार्त्तस्वरसभग्नकण्ठीकृतपधूशत ।

प्रसीद रथमार्गाङ्क-पातितैश्वरलागण ॥ ३४१ ॥

जयाशातन्तुनद्धामु कतिस्त्री-कीर्त्तनप्रद ।

मथुरापदवी-चीक्षाधुलितेकाङ्गनायुत ॥ ३४२ ॥ नम ८५ ॥

यमुनामज्जिताक्रूर जयाक्रूररथस्थित ।

श्वाफल्किचलसम्पष्ट परमाश्चर्यदर्शक ॥ ३४३ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्याय ॐ

द्वारा प्राणवायव हुए । हे सान्त्वना देने में परमचतुर । हे नाना शपथकारी । आप प्रसन्न हों । हम “परञ्च अग्न्य आवेगे” इस प्रकार शत-शत शरव के द्वारा उनको कुछ आशा देकर उनके प्राण प्रदायक हुए ॥ ३३५-३३८ ॥ (नम ८४)

अक्रूर के द्वारा शीघ्र गति से चलायमान रथ के ऊपर बैठने वाले, गोपागनाओं से रथ के मार्ग में घेरे हुए, माता यशोदा के महान् रोदन से दुःखित, वचनशून्य नन्दादिकों से धृत आप को नमस्कार करता हूँ ॥ ३३६ ॥

उस समय बहुत गोपियों मृनप्राया हो गई । कुछ तो मूर्च्छा को प्राप्त हो गई । हे गापीव्यूथ के उन्मादनकारी । हे हजारों स्त्रियों को रोदन कराने वाले । हे मग्न आर्त्तनाद में युक्त शत शत व्रज-वधुओं के कठरोध कराने वाले । आप प्रसन्न हों । आपके रथ-मार्ग में अश्वलागण गिरे हुए थे । आपसी आशारूप सूत्र के द्वारा उनका प्राण बँध पाया, वे मग्न केवल आपका कीर्त्तन करने लगीं । मथुरा-मार्ग में आपनों देख कर शत शत अग्न्या व्याकुल हो गईं । हे

अक्रूरसंस्तुतानादे पद्मनाभादिकारण ।
जगद्दुर्विज्ञेयगते भजमानैकगम्य हे ॥ ३४४ ॥
नानायज्ञार्चनीयाग्रे नानाख्यारूपमार्गभाक् ।
सर्वगत्यापगाम्भोधे सर्वदेवमयेश्वर ॥ ३४५ ॥
जगदाश्रयसर्वार्द्धं ब्रह्माण्डालिगुहोदर ।
शोकघ्नानन्दद श्रीमदवतारावलीयशः ॥ ३४६ ॥
नानाकार्पण्यविज्ञापि-मुमुक्ष्वक्रूर्याचित ।
स्वप्रेमभक्तिसत्संगदायिस्वैककृपाभर ॥ ३४७ ॥
गोप्यब्रह्माहताक्रूरशुक्लस्तोत्राभिवन्दित ।
पितृव्य-विस्मयोदन्तप्रच्छन्नाद्भुतसागर ॥ ३४८ ॥ नमः ॥ ८६ ॥
❀ इति दशमस्कन्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ❀

एतादृश ! आप की जय हो ॥ ३४०-३४२ ॥

आपने अक्रूर जी को यमुना में मज्जन कराया । हे अक्रूर के रथ में स्थित ! आपको अक्रूर जी ने जल में भी देखा । आपका दर्शन परमाश्चर्य पूर्ण है । आपकी जय हो ॥ ३४३ ॥

हे अक्रूर के द्वारा संस्तुत ! हे अनानि ! हे कमलनाभ ! हे आदिकारण ! हे जगत् के दुर्विज्ञेय गति वाले ! हे भक्तगम्य ! हे नाना प्रकार यज्ञादि के द्वारा अर्च्यतचरण ! हे नाना प्रकार नाम रूप-मार्ग विशिष्ट ! हे नदियों के समुद्र की भाँति विविध उपासकों के परम आश्रय ! हे सर्व देवमय ! हे ईश्वर ! हे सर्वांग रूप से जगत् के आश्रय स्वरूप ! हे ब्रह्माण्ड समूहके स्थित गुहा की भाँति उदरवाले । आपके सकल अवतार शोकघ्नाशक आनन्दप्रद श्रीयुक्त होकर घोषित हैं । नाना प्रकार के दैन्य से युक्त अक्रूर के द्वारा आपकी मुक्ति प्रार्थित है । आपकी कृपा निज प्रेमभक्ति और सत्संग का दायक है । हे गोपियो के द्वारा अज्ञा पूर्वक आहत प्राप्त सम्यग् अपराधी अक्रूर के द्वारा भक्तिरहित स्तोत्र से अभिवन्दित ! हे पितृव्य अक्रूर

मथुरोपवनप्राप्त-नन्दादि-स्वजनावृत ।
 ब्रजातिंकारणाक्रूरगृहयानार्थनाकर ॥ ३४६ ॥
 स्वलंकृतमहाश्चर्य्यपुरीदर्शन-हर्षित ।
 पुरस्त्रीवृन्द-नयन-मनोहर नमोऽस्तु ते ॥ ३५० ॥
 दध्यादिमङ्गलद्रव्यद्विजातिकृतपूजन ।
 पुरस्त्रीकृत-गोपस्त्रीपुण्यरत्नाघातिनिवृत्त ॥ ३५१ ॥ नमः ८७ ॥
 मथुराजनसंवीक्ष्य रजकांशुकयाचक ।
 दुर्मुखाक्षेपसंक्रुद्ध रजकार-शिरोहर ॥ ३५२ ॥
 निजप्रियाम्बरद्वन्द्व-परिधान-विभूषित ।
 अभीष्टवस्त्र-संहृष्टरामगोपालिसंयुत ॥ ३५३ ॥
 प्रसीद वायकोन्नीतचैलेयाकल्पभूषित ।
 नानालक्षणेवेशाढ्य हे वायकयरप्रद ॥ ३५४ ॥ नमः ८८ ॥

जी के लिये विस्मय से वार्त्ता के पूछने वाले ! हे अद्भुतता के सागर !
 आपकी जय हो ॥ ३४४ । ३४८ ॥ (नमः ८६)

हे मथुरा के उपवन में प्राप्त नन्दादिक स्वजन से परिवृत ! हे
 ब्रज की आर्त्ति के कारणस्वरूप अक्रूर के द्वारा निज गृह में गमन
 के लिये प्रार्थित ! हे नाना प्रकार से अलंकृत महान् आश्चर्य्य युक्त म-
 थुरापुरी दर्शन से परम प्रसन्न ! हे मथुरापुरी की रमणीगणके नयनों
 में मनोहर ! हे दध्यादि मङ्गलद्रव्य से ब्राह्मणों के द्वारा परिपूजित !
 हे पुरस्त्रीगण के द्वारा गोपस्त्रियों की प्रशंसा से अत्यन्त आनन्दित !
 आपको नमस्कार है ॥ ३४६ । ३५१ ॥ (नमः ८७)

हे मथुरावासियों के द्वारा दर्शनीय ! हे रजक के निकट वस्त्रया-
 चक ! हे दुर्मुख रजक के आक्षेप वचन से क्रुद्ध ! हे रजक के शि-
 रोच्छेदक ! हे निज प्रिय वस्त्र युगल के परिधान से शोभायमान ! हे
 पाण्डुनीय वस्त्र प्राप्ति से संहृष्ट राम-गोपालों से युक्त ! हे वायक के
 द्वारा नील वस्त्र-भूषण, विविध अलंकार से भूषित ! हे नाना प्रकार

प्रसीद हे सुदामाख्यमालाकारगृहागत ।
मालिकप्रीतिपूजाप्तमाल्यवद्भक्तिसंस्तुत ॥ ३५५ ॥
सुगन्धिनानामालालिस्वलंकृत नमोऽस्तु ते ।
सुदामाभीप्सितवरवाञ्छातीतवरप्रद ॥ ३५६ ॥ नमः ८६ ॥

ॐ इति दशमस्कन्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॐ
सहासनर्मसंप्रश्नार्थितकुञ्जानुलेपन ।
कुञ्जादत्ताङ्गरागाढय सैरिन्ध्रीचित्तमोहन ॥ ३५७ ॥
कुञ्जानुलिप्तसर्वार्ङ्ग हेऽङ्गरागानुरञ्जित ।
त्रिवक्रावक्रताहर्तः कुञ्जासौन्दर्यदायक ॥ ३५८ ॥
कुञ्जाकुप्राग्धरधर कुञ्जाचेष्टातिहासित ।
कृतकुञ्जासमाश्वास जय कुञ्जावरप्रद ॥ ३५९ ॥ नमः ९० ॥
नानोपायन-नावूल-गन्धादि-यणिगर्चित ।
जय चित्रायिताशेषपुरस्त्रीगणवीक्षक ॥ ३६० ॥

येप से युक्त ! हे घायक के वरदाता ! आप प्रसन्न हों ॥ ३५२-३५४ ॥
(नमः ८८)

हे सुदामा नामक मालाकार के गृह में स्थित ! हे उसके
द्वारा परिपूजित ! हे माल्यधारी ! हे भक्ति के द्वारा संस्तुत ! हे सुगन्धि
नाना माला से अलंकृत ! हे सुदामा को वाञ्छातीत इप्सित घर के
देने वाले ! आपको नमस्कार है ॥ ३५५ । ३५६ ॥ (नमः ८६)

हे हास्य-परिहास-प्रश्नों के द्वारा कुञ्जा से अनुलेपन याचना वाले !
हे कुञ्जा के द्वारा प्रदत्त राग से युक्त ! हे सैरिन्ध्री के चित्तमोहन !
हे उसके द्वारा सर्वार्ङ्गलिप्त ! हे अङ्गराग से अनुरञ्जित ! हे त्रिवक्र
के वक्रताहारी ! हे उसके लिये सौन्दर्यदायक ! हे कुञ्जा के द्वारा
वस्त्राञ्चलधृत ! हे उसकी चेष्टा से अत्यन्त हास्ययुक्त ! हे कुञ्जा को
आश्वासन देने वाले ! हे कुञ्जा के वरदाता ! आपकी जय हो ॥ ३५७-
३५९ ॥
(नमः ९०)

जय प्रफुल्लनयन लीलाहसितलोचन ।
 मत्तनागेन्द्रगमन नागरीगणमोहन ॥ ३६१ ॥
 धनुःस्थानप्रश्नकर जयाद्भुतधनुर्धर ।
 लीलासज्जीकृतेष्वास कंसकोदण्डखण्डन ॥ ३६२ ॥
 धनूरक्षकवृन्दघ्न कंसप्रेषितसैन्यहन् ।
 कंसातित्रासजनक शकटावाससंगत ॥ ३६३ ॥ नमः ६१ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥
 कंसकारितमञ्चौघ रंगभूगमनोत्सुक ।
 जीयात् कुवल्यापीडगजरुद्धपथो भवान् ॥ ३६४ ॥
 संक्रुद्धाम्बष्ठनिर्दिष्ट करोन्द्रक्रीडिताऽथ माम् ।
 सद्यः कुवल्यापीडघातिन् सिंहपराक्रम ॥ ३६५ ॥
 समुत्पादितनागेन्द्र महादन्त-वरायुधम् ।
 वन्दे कुवल्यापीडमर्दनं हतहस्तिपम् ॥ ३६६ ॥ नमः ६२ ॥

हे वणिक् के द्वारा नानोपहार-ताम्बूल-गन्धादि से अर्पित ! उस समय आपका दर्शन कर पुरस्त्रियाँ चित्र की भाँति हो गयी थीं । हे एतादृश ! आपकी जय हो । हे प्रफुल्लनयन ! हे लीलाओं से हसित कटाक्ष दृष्टि-पातकारी ! हे मत्त गजराज की भाँति गमन करने वाले ! हे नागरीगण के मोहन ! आप ने उस समय धनुः स्थल का प्रश्न किया । हे अद्भुत धनुर्वारी ! हे लीलामात्र से धनुः को मर्चने वाले ! हे कंस कोदण्ड के खण्डनकारी ! हे धनुष के रत्तकवृन्द को मारने वाले ! हे कंस के द्वारा प्रेषित सैन्य के नाशक ! हे कंस को अति-भयभीत करने वाले ! हे शकटावासे में गमनकारी ! आपकी जय हो ॥ ३६०-३६३ ॥ (नमः ६१)

हे कंस के द्वारा कृत मञ्चों में तथा रंगभूमि में गमनोत्सुक ! हे कुवल्यापीड नामक गज के द्वारा रुद्ध ! आपकी जय हो । जिस समय दक्षिण ने दक्षिण की चालना की थी, आप उस समय उभसे क्रीड़ा करने

रंगप्रवेशमुभगवीरश्रीपरिभूषित ।
 स्कन्धन्यस्त-महादन्त मदरक्तकणाङ्कित ॥ ३६७ ॥
 प्रसीद स्वेदकणिकालकृताननपङ्कज ।
 रङ्गस्थलोकाभिप्रायभाताणोपरसात्मक ॥ ३६८ ॥
 महावीर महारम्य महास्मर महासुहृत् ।
 महेश्वर महाग्निगन्ध महाकाल महागुरो ॥ ३६९ ॥
 महानन्द महासेव्य सर्गलोक-मनोहर ।
 मप्रेमेक्षकमञ्चस्य-लोकगीत-महायशः ॥ ३७० ॥ नमः ६३ ॥
 चाणूरभाषितं वन्दे चाणूरोत्तरदायकम् ।
 चाणूरातिपराक्रान्त मल्लयुद्धविशारदम् ॥ ३७१ ॥ नमः ६४ ॥
 ॐ इति दशमस्कन्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॐ

लगे । शीघ्र ही आपने उसको मार डाला । हे सिंहपराक्रम ! मेरी रक्षा कीजिये । आपने उसके दोनों दंतों से उग्राङ्ग कर आयुध बनाया । हे कुघलयापीड के नाशक ! हे हस्तिप के घातक ! आपकी वन्दना करता हूँ ॥ ३६४-३६६ ॥ (नमः ६२)

हे रंगमञ्च में प्रवेशयोग्य सुन्दर वीरश्री से परिभूषित ! आपने उन दंतों को अपने कन्धे में रग्न लिया । आप मदघर्म और रक्तकणां से अङ्कित हो गये । आपका मुरक्तमल स्वेद-कणिका से अलंकृत हो गया था । रंगस्थल में लोकों के अभिरुचि के अनुसार उस ही प्रकार आप अनुभूत होने लगे । क्योंकि आप अशेष रसात्मक स्वरूप हैं । हे महान् वीर ! हे परमकमनीय ! हे अप्राकृत महान् वन्दर्प ! हे महारुहन् ! हे महान् ईश्वर ! हे महान् कोमल ! हे महान् कालरूप ! हे महान् गुरुस्वरूप ! हे महान् तत्त्व ! हे परमसेव्य ! हे सर्गलोक के मनोहर ! हे मञ्चभूमि में स्थित दर्शकों से प्रेम के माय गीयमान महायश ! आप प्रसन्न हों ॥ ३६७-३७० ॥ (नमः ६३)
 हे चाणूरमल्ल से भाषित ! हे उसको उत्तर देने वाले ! हे उसको

सहजप्रेममृदुल पुरस्त्रीगणशोचित ।
 पुरस्त्रीनिन्दिताशेषसध्यलज्जातिलज्जित ॥ ३७२ ॥
 स्त्रीगणोद्गीतमहिम-व्रजस्त्रीश्रुतिहपित ।
 पितृमातृमहात्तिक्ष जय चाणूरमर्दन ॥ ३७३ ॥
 शलतोपलसंहर्त्त धलधातिकमुष्टिक ।
 विद्रावितान्यमल्लौघ राम-पातितकूटक ॥ ३७४ ॥ नमः ६५ ॥
 उच्चमञ्चस्थदुर्वृत्तकंसदुर्वास्यकोपित ।
 आत्तासिचर्म-सञ्चारिकंसकेशप्रहोद्धत ॥ ३७५ ॥
 भूमिपातितभोजेन्द्र कंसोपरिविकृर्दित ।
 कंसध्वंसन कंसारे जय कंसनिसूदन ॥ ३७६ ॥

निज विक्रम प्रकाशकारी ! हे मल्लयुद्ध में विशारद ! आपकी श्रद्धा
 करता हूँ ॥ ३७१ ॥ (नमः ६४)

सहज प्रीति से मृदुल पुरस्त्रियों के द्वारा “क्या होगा दुष्ट कंस
 क्या करेगा” इस प्रकार विचार किया गया था । पुरस्त्रियों ने अशो-
 प सभासदों की निन्दा की । उससे आप लज्जित हो गये । पुरस्त्रियों ने व्रजस्त्रियों की महिमा का गान किया । आप उसे सुन कर
 बड़े प्रसन्न हुए । हे पिता-माता के महान् आर्त्ति को जानने वाले !
 हे चाणूरमर्दन ! हे शल-तोपल को मारने वाले ! हे बलराम जी
 के द्वारा मुष्टिक को मारने वाले ! उस समय अन्य-अन्य मल्लगण
 आपको मारने के लिये दौड़े । राम ने कूटक को मारा । हे एता-
 दरा ! आपकी जय हो ॥ ३७२-३७४ ॥ (नमः ६५)

हे उच्च मञ्च में स्थित दुष्ट कंस के दुर्वास्य से क्रोधप्राप्त ! हे
 असिचर्मधारी चलायमान कंस के केश प्रहण में उद्धत ! हे कंस को
 पृथ्वीमें गिराने वाले ! हे उसके ऊपर कूटने वाले ! हे कंसध्वंसीन् !
 हे कंसारे ! हे कंस निसूदन ! आपकी जय हो । आप ने पृथिवी के
 भय, भार तथा आर्त्ति का दूर किया ! हे जग में दुष्टों के विनाशक !

हृतोर्जीमयमारुतं जगच्छल्यग्निनाशक ।
 पितृमातृप्रहर्षार्थं-मृतकंस-विकर्षक ॥ ३७७ ॥
 ब्रह्मेशादिपुरानन्दिन् कालनेमिविमुक्तिद ।
 घलघातितदुष्टाष्टकस-सोदर पाहि माम् ॥३७८॥ नम ६६॥
 कसयोपित्समाश्वासनादिप्रमृतसत्क्रिय ।
 पितृमातृपदान्त्र पितृवन्ध-विमोक्षक ॥ ३७९ ॥ नम. ६७ ॥
 ❀ इति दशमस्कन्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ❀
 ईशज्ञानाकृतारलेपजननीतातभाववित् ।
 स्नेहवर्द्धन-मिष्टोक्ति-पितृमातृप्रमोदकृत् ॥ ३८० ॥
 प्राप्तालिङ्गनमुन्मातृतात-जोडाधिरोपित ।
 स्नेहवाक्पितृमातृशुधारा-स्नापितमस्तक ॥ ३८१ ॥
 परमानन्दित श्रीमदेवकथानकदुन्दुमे ।
 जय प्रेमसुरान्त्रादि-ज्ञान दु एनिनारक ॥३८२॥नम ६८॥

हे पिता माता के हर्ष के लिये मृत कंस का रीचने वाले । हे ब्रह्म-
 शिवादि देवताओं को आनन्दित करने वाले । हे कालनेमि के मुक्ति-
 दाता । हे वक्रदेव के द्वारा कंस के 'त्राओं' भ्राताओं को मारने वाले ।
 मेरी रक्षा कीजिये ॥ ३७५-३७८ ॥ (नम ६६)

हे कंस की स्त्रियों को आश्वासन देने वाले । हे मृत कंस की सत्-
 क्रिया के लिये आदेशकारी । हे पिता माता के चरणों में नमस्कार करने
 वाले । हे पिता के वन्धन के विमोचक ! आप रक्षा कीजिये ॥३७९॥
 (नम ६७)

ईशता ज्ञान से माता पिता ने आप का आलिङ्गन नहीं किया ।
 आप भी उनके भाग को जान गये । हे स्नेहवर्द्धन तथा मधुर वचनों
 से पिता माता के प्रमोदकारी । हे स्नेह के वश आलिङ्गन प्राप्त होकर
 उनके जोड़देश में आरोहण करने वाले । स्नेह वचन के साथ पिता
 माता की श्रुधारा से आपका मस्तक धीरे हो गया । हे देवकी और

सद्वाक्यानन्दित-श्रीमदुग्रसेनाविपत्यद ।
 दत्तोग्रसेनराज्यश्रीरूपसेननिदेशकृत् ॥ ३८३ ॥
 प्रसीदतान् मे भगवन् भक्तवत्सलनामधृक् ।
 उग्रसेन-वशानीत-त्रिलोकीरत्नसञ्चय ॥ ३८४ ॥ नमः ६६ ॥
 आनीतकंससन्त्रास-प्रोषितज्ञातिवान्वय ।
 जय सम्मानितारोप-यादवावासदायक ॥ ३८५ ॥
 सदा दयास्मितालोकानन्दिताखिलयादव ।
 जय रोगजराग्लानिहारि-सन्दर्शनामृत ॥ ३८६ ॥
 प्रसीद सात्त्वतभ्रेष्ठ यादवेन्द्र प्रसीद मे ।
 घृष्टिणपुङ्गव मां पाहि दारारहाधिप मावव ॥ ३८७ ॥
 कुकुरान्धकवंशेन्द्र भैमान्वयविवर्द्धन ।
 ययातिकुलपद्मार्क चन्द्रवंशाब्धिचन्द्रमः ॥ ३८८ ॥ नमः १०० ॥

आनन्ददुन्दुभि वसुदेव के परमानन्दकारी ! आपने प्रेमसुख के द्वारा
 उन के ह्रान का आच्छादन किया । हे दुःखनिवारक ! आप की जय
 हो ॥ ३८०-३८२ ॥ (नमः ६८)

हे सद्बचनों से आनन्दित उग्रसेन के लिये आविपत्य (राज-
 पद) को देने वाले ! हे उग्रसेन के लिये राजलक्ष्मी के प्रदाता ! हे
 उग्रसेन के आज्ञावह ! हे भगवान् ! हे भक्तवत्सल नामधारी ! आप
 ने उग्रसेन के वश में तीनों जगत् के रत्नों का सञ्चयन किया । आप
 मेरे लिये प्रसन्न हों ॥ ३८३-३८४ ॥ (नमः ६६)

कंस से भयभीत होकर दहर-उदर चले जाने वाले बन्धुओं को
 आपने पुलाया तथा सकल यादवों को सम्मानित कर घास कराया ।
 आपकी जय हो । निरन्तर दया-स्मितावलोकन के द्वारा सकल यादवों
 को आनन्दित किया । आपका दर्शन रोग-जरा-ग्लानि का नाश करने
 वाला है । आपकी जय हो । हे सात्त्वतभ्रेष्ठ ! आप प्रसन्न हों । हे
 यादवेन्द्र ! मेरे ऊपर प्रसन्न हों । हे घृष्टिभ्रेष्ठ ! हे दारार्ह के अधिप !

जय श्रीमथुरानाथ मथुरामङ्गल प्रभो ।
 मथुरामूर्त्तमाधुर्य्य मथुरामण्डलेश्वर ॥ ३८६ ॥
 नित्यश्रीमथुरावासिन् मथुरामाधुरीप्रद ।
 हे माथुस्महाभाग्य नमस्त मथुरापते ॥ ३६० ॥ नमः १०१॥
 अद्यश्वोगमनव्याज-पक्षितव्रजनायक ।
 प्रसीद मुहुराश्लेषनन्दसम्भापणकुल ॥ ३६१ ॥
 नानावाक्चातुरीदीन-नन्दरोदनयर्द्धन ।
 अत्यालिङ्गनगोपालकुलदुःखाशुवाहक ॥ ३६२ ॥
 मुहुर्मुह्यत्पतद्बृद्ध-नन्दसान्त्वनकातर ।
 वासोऽलङ्कारकुप्यादिदान-मारितनन्द हे ॥ ३६३ ॥

हे माधव ! हे कुक्कुर और अन्यक वंश के इन्द्र ! हे भैमवंश के व-
 र्द्धक ! हे ययातिवंश पद्म के सूर्य्यरूप ! हे चन्द्रवंश सागर के च-
 न्द्रमा ! मेरी रक्षा कीजिये । (सात्त्वत-यदु-वृष्णि दाशाह-मधु-कुक्कुर-
 अन्यक-भोज ये आठ यदुवंश के भेद हैं) ॥३८५-३८८॥ (नमः १००)

हे मथुरानाथ ! हे मथुरामङ्गल ! हे प्रभो ! हे मथुरा में विप्रहारी
 माधुर्य्य ! हे मथुरामण्डल के ईश्वर ! हे नित्य मथुराविहारी ! हे म-
 थुरा के माधुर्य्य को बढ़ाने वाले ! हे माथुरों के महान् भाग्य ! हे
 मथुरापति ! आपकी जय हो ॥ ३८६-३६० ॥ (नमः १०१)

हे आज कल आऊँगा इस प्रकार की आश्वासन से व्रजेश्वर के
 प्राणरक्षक ! हे बार बार आलिङ्गन प्राप्त होकर नन्द के साथ सम्भा-
 पण में व्याकुल ! आप प्रसन्न हों । नाना प्रकार की वाक्चातुरी कर-
 ने (दिखाने) पर भी श्रीनन्द दीनता के साथ रोदन करने लगे ।
 गोपालों को आपने आलिङ्गन किया । उनकी दुःखमय अशुधारा बहने
 लगी । व्रजराज बार बार मूर्च्छित होकर गिरने लगे । आप उनको
 सान्त्वना देने में कातर हो गये । आपने वस्त्र, अलङ्कार, पात्रादि का
 प्रदान किया परन्तु उससे उनको अधिक मनःसन्ताप बढ़ने लगा । वे

हाहा-महारवाकनि गोपवृन्दात्मशोकद ।

जलसेकांचुपानीत-नन्दप्राण प्रसीद मे ॥ ३६४ ॥

त्वरगमनसत्पौच्छिविंश्वस्तीकृतनन्द माम् ।

पार्श्वे रक्ष सुसन्देशयशोदादैन्यवद्धन ॥ ३६५ ॥

सुहुमुहुः परावर्त्तमाननन्दाश्रुसंप्लुत ।

नन्दानुधजनं व्याज ब्रजदीनजनामुद ॥ ३६६ ॥

गोप्यर्थप्रेषितस्वीयभूषा-शपथवाचिक ।

निरुध्यमाननेत्राब्ज-चारिधार प्रसीद मे ॥ ३६७ ॥ नमः १०२ ॥

ॐ इति श्री भागवतम् ॐ

श्रीजगन्नाथ नीलाद्रिशिरोमुकुटरत्न हे ।

दारुणहृन् घनश्याम प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ ३६८ ॥

प्रफुल्लपुण्डरीकाक्ष लवणधितटामृत !

गुटिकोदर मां पाहि नानाभोगपुरन्दर ॥ ३६९ ॥

मृतवत् हो गये । गोपवृन्द ने हा हा महारव से क्रन्दन किया । आप उन सत्रके विरह दानके भागी हुए । आपने जलादि लेकर सेवासे नन्द के प्राण को फिराया । आप प्रसन्न हों । “मैं शीघ्र आऊँगा” “सत्य करता हूँ” इस प्रकार वचनों से नन्द के लिये विश्वसित किया । हे सुखमय सन्देश के द्वारा यशोदा के दैन्य को बढ़ाने वाले ! आप मुझे अपने पास रखिये । हे बार बार परावर्त्तमान नन्द के अश्रुजल से सिञ्चित ! हे नन्द के अनुगमन के दल से ब्रज के दीन-जन के सुखदाता ! आप गोपियों के लिये शपथ देकर निज भूषा-अलङ्कार को भेजने लगे । आप मड़े यत्न से नयन-कमलों के चारि-धारा को रोकने लगे । आप प्रसन्न हों ॥ ३६१-३६७ ॥ (नमः १०२)

अथ नीलाचलनाथ की स्तुति करते हैं-हे श्रीजगन्नाथ ! हे नीलाद्रि शिखर के मुकुटरत्न ! हे दारुण ! हे घनश्याम ! हे पुरुषोत्तम ! आप प्रसन्न हों । हे प्रफुल्ल कमलजयन्त ! हे लवण समुद्र

निजावरसुधादायिजिन्द्रशुम्भ-प्रसादित ।
 सुभद्रालालनय्यप्र रामानुज नमोऽस्तु ते ॥ ४०० ॥
 गुण्डिचारथयात्रादिमहोत्सवविवर्द्धन ।
 भक्तवत्सल वन्दे त्वां गुण्डिचारथमण्डनम् ॥ ४०१ ॥
 दीनहीनमहानीच-दयार्द्राकृतमानस ।
 नित्यनूतनमाहात्म्यदर्शिन चैतन्यवल्लभ ॥ ४०२ ॥ नमः १०३ ॥
 श्रीमच्चैतन्यदेव त्वां वन्दे गौराङ्गसुन्दर ।
 शचीनन्दन मा प्राहि यतिचूडामणो प्रभो ॥ ४०३ ॥
 आजानुवाहो स्मेरास्य नीलाचलविभूषण ।
 जगत्प्रवर्तित-स्यादुभगवन्नामकीर्त्तन ॥ ४०४ ॥

के तट में सुधास्वरूप ! हे नाना भोगविलासी ! आपके नाभिवमल में शालग्राम शिला मौजूद है । आप मेरी रक्षा कीजिये । हे निज-अवरामृत महाप्रसाद के दाता ! हे इन्द्रशुम्भ राजा के प्रसन्नकारी ! हे सुभद्रा जी के लालन में व्यग्र ! हे बलदेव के अनुज ! आपको नमस्कार है । हे गुण्डिचा-रथयात्रादि महोत्सव के वर्द्धक ! हे भक्तवत्सल ! गुण्डिचा रथ के मण्डन ! आपकी वन्दना करता हूँ । आप दीन-हीन-महान् नीचों पर दया करने में स्निग्ध हृदय वाले हैं । नित्य नवीन महिमा के दिखाने वाले हैं । आप निज स्वरूप श्रीचैतन्यमहाप्रभु के वल्लभ अर्थात् आस्वाद्य विषय हुए थे ॥ ४०१-४०२ ॥ (नमः १०३)

हे श्रीचैतन्यदेव ! हे गौराङ्गसुन्दर ! हे शचीनन्दन ! हे स-न्यासिचूडामणि ! हे प्रभो ! मेरा प्राण कीजिये । हे आजानुलम्बित भुज वाले ! हे मन्दहास्य से युक्त ! हे नीलाचल क्षेत्र के विभूषण ! हे जगत् में मधुर निज नाम कीर्त्तन के प्रवर्त्तक ! हे अद्वैताचार्य से प्रशंसित ! हे वासुदेव-सार्ज्वभोग को निरन्तर प्रसन्न करने वाले ! हे रायरामानन्द मे प्रीतिकारी ! हे सकल वैष्णवजन के वा-

अद्वैताचार्य्य-संश्लाघिन् सर्व्वभौमाभिनन्दक ।

रामानन्दकृतप्रीत सर्व्ववैष्णववान्वय ॥ ४०५ ॥

श्रीकृष्णचरणम्भोज-प्रेमामृत-महाम्बुधे ।

नमस्ते दीनदीनं मां कदाचित् किं स्मरिष्यसि ॥ ४०६ ॥ नमः १०४ ॥

नमो ब्राह्मणरूपाय निजभक्तस्वरूपिणे ।

नमः पिप्पलरूपाय गोरूपाय नमोऽस्तु ते ॥ ४०७ ॥

नानातीर्थस्वरूपाय नमो नन्दकिशोर ते ।

सर्व्वदा लोकरक्षार्थरूप-पञ्चकधारिणे ॥ ४०८ ॥ नमः १०५ ॥

पापाण्ययातुमृदारुसिकतामणिलेखजा ।

सप्तधा ते प्रतिकृतिरचला वां चला प्रभो ॥ ४०९ ॥

शालग्रामशिला चाथ यत्र कुत्राप्यवस्थिता ।

यादृशी तादृशी वापि भक्तैर्भक्त्याभिपूजिता ॥ ४१० ॥

न्धव ! निज रूप श्रीकृष्ण के चरणम्भोज प्रेमामृत के महान् सागर आपको नमस्कार है । दीनातिदीन सुमे क्या कभी आप स्मरण करेगा ? ॥ ४०३-४०६ ॥ (नमः १०४)

हे ब्राह्मण रूप ! हे निज भक्त स्वरूप ! हे पिप्पल रूप ! हे गोरूप आपको नमस्कार है । इन चारों स्वरूपों में भगवान् विराजमान रहते हैं । इन्हें भगवत् रूप से पूजा करें । हे नाना तीर्थस्वरूप नन्दनन्दन ! सदा सर्व्वदा लोकरक्षार्थ ये पञ्च स्वरूप धारी आप को नमस्कार है ॥ ४०७-४०८ ॥ (नमः १०५)

हे प्रभो ! पापाण्ययातुमयी मृदमयी दारुमयी-सिकतामयी-मणिमयी-चित्रमयी ये मातों चल-अचल आपकी प्रतिमा हैं । जिस प्रकार शालग्रामशिला जिस किसी भी स्थान में क्यों नहीं हों, ग्यष्टिता या अग्यष्टिता क्यों न हों, भक्तगण उसकी भक्तिभाव से पूजा करते हैं, ठीक उसी प्रकार इन आठ प्रकार के अर्च्य-विग्रह में भक्तगण आपके स्वरूप पर निर्देश कर पूजा करते हैं । ये सब प्रत्येक मन्त्रिदा-

भवताधिष्ठिता सर्व्व सच्चिदानन्दरूपिणी ।
 त्वमेव कथ्यसे सद्भिस्तस्मै तुभ्यं नमो नमः ॥४११॥नमः१०६॥
 सर्व्वशास्त्राधिपीयूष सर्व्ववेदैकसत्फल ।
 सर्व्वसिद्धान्तरत्नाढ्य सर्व्वलोकैकहृक्प्रद ॥ ४१२ ॥
 सर्व्वभागवतप्राण श्रीमद्भागवतप्रभो ।
 कलिध्वान्तोदितादित्य श्रीकृष्णपरिवर्त्तित ॥ ४१३ ॥
 परमानन्दपाठाय प्रेमवर्ष्यक्षरस्य ते ।
 सर्व्वदा सर्व्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मे ॥ ४१४ ॥
 मदेकबन्धो मत्सद्भिन् मदगुरो मन्महाधन ।
 मन्निस्तारक मद्भाग्य-महानन्द नमोऽस्तु ते ॥ ४१५ ॥
 असाधुसाधुतादायिन्नतिनीचोच्चताकर ।
 हा न मुञ्च कदाचिन्मां प्रेम्ना हृत्कण्ठयोः स्फुरा ॥४१६॥नमः१०७॥

नन्द रूप हैं । इन सब में आप अधिष्ठित हैं । अतएव हे समस्त
 अर्चार्चाविप्रहृगय ! आपको नमस्कार है नमस्कार है ॥४०६-४११॥
 (नमः १०६)

अथ श्रीभागवत की स्तुति करने हैं-हे सकल शास्त्र सागर के
 अमृत स्वरूप ! हे समस्त वेद के सत्फल ! हे सर्व्व सिद्धान्तरत्नों
 से युक्त ! हे समस्त लोगों की दृष्टि के दाता ! हे समस्त सज्जनों
 के प्राण ! हे भागवत प्रभु ! हे कलि अन्धकार में उज्य प्राप्त सूर्य्य
 स्वरूप ! हे श्रीकृष्ण के प्रतिरूप ! हे परम आनन्दमय पाठ स्वरूप ! हे
 अक्षर अक्षर में प्रेम वर्णाने वाले ! हे निरन्तर सयके सेवनीय ! हे
 भागवतरूप श्रीकृष्ण ! मेरा तुमको नमस्कार है । हे मेरे एक मात्र
 बन्धु ! हे मेरे साथी ! हे मेरे गुरु ! हे मेरे महान् धन स्वरूप ! हे
 मेरे निस्तारक ! हे मेरे भाग्यरूप ! हे मेरे आनन्द स्वरूप तुम को
 नमस्कार है । तुम असाधु को साधु तथा अतिनीच को ऊँचा बनाने
 वाले हो । मुझको कभी त्याग मत करना । प्रेम से मेरे हृदय-कण्ठ में

श्रीकृष्ण तव कारुण्य-महिम्ने मे नमो नमः ।

यो मां नीचं दुराचारं नित्यपापरतं शठम् ॥ ४१७ ॥

अहो तस्या अवस्थायाः सतामिव दशामिमाम् ।

तस्मात् स्थानादिदं स्थानं मथुरामण्डलं शुभम् ॥ ४१८ ॥

यस्मिन् ज्ञानकृतं वार्षि सर्वपापं न तिष्ठति ।

चतुर्धा यत्र मुक्तिः स्यात्त्वं च सन्निहितः सदा ॥ ४१९ ॥

यस्मिन् स्वसन्महिम्नेवार्पितो वससि नित्यदा ।

निजमाधुर्य्यसम्पत्त्या मधुरेति यदुच्यते ॥ ४२० ॥

तथा तस्माच्च दुःसङ्गाद् यत्प्रप्रियतमस्य हि ।

श्रीमच्चैतन्यदेवस्य सङ्गं नीलाचले तथा ॥ ४२१ ॥

रयोपरि तव श्रीमन्मुखदर्शन-कौतुकम् ।

पुनष्टुन्दावनं ह्येतत् तत्तत्कीडास्पदं तव ॥ ४२२ ॥

स्फूर्ति बाले हो ॥ ४१२-४१६ ॥ (जमः १०७)

॥ हे श्रीकृष्ण ! आपकी कृपा महिमा को मेरा बार बार प्रणाम है । जो आपकी करुणा ने नीच-दुराचारी-नित्य पापाचारी-शठ मेरा उस महाजघन्य राजसेवक अवस्था से उद्धार कर मुझे सदाचारयुक्त इस साधु अवस्था का दान किया है । तात्पर्य्य यह है कि मैं विपयीजनों से कलुषित राजदरबार में निमग्न था । उस पद से मुझको निकाल कर समस्त मङ्गल के निधान मथुरा मण्डल में वास दिया । उस मथुरा में अज्ञान कृत पापों की वार्त्ता तो दूर रही, ज्ञान कृत सरल पाप भी जहाँ नहीं ठहर सकते हैं । जहाँ सालोस्यादि चार प्रकार की मुक्ति स्वयं प्राप्त हो जाती है अथवा जहाँ जन्म, उपनयन, मृत्यु, प्राप्त होने पर मनुष्यों की मुक्ति होती है । जहाँ आप निरन्तर विराजमान हैं । जहाँ आप अपनी अत्युत्कृष्ट महिमा का सार प्रकट कर सर्वदा विलास करते हैं और जो स्थान अपने माधुर्य्य सम्पत्ति के भाववश "मधुरा" करके कहा जाता है । आपकी उस करुणा ने दुः-

गोपिका यस्य सत्कीर्त्तिं भवांश्चावर्णयन् गुणान् ।
 दूरस्थाः भवणाद् यस्य लभन्ते प्रेम ते शुभाः ॥ ४२३ ॥
 चराचरं प्राणिजातं यस्य त्वत्प्रेमसंप्लुतम् ।
 नित्यमद्यापि यस्मिंस्त्वपूर्ववत् क्रीडसि स्फुटम् ॥ ४२४ ॥
 अत्रैव त्वप्रियं यरच मेदकधनजीवनम् ।
 प्रापयन् मे पुनः सङ्गं तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ४२५ ॥
 अधुना यो मम मुख्याङ्गिः सारयति नाम ते ।
 कदाचिरुचरणाम्भोजं हृदि मे स्मारयत्यपि ॥ ४२६ ॥
 मत्कायेनाधमेनापि नमस्ते कारयेदयम् ।
 सर्वापद्भ्योऽपि मां रक्षेद् दद्यात्ते भक्तिसम्पदम् ॥ ४२७ ॥

संग से मुझे निकाल कर श्रीनीलाचलक्षेत्र में आपके अधिकप्रियतम स्वरूप (जिस स्वरूप से आपका रावाभाव आस्वादन की पूर्ति हुई है) उस श्रीकृष्णचैतन्यदेव विग्रह का संगलाभ दिया । मैंने रथ के ऊपर आपके मुखदर्शन के कौतुक का अवलोकन किया फिर भी उस करुणा ने आपकी उन-उन क्रीड़ाओं के आस्पद इस घृन्दावन में संगत कराया, जिसकी कीर्त्ति को गोपिगण तथा स्वयं आप ही वर्णन करते हैं । जिसके भवण से दूरस्थ भी विशुद्ध होकर आपके प्रेम का लाभ करते हैं । जहाँ के चराचर सकल प्राणी आपके प्रेम से परिप्लुत हैं । जहाँ नित्य अथ तक भी पहले की तरह आप क्रीड़ा करते हैं । आपकी उम करुणा ने फिर आपके परमप्रिय, मेरे एक मात्र प्राण और धन, महाभागवत, रसिकवर श्रीरूप का संगदान दिया है । उस आपकी करुणा को नित्य नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४२७-४२५ ॥

जो आपकी वह करुणा अभी मेरे मुख से आप का नाम का तिसरण कराती है, जो कभी कभी आपके चरणों को मेरे हृदय में स्मृति कराती है, जो इस अधम शरीर से भी आपके इस नमस्कार को कराती है, जो सगस्त पाप से मुझे रक्षा करती है, जो आपकी

दातुं शक्नोति मेऽजस्रं प्रेमस्मरणकीर्तनम् ।

तव प्रेमकटाक्षं त्वं मयि प्राययितुं क्षमः ॥ ४२८ ॥

गोगोपगोपिकासक्तं त्वां च दर्शयितुं प्रभुः ।

एवं यो मम हीनस्य सर्वाश्लम्बनं परम् ॥ ४२९ ॥

महाकारुण्यमहिमा पुराणो नित्यनूतनः ।

त्वदीयः सच्चिदानन्दस्तस्मै नित्यं नमो नमः ॥ ४३० ॥

एतल्लीलास्तवं नाम स्तोत्रं श्रीकृष्ण ! तारकम् ।

प्रणामाष्टोत्तरशते योऽर्थावगमपूर्वकम् ॥ ४३१ ॥

कीर्तयेत् सोऽचिराद् भक्तो लभतां कृपया तव ।

रूपे नामनि लीलायामाक्रीडेष्वपि परा रतिम् ॥ ४३२ ॥ नमः १०८ ॥

ॐ इति श्रीकृष्णलीलास्तवनाम स्तोत्रं समाप्तम् ॐ

भक्ति सम्पत्ति के प्रदान में परम समर्था है, जो निरन्तर आपके प्रेम-स्मरण—कीर्तन के दात्री है—जो मुक्त को भी आप के प्रेमकटाक्ष की प्राप्ति करा सकती है, जो गो गोप-गोपीजन से वेष्टित आपका दर्शन कराने में सक्षम है, इस प्रकार दुर्गतजन की समस्त आशा का जो परम अवलम्बन है, बहुत पहिले जिसकी प्राप्ति होने पर भी नित्य नूतन की भोंति प्रतीयमान होती है, आपकी उस सच्चिदानन्द-पिणी महामाकरुण्य महिमा को चार बार नित्य नमस्कार है नमस्कार है ॥ ४२६-४३० ॥

अब ग्रन्थ का फल कहते हैं—हे श्रीकृष्ण ! जो व्यक्ति अर्थ-ज्ञान के साथ भवमागर के कर्णधार स्वरूप इस लीलास्तव नामक स्तोत्र का अष्टोत्तर शत प्रणाम करके कीर्तन करेगा वह भक्त शीघ्र ही आपकी कृपा में आपके रूप-नाम-लीला-लीलाभूमि में परारति का लाभ करेगा ॥ ४३१-४३२ ॥ (नमः १०८)

इति श्रीकृष्णलीलामय का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

॥ स्थान-मथुरा समय-पौषमंत्रान्ति ॥ (सं० २०१०)

ॐ गौरांगोद्देशदीपिका ॐ



श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः ॥

यः श्रीवृन्दावनभुवि पुरा सच्चिदानन्दसान्द्रो
गौराङ्गीभिः सदृशरुचिभिः श्यामधामा ननर्त ।
तासां शश्वद्दृढतरपरीरम्भसम्भेदतः किं
गौराङ्गः सन् जयति स नवद्वीपमालम्बमानः ॥ १ ॥
नगस्यामोऽस्यैव प्रियपरिजनान् वत्सलहृदः
प्रभोरद्वैतादीनपि जगदघोषक्षयकृतः ।
समानप्रेमाणः समगुणगणास्तुल्यकरुणाः
स्वरूपाद्या येऽमी सरसमधुरास्तानपि नुमः ॥ २ ॥
गुरुं नः श्रीनायाभिधमवनिदेवान्वयविभुं
नुमो भूपारत्नं भुव इव विभोरस्य दयितम् ।
यदास्यादुन्मीलनिरवकरवृन्दावनरहः
कथास्वादं लब्ध्वा जगति न जनः कोऽपि रमते ॥ ३ ॥

जो सच्चिदानन्दमय, श्यामकान्ति श्रीहरि ने पहले श्रीवृन्दावन भूमि में समान कान्तिमती गौरांगियों के साथ नृत्य विलास किया है वह श्रीहरि उनके निरन्तर गाढ़ालिंगन भेद से गौरांग स्वरूप हो कर श्री नवद्वीप आश्रय के द्वारा जय प्राप्त हो रहे हैं ॥ १ ॥

जगत् के पाप समूह का नाश करी, वत्सल हृदय अद्वैतादिक प्रिय परिकरों को तथा समान प्रीतिवाले, समान गुणशाली, समान करुण हृदय, सरस मधुर स्वरूपादिक प्रभु के गण को नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥

प्रभु के परमप्रिय, ब्राह्मण कुल में चन्द्ररूप, जगत् के भूषण रत्न

पितर श्रीशिवानन्दं सेनवंशप्रदीपकम् ।
 चन्देऽहं परया भक्त्या पार्षदाय्यं महाप्रभोः ॥ ४ ॥
 ये विख्याता, परीचारा, श्रीचैतन्यमहाप्रभोः ।
 नित्यानन्दाद्वैतयोश्च तेषामपि महोयसाम् ।
 गोपालानाञ्च पूर्वार्णि नामानि यानि कानिचित् ।
 स्वस्वग्रन्थे स्वरूपाद्यैर्दर्शितान्यादिसृग्भिः ।
 विलोम्यान्यानि साधूना मथुरोद्भूतिवासिनाम् ।
 गौडीयातामपि मुत्पान्निशम्य स्वमनीषया ।
 त्रिविध्यान्नेडितः कैश्चित् कैश्चित्तानि लिखाम्यहम् ।
 नाम्ना श्रीपरमानन्ददासः सेवितशासनः ॥ ५ ॥
 यद्वत्पुरा कृष्णचन्द्रः पञ्चतत्त्वात्मकोऽपि सन् ।
 यातः प्रकटता तद्वद्गौरः प्रकटतामियात् ॥ ६ ॥

उन श्रीनाथ नामक गुरुदेव को नमस्कार । जिनके सुगुनि स्मृत श्री-
 कृष्ण का मधुर वृन्दावन सम्बन्धी निर्जन केलि कथा रसान का लाभ
 कर जगत् में कौन व्यक्ति आनन्द को प्राप्त नहीं हुआ है । अर्थात्
 सभी आनन्द को प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

महाप्रभु के पार्षदप्रवर, सेनवंश के प्रदीप, पिता श्रीशिवानन्दसेन
 की परम भक्ति के साथ चन्दना करता हूँ ॥ ४ ॥

श्रीचैतन्य महाप्रभु के तथा श्रीनित्यानन्द और अद्वैतप्रभु के जो
 सज्जल विख्यात परिवार हैं महानुभाव गोपवंशियों का जो नामसमूह
 प्रसिद्ध है उन सबका आदि विद्वान् स्वरूपादि महात्मागण ने निज
 निज ग्रन्थ में प्रकाश किया है । उन ग्रन्थों का अवलोकन कर तथा
 मथुरा-जल-भौंड निवासी साधु वैष्णवों का मुख से सुन कर निज
 बुद्धि के द्वारा विवेचना कर महानुभाव कुछ साधु-यत्ति के बार बार
 अनुरोध ने प्रभुपरिक्खों से शासन प्राप्त, परमानन्ददास नामक मैं
 इस ग्रन्थ को लिखता हूँ ॥ ५ ॥

स्वाभिन्नेन युतः तत्त्वं पञ्चतत्त्वमिहोच्यते ।
 अन्यथा तदसम्बन्धात्तत्तत्त्वं स्याच्चतुष्टयम् ॥ ७ ॥
 तद्भिन्नं यत्तदेवात्र तदभिन्नं विभाव्यताम् ।
 यतः स्वयेच्छया शक्त्या कृष्णस्तादृशतां गतः ॥ ८ ॥
 अतः स्वरूपचरणैरुक्तं तत्त्वनिरूपणे ।
 उपाधिभेदात् पञ्चत्वं तत्त्वस्येह प्रदर्श्यते ॥ ९ ॥
 “पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम् ।
 भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिरूपम्” ॥ १० ॥
 अस्यार्थो विवृतस्तैर्यः स संक्षिप्य विलिख्यते ।
 भक्तरूपो गौरचन्द्रो यतोऽसौ नन्दनन्दनः ।
 भक्तस्वरूपो नित्यानन्दो ब्रजे यः हलायुधः ।
 भक्तावतार आचार्योऽद्वैतो यः श्रीसदाशिवः ।

जिस प्रकार पहले श्रीकृष्णचन्द्र ने पञ्चतत्त्वात्मक स्वरूप से अवतार लिया था ठीक वही प्रकार गौरचन्द्र ने पञ्चतत्त्व स्वरूप से अवतार लिया ॥ ६ ॥

यहाँ निज से अभिन्न युक्त तत्व पञ्चतत्त्व करके कहा जाता है । नहीं तो पञ्चतत्त्व सम्बन्धी के अभावसे चार ही तत्व रह जायेंगे अर्थात् असम्बन्ध के वश चार तत्व की आपत्ति उठ सकती है ॥ ७ ॥

श्रीकृष्ण से जो भिन्न है यहाँ वह अभिन्न करके माना जायगा । क्योंकि श्रीकृष्ण ही निज इच्छा शक्ति के अनुसार उस प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

इस लिये स्वरूपगोभ्यामि चरण ने तत्त्वनिरूपण में कहा है कि उपाधिभेद से तत्व का पाँच प्रकार है । उन्हें यहाँ दिग्राते हैं । “भक्तरूप, भक्तस्वरूप, भक्तावतार, भक्ताख्य, भक्तशक्तिक रूप से पञ्चतत्त्वात्मक श्रीकृष्ण का नमस्कार करता हूँ” ॥ १० ॥

भक्ताख्याः श्रीनिवासाद्या यतस्ते भक्तरूपिणः ।

भक्तशक्तिर्द्विजाग्रयः श्रीगदाधरपण्डितः ॥ ११ ॥

श्रीमद्विश्वम्भराद्वैतनित्यानन्दावधूतकाः ।

अत्र त्रयः समुन्नेया विग्रहाः प्रभवश्च ते ।

एको महाप्रभुर्ज्ञेयः श्रीचैतन्यो दयाम्बुधिः ।

प्रभू द्वौ श्रीयुतौ नित्यानन्दाद्वैतौ महाशयौ ।

गोस्वामिनो विग्रहाश्च ते द्विजश्च गदाधरः ।

पञ्चतत्त्वात्मका एते श्रीनिवासश्च पण्डितः ॥ १२ ॥

यदुक्तं तत्र गोस्वामिश्रीस्वरूपदाम्बुजैः ।

त्रयोऽत्र विग्रहा ज्ञेयाः प्रभवश्चात्र ते त्रयः ।

एको महाप्रभुर्ज्ञेयो द्वौ प्रभू सम्मतौ सत्ताम् ॥ १३ ॥

उनने इस का अर्थ विस्तार करके कहा है। उसका संक्षेप हम लिखते हैं। जो नन्दनन्दन हैं वे भक्तरूप में श्रीगौरचन्द्र हैं। ब्रज में जो बलदेव जी हैं वे भक्तस्वरूप नित्यानन्दचन्द्र हैं। जो सदाशिव हैं वे भक्तायतार अद्वैत आचार्य हुए। श्रीनिवासादि भक्ताएँ करके प्रसिद्ध हैं, क्योंकि वे सब भक्तरूप हैं। द्विजभ्रष्ट श्रीगदाधर-पण्डित भक्तशक्ति रूप हैं ॥ ११ ॥

श्रीमान्विश्वम्भर, अद्वैताचार्य और अवधूत-नित्यानन्द ये तीनों भगवद् विग्रह प्रभु नाम से ख्यात हैं। इन तीनों में से करुणा के समुद्र श्रीचैतन्य "महाप्रभु" तथा श्रीनित्यानन्द, अद्वैत महाशय दोनों "प्रभु" हैं ऐसा जानना। वे सब गोस्वामि विग्रह हैं। द्विज गदाधर श्री निवास पण्डित ये सब पञ्चतत्त्वात्मक हैं ॥ १२ ॥

इस विषय में स्वरूप गोस्वामि चरण ने कहा है—ये तीनों भगवद् विग्रह तथा प्रभु करके रखा है। उनमें से एक तो "महाप्रभु" अन्य दोनों प्रभु हैं। यह साधुओं का सम्मत है ॥ १३ ॥

एषां पार्षदवर्गा ये महान्तः परिकीर्त्तिताः ।
 नित्यानन्दगणाः सर्वे गोपाला गोपवेशिनः ।
 एषां सम्यन्वसम्पर्कादुपगोपालसत्तमाः ॥ १४ ॥
 तत्र श्रीमन्नद्वीपे विश्वम्भरसमीपतः ।
 विलसन्ति स्म ते ज्ञेया वैष्णवा हि महत्तमाः ॥ १५ ॥
 नीलाचले ये ये स्यातास्ते हि ज्ञेया महत्तराः ।
 दक्षिणादिदिशां याने यैर्यैः सङ्गो महाप्रभोः ।
 ते ते महान्तो मन्तव्याः परे ज्ञेयाः स्वयोग्यतः ॥ १६ ॥
 अतः स्वरूपचरणैरुक्तं गौरनिरूपणे ।
 पञ्चतत्त्वस्य सम्पर्कत् ये ये स्याता महत्तमाः ।
 ते ते महान्तो गोपालाः स्थानान्छ्रैष्ठ्यादिवाचकाः ॥ १७ ॥
 रसज्ञाः श्रीपुन्दावनमिति यमाहुर्वहुविदो
 यमेतं गोलोकं कतिपयजनाः प्राहुरपरे ।

इनके पार्षदगण महान्त कहलाते हैं । नित्यानन्द प्रभु के गण स
 मूह गोपवेशी गोपाल हैं । इनके सम्पर्क से कतिपय उपगोपाल करके
 कहलाते हैं ॥ १४ ॥

श्रीमन्नद्वीप धाम में विश्वम्भर के निकट जो विलास करते हैं
 उन्हें महत्तम वैष्णव, नीलाचलधाम में जो पिराजमान हैं उन्हें मह-
 त्तर वैष्णव जानना । महाप्रभु के दक्षिण गमन में जिन महात्माओं
 के साथ उनकी सम्पर्क हुआ है वे सब महान्त हैं । अन्यान्यव्यक्ति
 निज निज योग्यता के अनुसार पीछे महान्त नाम से अभिहित हुए
 हैं ॥ १५-१६ ॥

इसलिये स्वरूप चरण ने गौरनिरूपण में कहा है । पञ्चतत्त्व के
 सम्पर्क से जो जो महत्तम करके रचात हैं वे सब विल्यात गोपाल
 महान्त हैं । स्थान के अनुसार उन सबका श्रेष्ठत्व निरूपण किया
 जाता है ॥ १७ ॥

सितद्वीपं प्राहुः परमपि परव्योम जगद्
 नैवद्वीपः सोऽयं जयति परमाश्चर्यमहिमा ॥ १८ ॥
 तस्मिन् वासमुरीचकार नृहरिर्विश्वम्भराख्यां दध-
 त्तत्त्वेष्टायशनः समस्तमहतां चासोऽपि तत्राभवत् ।
 तैः साकं महती हरेरनुगुणाकाराणि लीलाभवंद्
 यत्रासीत् जगतां मनोऽपि परमानन्दाय भग्नं यतः ॥ १९ ॥
 यः सत्ये सितवर्णमादधद्सौ श्रीशुक्लनामाभव-
 त्रेतायां मखभुङ्मखाख्य उचितोऽभूद्रक्तवर्णं दधत् ।
 यः श्यामो दधदासे वर्णकमसुं श्यामं युगे द्वापरे
 सोऽयं गौरविधुर्विभाति कलयन्नामावतारं कलौ ॥ २० ॥
 प्रादुर्भूताः कलियुगे चत्वारः साम्प्रदायिकाः ।
 श्री-वृक्ष-रुद्र-सनकाह्वयाः पादौ यथा स्मृताः ।

रसिकगण जिसको घृन्दावन, यहुवेत्ता साधुगण जिसको गोलोक,
 कुछ व्यक्ति जिसे श्वेतद्वीप अपर कोई कोई परव्योम भाम कहते हैं, वह
 भीनवद्वीपधाम परम आश्चर्यशाली होकर जय को प्राप्त हो रहा है ॥ १८ ॥

जहाँ विश्वम्भर पुरुषोत्तम ने वास किया है । जहाँ उनकी लीला-
 चेष्टा से समस्त महान्त गण का क्रमशः घास हुआ था तथा उन्हीं के
 नाथ प्रभु की श्रीकृष्ण का गुणानुरूप लीला का अनुकरण जहाँ हुआ ।
 जिससे जगज्जीवों का मन परमानन्द में भग्न हो जाता है वह भीन-
 वद्वीप धाम है ॥ १९ ॥

जो वे सत्ययुग में शुभ्रवर्ण तथा शुक्ल नाम का धारण करते
 हैं, जिसने त्रेतायुग में रक्तवर्ण होकर मखभुक् नाम का धारण
 किया है, जो द्वापर में श्याम होकर श्याम नाम से कहे गये हैं वे ही
 भगवान् गौर रूप से श्रीगौरांग नाम से कलिकल में अवतीर्ण हुए
 हैं ॥ २० ॥

अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ।
 श्री-ब्रह्म रुद्र-सनका वैष्णवा चित्तिपावनाः ॥ २१ ॥
 तत्र माध्वीसम्प्रदायः प्रस्तात्रादत्र लिरयते ।
 परयोमेश्वरस्यासीन्दिष्यो ब्रह्मा जगत्पतिः ।
 तस्य शिष्यो नारदोऽभूद् व्यासस्तस्याप शिष्यता ।
 शुको व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्नो ज्ञानात्रोधतात् ।
 तस्य शिष्यः प्रशिष्यारच बहवो भूतले स्थिताः ।
 व्यासाल्लज्यकृष्णदीक्षो मध्याचार्यो महायशः ।
 चक्रे वेदान् विभाज्यासौ संहिता शतदूषणीम् ।
 निर्गुणाद् ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिष्क्रिया ॥
 तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यमहाशयः ।
 तस्य शिष्यो नरहरिस्तन्दिष्यो माधवद्विजः ।

कलिकाल में श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक नाम से चार सम्प्रदाय प्रादुर्भूत होंगे ऐसा पद्मपुगण में लिखा है । “अतः कलिकाल में वैष्णव सम्प्रदाय चार होंगे । श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक ये परम पावन चतुः सम्प्रदाय के आचार्य हैं” । यहाँ प्रस्तात्र क्रम से माध्वीसम्प्रदाय की परम्परा वर्णन करते हैं । परन्त्योमेश्वर श्रीहरि के शिष्य जगत्पति ब्रह्मा जी, ब्रह्मा के नारद, नारद जी के व्यासजी शिष्य हुए । ज्ञान के अत्रोध के कारण श्रीशुक्र व्यास देवजी के शिष्यत्व प्राप्त हुए । शुक्रदेव के जगत् में बहुत शिष्य प्रशिष्य हुए । महायशस्वी मध्याचार्य ने व्यासदेव के निकट कृष्णमन्त्र की दीक्षा ली । उन्होंने वेदों का विभाग कर शतदूषणी नामक संहिता की रचना की । जिसमें निर्गुण ब्रह्म से सगुणब्रह्म की परिष्कृत मीमांसा की गयी है । उनके शिष्य महाशय पद्मनाभाचार्य हुए हैं । पद्मनाभ के नरहरि, उनके माधवद्विजोत्तम, माधव के अक्षोभ, अक्षोभ के जयतीर्थ, ज-

अक्षोभस्तस्य शिष्योऽमृतच्छिष्यो जयतीर्थकः ।
 तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः ।
 विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः ।
 जयधर्ममुनिस्तस्य शिष्यो यद्गणमध्यतः ।
 श्रीमद्विष्णुपुरी यस्तु भक्तिरत्नावलीकृतिः ।
 जयधर्मस्य शिष्योऽभूद्ब्रह्मणः पुरुषोत्तमः ।
 व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम् ।
 श्रीमालज्जमीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरमाश्रयः ।
 तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो यद्धर्मोऽयं प्रवर्तितः ।
 कल्पवृक्षस्यावतारो ब्रजधामनि तिष्ठतः ।
 प्रीतप्रेयोवत्सलतोऽब्जलाख्यफलधारिणः ॥ २२ ॥
 तस्य शिष्योऽभवच्छ्रीमानीश्वराख्यपुरी यतिः ।
 फलयामास शृङ्गारं यः शृङ्गारफलात्मकः ॥ २३ ॥
 अद्वैतः फलयामास दास्यसख्ये फले उभे ।
 श्रीमान्शङ्करपुरी ह्येव वात्सल्ये यः समाश्रितः ॥ २४ ॥

यतीर्थ के ज्ञानसिन्धु, उनके महानिधि, महानिधि के विद्यानिधि, उन
 के राजेन्द्र, उनके जयधर्ममुनि हुए । उन जयधर्ममुनि के शिष्य
 विष्णुपुरी जी हैं । जिन्होंने भक्तिरत्नावली की रचना की । ब्राह्मण
 जयधर्म के दूसरे शिष्य पुरुषोत्तम हुए । उनके शिष्य व्यासतीर्थ हुए
 जिन्होंने विष्णुसंहिता की रचना की । उनके शिष्य भक्तिरस के आ-
 श्रय श्रीमान् लक्ष्मीपति हुए । उन्हीं लक्ष्मीपति के शिष्य माधवेन्द्र
 यति हुए । जिनसे प्रेमभक्ति का प्रवर्तन हुआ । और भी जो वृन्दा-
 वन में कल्पवृक्ष स्वरूप हैं, जो प्रीत-प्रेय-वत्सल तथा उब्जल नामक
 फल का धारण करने वाले हैं, माधवेन्द्रजी उनका अवतार हैं । उनके
 शिष्य श्रीशङ्करपुरी नामक शिष्य हुए । उन्होंने शृङ्गार फल स्वरूप हो
 कर शृङ्गाररस का विस्तार किया । अद्वैतप्रभु ने दास्य-सख्य उभय

ईश्वराख्यपुरी गोर उररीकृत्य गोरवे ।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम् ॥ २५ ॥
स्वीकृत्य राविकाभावकान्ती पूर्वसुदुष्करे ।
अन्तर्वहिरसाम्भोधिः श्रीनन्दनन्दनोऽपि सन् ॥ २६ ॥
आद्यव्यूहोऽपि चैतन्यमविशत् यः पुरे पुरा ।
विचुक्षोभ मनस्तस्य दृष्ट्वा गन्धर्व्वनर्त्तनम् ॥ २७ ॥
द्वारकास्थोऽपि भगवान्नावशत् श्रीशचीसुतम् ।
नानावतारः सुतरामेककालप्रभायतः ॥ २८ ॥
यथा श्यामोऽविशत् कृष्णं भगवन्तं पुरा स्वयम् ॥ २९ ॥
योगमायाबलादेते तिष्ठन्तोऽन्यत्र यद्यपि ।
तथापि प्रावीशन् गौरेऽचिन्त्यलक्षणलक्षिताः ॥ ३० ॥
यथोक्तं व्यासचरणैः प्रभासखण्डमध्यतः ।
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केन योजयेति ॥ ३१ ॥

फल का तथा रंगपुरी ने वात्सल्य का प्रकाश किया है । श्रीगौरचन्द्र भगवान् ने उन ईश्वरपुरी को गुरुत्व रूप से चरण किया तथा प्रा-
कृत-अप्राकृतमय जगत् को प्रेम की बाढ़ में बहाया । रस सागर श्री-
नन्दनन्दन पहिले सुदुष्कर राविका की भाव कान्ति को अन्तर तथा
बाहिर में स्वीकार कर अब गौराङ्गरूप में अवतीर्ण हुए । आद्य-
व्यूह वासुदेव पहले द्वारकापुरी में गन्धर्व्वनृत्य का अथलोकने कर
लुब्ध हो गये थे । अब वे श्रीचैतन्य विग्रह में प्रवेश हुए । एक ही
समय नाना स्वरूप का प्राकट्य होने के कारण महाप्रभु को नानाव-
तार कहा जाता है । जिस प्रकार श्याम अवतार पहले भगवान्
कृष्ण में प्रवेश हुए हैं । यह सब प्रभु को अघटित घटनापटीयसी
योगमाया शक्ति के प्रभाव से होता है । यद्यपि युगावतारादि अन्यत्र
वर्तमान रहते हैं तो भी श्रीचैतन्य स्वरूप में उनका प्रवेश अचिन्त्य
शक्ति योग के हेतु जानना उचित है । श्रीव्यासचरण ने प्रभासखण्ड

रघुनाथं प्रविश्यापि यथा निष्ठति भार्गवः ।
 एवं श्रीनारदमुग्धास्तिष्ठन्त्यन्येषु धामसु ।
 तथैव प्रभुना सा द्वै दीव्यन्ति श्रुतिदेहवत् ॥ ३२ ॥
 किन्तु यद्यद्भक्तगणा यद्यद्भक्तविलासिनः ।
 तत्तद्भावानुसारेण ब्रजे तेषामभूद्गतिः ॥ ३३ ॥
 गौरचन्द्रोदयेऽद्वैत प्रति गौरवचो यथा ।
 दास्ये केचन केचन प्रणयिनः सग्यैक एयोभये
 राधामाधवद्वैष्टिवाः कतिपये श्रीद्वारकावीरितुः ॥
 सख्यादावुभयत्र केचन परे ये घायतारान्तरे ।
 मप्यायद्वहृदोऽस्थिलान् वितनन् वृन्दावनासङ्गिनः ॥ ३४ ॥
 पर्जन्यो नाम गोपाल आसीत् कृष्णपितामहः ।
 उपेन्द्रमिश्रः सन् जातः श्रीहृद्दे सप्तपुत्रान् ॥ ३५ ॥

मैं कहता हूँ—“अचिन्त्यभाव सकल तर्क के द्वारा योजित नहीं होते हैं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार परशुराम जी रघुनाथस्वरूप में प्रवेश होकर अन्य स्वरूप में विराजमान रहे ठीक उसी प्रकार जानना चाहिए । नारदादिक ऋषिगण अन्य धाम में रह कर भी उसी प्रकार श्रुति-विग्रह की भाँति श्रीमहाप्रभु के साथ क्रीड़ा करते हैं । जो-जो भक्त-गण जिस जिस भाव के विलासी हैं, उन सब की उस उस भा-वानुसार ब्रज में गति होती है । गौरचन्द्रोदय में अद्वैत प्रभु के लिये महाप्रभु का वचन है । हे अद्वैत ! कोई दास्य में, कोई प्रण-यिजन मेरे सख्य में, कोई दास्य-सख्य के मिश्रणभाव में, कोई रा-धामाधवनिष्ठा में, कोई द्वारकानाथ के सख्य में विराजित है । अ-धिक जिन जिन अवतारों में जिन जिन भाव के साथ जो जो भक्त वर्तमान हैं वे सब वृन्दावनविलासधारी मुझ में बद्ध हृदय हैं ! अतएव मैं सबको उसी प्रकार ऊँही भावों का प्रदान करूँगा ॥ ३२-३४ ॥

महामान्याभिधा गोपी व्रजे यासीद्वरीयसी ।

कृष्णपितामही सैव नाम्नात्र कमलावती ॥ ३६ ॥

पुरा यशोदाव्रजराजनन्दौ वृन्दावने प्रेमरसाकरो यौ ।

शची-जगन्नाथपुरन्दरामिवौ बभूवतुस्तौ न च संशयोऽत्र ॥ ३७ ॥

अमृ अविशतामेव देवावदितिकरयपो ।

श्रीकौशल्यादशरथौ तथा श्रीपृश्नितत्पती ॥ ३८ ॥

देवकीवसुदेवौ यौ पितरौ रामकृष्णयोः ।

तावप्यमु अविशतामिति जल्पन्ति केचन ।

अन्यथा रामनृत्तैः श्रीविश्वरूपस्य नोद्भवः ॥ ३९ ॥

रोहिणीवसुदेवौ यौ पितरौ रामकृष्णयोः ।

पद्मावतीमुकुन्दौ तौ सन्तो जातौ द्विजोत्तमौ ।

श्रीसुमित्रादशरथौ तवप्यविशताममु ॥ ४० ॥

पहले जो श्रीकृष्ण के पितामह पर्जन्य नामक गोप थे, उनसे अब उपेन्द्रमिश्र नाम से श्रीदृष्ट में जन्म लिया । उनके सात पुत्र थे । जो वृन्दावन में महामान्या वरीयसी नामक श्रीकृष्ण की पितामही थीं, अब यह उपेन्द्रमिश्र की पत्नी कमलावती नाम से हुई हैं ॥ ३५ ॥

पहले वृन्दावन में प्रेमरस के आकर श्रीकृष्ण के माता पिता यशोदा व्रजराज हुए हैं, अब वे शची तथा जगन्नाथमिश्र पुरन्दर रूप से प्रकट हुए हैं । इसमें कोई संशय नहीं है । अदिति करयप, श्रीकौशल्या-दशरथ, श्रीपृश्नि-उनके पति सुतपा इन शची-जगन्नाथ पुरन्दर में प्रवेश हुए हैं । कोई कोई कहते हैं, श्री रामकृष्ण के माता-पिता देवकी-वसुदेव भी इनमें प्रवेश हुए हैं । नहीं तो रामविग्रह विश्वरूप का जन्म नहीं हो सकता था ॥ ३६-३९ ॥

पहिले रोहिणी-वसुदेव जो कि श्रीकृष्ण के माता-पिता थे, अब उन्होंने पद्मावती तथा मुकुन्द होकर आद्यात्मक में जन्म लिया । सु-

पौरुषमासी ब्रजे यासीद्गोविन्दानन्दकारिणी ।
 आचार्य्य श्रीलगोविन्दो गीतपद्यादिकारकः ॥ ४१ ॥
 नाम्नाम्बिका ब्रजे धात्री स्तन्यदात्री स्थिता पुरा ।
 सैवेयं मालिनीनाम्नी श्रीव्यासगृहिणी मता ॥ ४२ ॥
 अम्बिकायाः स्वमा यासीन्नाम्नी श्रीलबिलिम्बिका ।
 कृष्णोच्छिष्टं प्रभुञ्जाना सेयं नारायणी मता ॥ ४३ ॥
 पुरासीजनको राजा मिथिलाधिपतिर्महान् ।
 अधुना वल्लभाचार्य्यो भीष्मकोऽपि च सम्मतः ॥ ४४ ॥
 श्रीजानकी रुक्मिणी च लक्ष्मीनाम्नी च तत्सुता ।
 चैतन्यचरिते व्यक्ता लक्ष्मीनाम्नी च सा यथा ॥ ४५ ॥
 सा वल्लभाचार्य्यसुता चलन्ती स्नातुं सखीभिः सुरदीर्घिकायाम् ।
 लक्ष्मीरनेनैव कृतावतारा प्रभोर्ययौ लोचनवर्त्म तत्र ॥ ४६ ॥

मित्रा तथा दशरथ जी का इन में प्रवेश माना गया है । ब्रज में जो गोविन्द की आनन्दकारिणी पौरुषमासी जी रहीं, वह अब गीत-पद्यों की रचना करने वाले श्रीगोविन्द आचार्य्य हुईं । पहले जो अम्बिका नाम्नी श्रीकृष्ण की स्तन्यदात्री थीं वे अब मालिनी नामक श्रीवासपण्डित की गृहिणी हुईं । उस अम्बिका की भगिनी किलिम्बिका जो कि श्रीकृष्ण का उच्छिष्ट खाती थी, वे अब नारायणी नाम से प्रसिद्ध हुईं । पहले जो मिथिला के अधिपति राजा जनकजी थे वे अब वल्लभाचार्य्य हुए । कोई कोई इनको भीष्मक भी कहते हैं ॥ ४०-४४ ॥

श्री जानकी तथा रुक्मिणी जी ये दोनों ने मिल कर वल्लभाचार्य्य की कन्या रूप से जन्म लिया तथा लक्ष्मी नाम से व्यक्त हुईं । इनकी लक्ष्मी नाम से प्रसिद्धि चैतन्यचरित में व्यक्त है ॥ ४५ ॥

वह वल्लभाचार्य्य की कन्या लक्ष्मी उस समय सखियों के साथ गंगा स्नान करने के लिये जा रही थी । अकस्मात् महाप्रभु के नयन-

श्रीसनातनमिश्रोऽयं पुरा सत्राजितो नृपः ।
विष्णुप्रिया जगन्माता यत्कन्या भूस्वरूपिणी ॥ ४७ ॥
उक्ता प्रसंगात् कलिना श्रीचैतन्यविधूदये ।
भुवोऽंशरूपां परमाञ्च विष्णुप्रिया विदित्वा परिणीय
कान्तामित्यादि ॥ ४८ ॥

विश्वामित्रोऽपि घटकः श्रीरामोद्वाहकर्मणि ।
रुक्मिण्या प्रेषितो त्रिप्रो यश्च श्रीकेशव प्रति ।
तानरं वनमाली यत्कर्मणाचार्य्यता गतः ॥ ४९ ॥
यश्च सत्राजिता विप्र प्रहितो माधवं प्रति ।
सत्योद्वाहाय कुलकः भीकाशीनाय एव सः ॥ ५० ॥
केनाधान्तरभेदेन भेदं कुर्वन्ति सात्त्वताः ।
सत्यभामाप्रकाशोऽपि जगदानन्दपरिहृतः ॥ ५१ ॥

पथ में पड़ीं । वह लक्ष्मी का अवतार थीं ॥ ४९ ॥
पहले सत्राजित् राजा थे, वे अब सनातनमिश्र हुए । भूस्वरूपि-
णी, जगन्माता विष्णुप्रिया उन की कन्या है ॥ ४७ ॥
चैतन्यचन्द्रोदय नाटक में कलिप्रसंग पर ऐसा कहा गया है—
उन देव-देव महाप्रभु ने पृथिवी अंशरूपा, विष्णुप्रिया के साथ वि-
वाह किया इत्यादि ॥ ४८ ॥
पहले श्रीरामचन्द्र के विवाह कर्म में जो विश्वामित्र घटक हुए
थे वे तथा रुक्मिणी के द्वारा केशव के लिए जो विप्र भेजा गया था
वह दोनों मिलकर वनमाली नाम से जन्म लेकर कर्म के द्वारा आ-
चार्य्यत्व को प्राप्त हुए ॥ ४९ ॥
सत्राजित् राजा ने सत्यभामा का विवाह के लिये कुलक नामक
जिस विप्र को माधव के लिये भेजा था वह श्रीगौरांग अवतार में
काशीनाथ हुए ॥ ५० ॥

मथुरायां यज्ञसूत्रं पुरा कृष्णाय यो मुनिः ।

ददौ सान्दीपनिः सोऽभूद्दद्या केशवभारती ॥ ५२ ॥

पुरासीद्रघुनाथस्य यो वशिष्ठमुनिगुरुः ।

स प्रकाशविशेषेण गंगादाससुदर्शना ॥ ५३ ॥

वृषभानुतया ख्यातः पुरा यो ब्रजमण्डले ।

अधुना पुण्डरीकाक्षं विद्यानिधिमहारायः ॥ ५४ ॥

स्थकीयभावमासाद्य राधाविरहकातरः ।

चैतन्यः पुण्डरीकाक्षह्वये तातावदत् स्वयम् ॥ ५५ ॥

प्रेमनिधितया ख्यातिं गौरो यस्मै ददौ सुखी ।

माधवेन्द्रस्य शिष्यत्वाद्गौरवञ्च सदा करोत् ॥ ५६ ॥

तत्प्रकाशविशेषोऽपि मिश्रः श्रीमाधवो भक्तः ।

रत्नावती तु तत्पत्नी कीर्त्तिदा कीर्त्तिता बुधैः ॥ ५७ ॥

भगवद्भक्तगण किसी अवतार भेद से भेद को प्राप्त होते हैं । सत्य-
भामा का प्रकाश भी जगदानन्द पण्डित को जानना चाहिये ॥ ५१ ॥

पहले मथुरा में लिन सान्दीपनि मुनि ने श्रीकृष्ण को यज्ञसूत्र
दिया था, वे अवकेशवभारती हुए ॥ ५२ ॥

पहले रामचन्द्रजी के जो गुरु वशिष्ठ जी थे, वे अव प्रकाश
भेद से गंगादास श्रीर सुदर्शन हुए ॥ ५३ ॥

पहले ब्रजमण्डल में वृषभानु राजा थे, वे अव महाशय पुण्ड-
रीकाक्ष विद्यानिधि हुए ॥ ५४ ॥

निज भाव का आस्वादन करते हुए राधाविरह से कातर श्रीचै-
तन्य पुण्डरीकाक्ष के लिये "ताता" करके बोलते थे ॥ ५५ ॥

श्रीप्रभु ने सुखी होकर जिन को प्रेमनिधि की उपाधि दी है और जिन-
को माधवेन्द्रजी के शिष्य के कारण आप गौरव करते थे, वे माधव-
मिश्र उनके प्रकाश विशेष करके सम्मत हैं । इन की भार्या का
नाम रत्नावती है । पण्डितगण उन्हें वृषभानु, पत्नी कीर्त्तिदा कहके

अंशांशिनोरभेदेन व्यूह आद्यः शचीसुतः ।
 बलदेवो विश्वरूपो व्यूहः संकर्षणो मतः ॥ ५८ ॥
 नित्यानन्दावधूतश्च प्रकाशेन ॥ उच्यते ।
 गौरचन्द्रोदये धर्मं प्रतिवाम्यं क्लोर्यथा ॥ ५९ ॥

अस्याप्रजस्त्वकृतद्वारपरिग्रहः सन्
 संकर्षणः स भगवान् भुवि विश्वरूपः ।
 स्वीयं महः क्लिप्त पुरीश्वरमापयित्वा
 पूर्य परिभ्रजित एव तिरोबभूव इति ॥ ६० ॥

नित्यानन्दावधूतो मह इति महितं हन्त संकर्षणं यः । इति च ॥ ६१ ॥
 यदा श्रीविश्वरूपोऽयं तिरोभूतः सनातनः ।
 नित्यानन्दावधूतेन मिलित्वापि तदा स्थितः ॥ ६२ ॥
 ततोऽवधूतो भगवान् बलात्मा भवन् सदा वैष्णववर्गमध्ये ।
 जगत्वाल तिग्मांशुसहस्रतेज इति ज्ञुवन् मे जनमे नृनर्त ॥ ६३ ॥

कीर्त्तन करते हैं ॥ ५९-५७ ॥

अंश-अंशी अभेद के कारण शचीनन्दन आद्यव्यूह वासुदेव
 तथा बलदेव और विश्वरूप द्वितीयव्यूह संकर्षण स्वरूप हैं ॥ ५८ ॥

वे संकर्षण नित्यानन्द अवधूत बहे जाते हैं । चैतन्यचन्द्रोदय में
 धर्म के प्रति कलि का प्रवचन यह है-इन (प्रभु) के अग्रज जो
 जगत् में विश्वरूप करके बिरयात हैं तथा जो साक्षात् भगवान् सं-
 कर्षण के अवतार हैं, वे पहले से ही द्वार परिग्रह न कर संन्यास
 धर्म का अवलम्बन करते हुए अपनी ज्योति को ईश्वरपुरी में स्था-
 पित कर अन्तर्धान हो गये हैं ॥ ६० ॥

अवधूत नित्यानन्द करके ख्यात हैं । साक्षात् संकर्षण जिन का तेजः
 स्वरूप हैं ॥ ६१ ॥

जिस समय सनातन विश्वरूप तिरोहित हुए उस समय वे अव-
 धूत नित्यानन्द के साथ मिलित होकर अवस्थिति हुए ॥ ६२ ॥

स्वांशेन शोपेण य एव शय्या विष्णोरच कृष्णस्य च वासभूपा ।
 स्वांगस्य भूपावलयोदिरूपैर्लीलाख्यया : वेद निगूढलीलाम् ॥ ६४ ॥
 श्रीवारुणीरेवतवंशसम्भवे तस्य प्रिये द्वे वसुधा च जान्हवी ।
 श्रीसूर्यदासस्य महात्मनः सुते ककुद्भिरूपस्य च सूर्यतेजसः ॥ ६५ ॥
 केचित् श्रोत्रमुधादेवी कलावपि विवृण्वते । - - - - -
 अनङ्गमञ्जरी केचिज्जान्हवीञ्च प्रचक्षते । - - - - -
 उभयन्तु समीचीनं पूर्व्वन्यायात् सतां मतम् ॥ ६६ ॥
 संकूर्पणस्य यो व्यूहः पयोद्विशायिनामकः । - - - - -
 स एव वीरचन्द्रोऽभूच्चैतन्याभिन्नविग्रहः ॥ ६७ ॥
 अमुं प्राविशतां कार्यात् सहजौ निशठोलमुकौ ।
 मीनकेतनरामादिव्यूहः संकर्पणोऽपरः ॥ ६८ ॥

“इसके अनन्तर बलदेव स्वरूप भगवान् अवधूत वैष्णवधर्ग में सहस्र सूर्य की भाँति तेजः विशिष्ट होकर देदीप्यमान हुए” इस प्रकार कह कर मेरे पिता शिवानन्द ने नृत्य किया था ॥ ६३ ॥

जिन नित्यानन्द बलदेव के अंशरूप शोपदेव विष्णु की शय्या, वस्त्र, भूषण स्वरूप हैं । उनसे अपने अङ्ग के बलयादि भूषणरूप से लीला शक्तिके द्वारा श्रीकृष्ण की निगूढलीलाको अवगमन किया है ॥ ६४ ॥
 पहले वारुणी और रेवतवंशोत्पन्ना रेवती बलदेव की दो पत्नी थीं, अब वे दोनों वसुधा-जान्हवी नाम से नित्यानन्द की दो पत्नी हुईं । वे दोनों सूर्य के तुल्य तेजस्वी सूर्यदास की कन्या थीं । वे सूर्यदास पहले रेवती के पिता ककुद्भी थे ॥ ६५ ॥

कोई कोई वसुधादेवी को अनङ्गमञ्जरी तथा कोई कोई जान्हवी कहते हैं । माधुश्री के मत में पूर्व्वन्याय से उभय समीचीन है ॥ ६६ ॥
 संकर्पण का व्यूह पयोद्विशायी चैतन्य के अभिन्न विग्रह वीर-चन्द्र गोस्वामी हुए । वे नित्यानन्द प्रभु के पुत्र थे ॥ ६७ ॥

विष्णुपादोद्भवा गंगा यासीत् सा निजनामतः ।
 नित्यानन्दात्मजा जाता माधवः शान्तनुर्नृपः ॥ ६६ ॥
 व्यूहस्तृतीयः प्रद्युम्नः प्रियनर्मसखाऽभवत् ।
 चक्रो लीलासहायं यो राधामाधवयोर्ब्रजे ।
 श्रीचैतन्याद्वैततनुः स एव रघुनन्दनः ॥ ७० ॥
 व्यूहस्तुर्व्योऽनिरुद्धो यः स वक्रेश्वरपण्डितः ।
 कृष्णावेशजनृत्येन प्रभोः सुखमजीजनत् ॥ ७१ ॥
 सहस्रगायकान्मह्यं देहि त्वं करुणामय ।
 इति चैतन्यपादे य उवाच मधुरं वचः ॥ ७२ ॥
 स्वप्रकाशविभेदेन शशिरेखा तमाविशत् ।
 आविर्भावो गौरहरेर्नकुलब्रह्मचारिणि ॥ ७३ ॥
 आवेशश्च तथा ज्ञेयो मिश्रे प्रद्युम्नसङ्गके ।
 आचार्यो भगवान् खञ्जः कला गौरस्य कथ्यते ॥ ७४ ॥

निशठ और उल्लुभ दोनों सहोदर नित्यानन्दव्यूह वीरचन्द्र में प्रवेश हुए थे । अय इनका नाम मीनकेतन-रामदास है ॥ ६८ ॥

विष्णुचरणोद्भवा गङ्गा निज नाम से ही अर्थात् गङ्गा नाम से नित्यानन्द प्रभु की कन्या है । माधव पहले शान्तनु राजा थे ॥ ६६ ॥

तृतीय व्यूह प्रद्युम्न जी जो कि ब्रज में राधामाधव की लीला के सहायकारी प्रियनर्मसखा थे वे अय श्रीचैतन्य तथा अद्वैतविमल के अभिन्न रघुनन्दन हुए ॥ ७० ॥

चतुर्थ व्यूह अनिरुद्ध वक्रेश्वर पण्डित हुए । जो श्रीकृष्णावेश से नृत्य के द्वारा महाप्रभु को सुख देते थे । उन्होंने महाप्रभु को मधुर-वचन से कहा था—हे करुणामय ! मुझे सहस्र गायकत्व प्रदान कीजिये । निज प्रकाश विशेष से शशिरेखा ने इनमें प्रवेश किया था । नकुल ब्रह्मचारी में गौरहरि का आविर्भाव तथा प्रद्युम्नमिश्र में उन

गोपीनाथाचार्य्यनाम्ना ब्रह्मा ज्ञेयो जगत्पतिः ।

नवव्यूहे तु गणितो यस्तन्त्रे तन्त्रवेदिभिः ॥ ७५ ॥

ब्रजे आवेशरूपत्वाद्ब्यूहो योऽपि सदाशिवः ।

एवाद्धैतगोस्वामी चैतन्याभिन्नविग्रहः ॥ ७६ ॥

यश्च गोपालदेहः सन् ब्रजे कृष्णस्य सन्निधौ ।

ननर्त्त श्रीशिवातन्त्रे भैरवस्य वचो यथा ॥ ७७ ॥

एकदा कार्तिकेमासि दीपयात्रामहोत्सवे ।

सरामः सह गोपालः कृष्णो नृत्यति यत्नवान् ॥ ७८ ॥

निरीक्ष्य भट्टगुरुर्देवो गोपभावाभिलाषवान् ।

प्रिये नर्त्तितुमारब्धश्चक्रभ्रमणलीलया ॥ ७९ ॥

श्रीकृष्णस्य प्रसादेन द्विविधोऽभून् सदाशिवः ।

एकस्तत्र शिवः साक्षादन्यो गोपालविग्रहः ॥ ८० ॥

का आवेश जानना चाहिए । भगवान् आचार्य्यखञ्ज गौरहरि की कला है ॥ ७१-७४ ॥

जगत्पति ब्रह्मा जो कि तन्त्रवेदियों के द्वारा नवव्यूह के मध्य में गिने गये हैं वे आज गोपीनाथाचार्य्य हुए ॥ ७५ ॥

ब्रज में आवेश रूप जो सदाशिव व्यूह है वे अब श्रीचैतन्य के अभिन्न विग्रह अर्द्धैताचार्य्य गोस्वामी हुए हैं ॥ ७६ ॥

जिनने गोपालविग्रह होकर ब्रज में श्रीकृष्ण के निकट रह कर नृत्य किया था । इस विषय में शिवातन्त्र में भैरव का वचन यथा “एक-समय कार्तिक मास में दीपयात्रा महोत्सव पर राम तथा गोपाल के साथ श्रीकृष्ण ने यत्न से नृत्य किया । उसको देखकर गुरु शंकर जी गोपीभावाभिलाषी हो चक्रभ्रमण लीला से श्रीकृष्ण के निकट नाचने लगे । श्रीकृष्ण के प्रसाद में सदाशिव दो स्वरूप हो गये । एक साक्षात् शिव जी दूसरे गोपालविग्रह हैं” ॥ ७७-८० ॥

महादेवस्य मित्रं यः कुबेरो गुह्यकेश्वरः ।
 कुबेरपण्डितः सोऽद्य जनकोऽस्य विद्वाम्बरः ॥ ८१ ॥
 पुरा कुबेरः कैलासे सिद्धसाध्यनिषेधिते ।
 जज्ञाप परमं मन्त्रं शैवं श्री शिववल्लभः ॥ ८२ ॥
 ततो दयालुर्भगवान् वरं वृण्वति सोऽब्रवीत् ।
 तदा कुबेरो वरयामास त्वं मे सुतो भव ॥ ८३ ॥
 प्रार्थितस्तेन देवेशो वरदेशः सदाशिवः ।
 जन्मन्यनन्तरे पुत्रं प्राप्स्यामि पुत्रतां तव ॥ ८४ ॥
 इति प्राप्य वरं कष्टं कियन्तं कालमास्थितः ।
 कार्यादीशयशात् सोऽद्याद्वैतस्य जनकोऽभवत् ॥ ८५ ॥
 योगमाया भगवती गृहिणी तस्य साम्प्रतम् ।
 सीतारूपेणावतीर्णा श्रीनाम्ना तत्प्रकरातः ॥ ८६ ॥
 तस्य पुत्रोऽच्युतानन्दः कृष्णचैतन्यवल्लभः ।
 श्रीमत्पण्डितगोस्वामिशिष्यः प्रिय इति श्रुतम् ॥ ८७ ॥

महादेव जी के मित्र विद्वाम्बर गुह्यकेश्वर जी आज अद्वैत आचार्य के पिता कुबेर पण्डित हुए ॥ ८१ ॥

शिववल्लभ कुबेर ने पहले सिद्ध-साध्य जनों से परिसेधित कैलास में शिव सम्बन्धी मन्त्र का जप किया । उससे दयालु भगवान् शिव जी ने प्रसन्न होकर “वर माँगो” ऐसा कहा । कुबेर ने “तुम मेरे पुत्र हो” ऐसा वर माँगा । उनसे प्रार्थित होकर सदाशिव ने कहा कि इस जन्म के अनन्तर मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा । इस प्रकार वर प्राप्त होकर कुबेर जी ने कुछ काल दुःख से बिताया । पश्चात् ईश के कार्याधीन के वश अद्वैताचार्य के जनक हुए ॥ ८२-८५ ॥

योगमाया भगवती वर्तमान उनकी गृहिणी होकर सीतादेवी नाम से प्रकट हुई । उनका प्रकाश रूप श्री नाम करके हुई । सीता-

यः कार्तिकेयः प्रागासीदिति जल्पन्ति केचन ।
 केचिदाहू रसविदोऽच्युतानाम्नी तु गोपिका ॥
 उभयन्तु समीचीनं द्वयोरेकत्र सङ्गतात् ।
 कार्तिकेयः कृष्णमिश्रस्तत् साम्यादिति केचन ॥ ८८ ॥
 नन्दिनी जङ्गली ज्ञेया जया च विजया क्रमात् ॥ ८९ ॥
 श्रीवासपरिहृतो धीमान् यः पुरा नारदो मुनिः ।
 पर्वताख्यो मुनिवरो य आसीन्नारदप्रियः ।
 स रामपरिहृतः श्रीमांस्तत्कनिष्ठसहोदरः ॥ ९० ॥
 गुरारिगुप्तो हनुमानङ्गदः श्रीपुरन्दरः ।
 यः श्रीसुग्रीवनामासीद्गोविन्दानन्द एव सः ॥ ९१ ॥
 विभीषणो यः प्रागासीद्रामचन्द्रपुरी स्मृतः ॥ ९२ ॥
 उधाचातो गौरहरिर्नैतद्रामस्य कारणम् ।
 जटिला राधिकारवभ्रूः कार्य्यतोऽधिरादेव तम् ।

देवी के पुत्र अच्युदानन्द हुए । जो महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य के प्रिय
 तथा परिहृत गोस्वामी के शिष्य थे । कोई कोई रसवेत्ता कहते हैं कि
 वे पहले कार्तिकेय थे । कोई कोई रसिक ऐसा कहते हैं कि वे पहले
 अच्युता नामक गोपी थे । उभय समीचीन है । दोनों का मिल कर
 प्रकट होना संगत है । किसी के मत में कार्तिकेय कृष्णमिश्र हुए ।
 क्योंकि दोनों में समान कार्य्य देखा गया है ॥ ८८-८९ ॥

जो पहले नारद जी थे वे अब बुद्धिमान् श्रीवास परिहृत हुए ।
 पहले नारदप्रिय पर्वत नामक जो मुनिश्रेष्ठ हुए वे अब श्रीवास प-
 रिहृत के कनिष्ठ सहोदर श्रीमान् रामपरिहृत हैं ॥ ९० ॥

पहले जो हनुमान थे वे अब गुरारिगुप्त हुए । सुग्रीव के साथ
 अंगद जी भी महाप्रभु की लीला में प्रकट हुए थे । अंगद श्रीपुर-
 न्दर तथा सुग्रीव गोविन्दानन्द हुए । पहले जो विभीषण थे वे राम-
 चन्द्रपुरी हुए हैं ॥ ९१-९२ ॥

अतो महाप्रभुभिच्चासंकोचादि ततोऽकरोत् ॥
 ऋचीकस्य मुनेः पुत्रो नाम्ना ब्रह्मा महातपाः ।
 प्रल्हादेन समं जातो हरिदासाख्यकोऽपि सन् ॥ ६३ ॥
 मुरारिगुप्तचरणैश्चैतन्यचरितामृते ।
 उक्तो मुनिसुतः प्रातस्तुलसीपत्रमाहरन् ॥ ६४ ॥
 अधोतमभिशप्तस्तं पिता यवनतां गतः ।
 स एव हरिदासः सन् जातः परमभक्तिमान् ॥ ६५ ॥
 घृन्दायने याः प्रागासन्तणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
 ता एवाष्टौ भक्तरूपा भूता गौडे च ते यथा ॥ ६६ ॥
 अनन्तरं च सुखानन्दो गोविन्दो रघुनाथकः ।
 कृष्णानन्दः केशवश्च श्रीदामोदरराघवौ ॥
 पुण्युपाधिक्रमाज्ज्ञेया अणिमाद्यष्टसिद्धयः ॥ ६७ ॥

इसीलिये ही महाप्रभु ने उनको लक्ष्य करने कहा था वह राम का कारण नहीं है । राविका की सास जटिला ने कार्य्यवश रामचन्द्र-पुरी में प्रवेश किया है । इसलिये महाप्रभु उनसे भिच्चादि ग्रहण के विषय में संकोच रखते थे । ऋचकमुनि के पुत्र जिनका नाम महा-तपा ब्रह्मा है उनसे भी प्रल्हाद जी के साथ जन्म लिया है । वे अब हरिदास हुए ॥ ६३ ॥

मुरारिगुप्तचरण ने चैतन्यचरित नामक ग्रन्थ में कहा है-मुनि-सुत महातपा ब्रह्मा ने एक समय प्रातःकाल में तुलसीपत्र का आहरण कर बिना धोय पिता को अर्पण किया । पिता के द्वारा अभिशाप प्राप्त होकर यवन हुए । वे ही यवनकुल के उत्पन्न परमभक्तिमान् हरिदास जी हैं ॥ ६४-६५ ॥

घृन्दायन में पहले अणिमादि जो अष्टसिद्धियाँ थीं उन सब का अब गौड़देश में महाप्रभु के भक्त होकर जन्म हुआ । क्रम से उनका

जयन्तेयाः स्थिता ऊर्ध्वरेतसः समदर्शिनः ।
 नव भागवताः पूर्व्य श्रीभागवतसंहिताः ॥ ६८ ॥
 प्रत्यूचुर्जनकं तेऽद्य भूत्वा सन्न्यासिनः सदा ।
 प्रमुणा गौरहरिणा विहरन्ति स्म ते यथा ॥ ६९ ॥
 श्रीनृसिंहानन्दतीर्थः श्रीसत्यानन्दभारती ।
 श्रीनृसिंह-चिदानन्द-जगन्नाथ हि तीर्थकाः ॥ १०० ॥
 तीर्थाभिधो वासुदेवः श्रीरामः पुरुषोत्तमः ।
 गरुडाख्यावधूतश्च श्रीगोपेन्द्राख्य आश्रमः ॥ १०१ ॥
 लोके ये निधयः ख्याताः पञ्च-शंखादयो नव ।
 अत्रैव निधिरत्नाख्य गर्भं जाताः प्रभोः प्रियाः ॥ १०२ ॥
 श्रीश्रीनिधिरश्च श्रीगर्भः कविरत्नः सुधानिधिः ।
 विद्यानिधिर्गुणनिधि-रत्नबाहुर्द्विजाप्रणीः ।
 श्रीमानाचार्यरत्नश्च श्रीरत्नाकरपण्डितः ॥ १०३ ॥

नाम-अनन्त, सुखानन्द, गोविन्द, रघुनाथ, कृष्णानन्द, केशव, दामो-
 दर तथा राघव हैं । ये आठों पुरी उपाधी से युक्त हैं ॥ ६६-६७ ॥
 ऊर्ध्वरेत, समदर्शी, भगवद्भक्त जो नौ जन जयन्ती पुत्र थे, जि-
 न्होंने पहले जनक ऋषि को भागवतसंहिता सुनाई थी उन ने सब
 अब सन्यासग्रहण पूर्वक गौरहरि के साथ विहार किया । उनका नाम
 श्रीनृसिंहानन्दतीर्थ, श्रीसत्यानन्दभारती, श्रीनृसिंहतीर्थ, श्रीचिदान-
 न्दतीर्थ, श्रीजगन्नाथतीर्थ, वासुदेवतीर्थ, श्रीरामतीर्थ, पुरुषोत्तमतीर्थ
 है । गरुडअवधूत तथा गोपेन्द्र ये आश्रम उपाधि से युक्त हैं ॥ ६८-१०१ ॥
 लोक में पञ्च-शंखादि जो नौ निधियाँ हैं उनने अब प्रभु के प्रिय हो
 कर मनुष्य देह से जन्म लिया । उनका नाम श्रीनिधि, श्रीगर्भ,
 कविरत्न, सुधानिधि, विद्यानिधि, गुणनिधि, रत्नबाहु, आचार्यरत्न,
 रत्नाकरपण्डित, है ॥ १०२—१०३ ॥

नीलाम्बरचक्रवर्ती-गौरस्य भावि जन्म यत् ।
 सभायां कथयामास तेनासौ गर्ग उच्यते ॥ १०४ ॥
 श्रीशान्या जनकत्वेन सुमुखो वल्लभो मतः ।
 पाटला या व्रजे ख्याता ज्ञेया तस्य सधर्मिणी ॥ १०५ ॥
 पुराणानामर्थवत्ता श्रीदेवानन्दपरिष्ठितः ।
 पुरासीन्नन्दपरिपत्परिष्ठितो भागुरिमुनिः ॥ १०६ ॥
 काशीनाथो लोकनाथः श्रीनाथो रामनाथकः ।
 चत्वारोऽमी ज्ञानिभक्ताः सनकाद्या न संशयः ॥ १०७ ॥
 चतुर्ण्येषु शब्देषु नायशब्दस्य कीर्तनात् ।
 चतुः सनवदेवाग्र चतुर्नाथ उदीरितः ॥ १०८ ॥
 चेद्व्यासो य एवासीदासो वृन्दावनोऽधुना ।
 सरा यः कुसुमापीडः कार्यतस्तं समाविशत् ॥ १०९ ॥
 भट्टो बल्लभनामाभूच्छुको द्वैपायनात्मजः ॥ ११० ॥

नीलाम्बर चक्रवर्ती जी पहले गर्ग थे । उन्होंने मिश्र जगन्नाथ जी की सभा में पहले से ही गौरगदव के जन्म की भावी सूचना दी थी ॥ १०४ ॥

वृन्दावन में यशोदा जी के पिता सुमुखनामक गोप अथ शची-माता के जनक हुए । उनकी सधर्मिणी व्रज में पाटला नामक गोपी थी । पहले नन्द की परिपद् के परिष्ठित भागुरिमुनि नामक जो पुरोहित थे वे अथ पुराणों के अर्थज्ञाता देवानन्द परिष्ठित हुए । काशी-नाथ, लोकनाथ, श्रीनाथ, रामनाथ ये चार ज्ञानीभक्त सनकादि चार थे । इसमें कोई सन्देह नहीं है । इन चारों में नाथ शब्द का प्रयोग है । इसलिये चतुः सन की तरह ये चारों नाथ कहे जाते हैं ॥ १०५।१०८॥

पहले चेद्व्यास जी अब वृन्दावनदास जी हुए । वृन्दावन में जो पहले कुसुमापीड नामक सरा थे अब उनसे कार्यवश इनमें प्रवेश

आचार्यः श्रीजगन्नाथो गङ्गादासः प्रमुप्रियः ।
 आसीन्निधुवने प्राग् यो दुर्वासा गोपिकाप्रियः ॥ १११ ॥
 चन्द्रशेखर आचार्यश्चन्द्रो ज्ञेयो विचक्षणैः ।
 श्रीमानुद्धवदासोऽपि चन्द्रावेशवतारकः ॥ ११२ ॥
 अतरचैतन्यहरिण कथितोऽयं निरापतिः ।
 श्रीमद्विश्वेश्वराचार्यो यः प्रागासीद्दिवाकरः ॥ ११३ ॥
 विश्वकर्मा पुरा योऽभूद्य भास्करठक्कुरः ।
 भिक्षुको वनमाली ॥ सुदामासीद्द्विजः पुरा ।
 धनं प्राप्य प्रभोः सङ्गे दुःखं मत्वाभ्रमद्यतः ॥ ११४ ॥
 वैकुण्ठे द्वारपालौ यौ जयाविजयान्नको ।
 तावाद्य जातौ स्वेच्छातः श्रीजगन्नाथमाधवौ ॥ ११५ ॥
 पुण्डरीकाक्षकुमुदौ ख्यातौ वैकुण्ठमण्डले ।
 गोविन्दगरुडाख्यौ तौ जातौ गोडे प्रभोः प्रियौ ॥ ११६ ॥

किया है । द्वैपायन के आत्मज शुकदेव जी अब बल्लभभट्ट करके प्र-
 सिद्ध हैं ॥ १०९—११० ॥

आचार्य जगन्नाथ और प्रभु के प्रिय गंगादास ये दोनों पहले
 निधुवन में गोपिकाप्रिय दुर्वासा थे । चन्द्रशेखर आचार्य को वि-
 चक्षण जनों को चन्द्र जानना चाहिये । श्रीमान् उद्धवदास जी भी
 चन्द्र के आवेश अवतार हैं । इसलिये चैतन्यप्रभु इनको निरापति
 कहते थे । श्रीविश्वेश्वराचार्य पहले दिवाकर थे ॥ १११—११३ ॥

पहले जो विश्वकर्मा थे वे अब भास्कर ठाकुर हैं । पहले जो
 सुदामा जी थे अब वे भिक्षुवनमाली हुए । सुदामा जी प्रभु से
 धन प्राप्त होकर दुःखी हो गये थे । अब केवल प्रभु का सङ्ग पाकर
 सुख पूर्वक विहार करने लगे ॥ ११४ ॥

वैकुण्ठ के जय विजय नामक दोनों द्वारपाल अब निज इच्छा से
 जगन्नाथ माधव हुए । वैकुण्ठ में जो पुण्डरीकाक्ष-कुमुद प्रसिद्ध हैं

गरुडः परिहृतः सोऽथ गरुडो यः पुरा श्रुतः ।
 पुरा योऽक्रूरनामासीत् स गोपीनाथसिंहकः ।
 इति केचित् प्रभापन्तेऽक्रूरः केशवभारती ॥ ११७ ॥
 पुरी श्रीपरमानन्दो य आसीदुद्वयः पुरा ।
 इन्द्रशुम्भो महाराजो जगन्नाथार्चकः पुरा ।
 जातः प्रतापरुद्रः सन् सम इन्द्रेण सोऽधुना ॥ ११८ ॥
 भट्टाचार्यः सार्वभौमः पुरासीद्गोपतिर्दिवि ॥ ११९ ॥
 प्रियनर्मसराः कश्चिदञ्जुनः पाण्डवोऽञ्जुनः ।
 मिलित्वा समभूद्रामानन्दरायः प्रभोः प्रियः ॥ १२० ॥
 अतो राधाकृष्णभक्तिप्रेमतत्त्वान्निकं कृती ।
 रामानन्दो गौरचन्द्रं प्रत्यवर्णयदन्वहम् ॥ १२१ ॥
 ललितेत्याहुरेके यत्तदेवेनानुमन्यते ।
 भवानन्दं प्रति प्राह गोरो यत्त्वं पृथापतिः ॥ १२२ ॥

वे दोनों अब गौड़देश में प्रभु के प्रिय गोविन्द तथा गरुड़ नाम से हुए हैं ॥ ११५—११६ ॥

पहले जो गरुड़ थे अब वे गरुड़ परिहृत हुए । पहले अक्रूर नाम से जो प्रसिद्ध हुए अब वे गोपीनाथसिंह हुए । कोई कोई केशव-भारती को अक्रूर जी का अवतार मानते हैं ॥ ११७ ॥

पहले जो उद्वय जी थे वे अब परमानन्दपुरी हुए हैं । पहले जो जगन्नाथ जी के अर्चक इन्द्रशुम्भ महाराज हुए उनसे अब इन्द्र के साथ प्रतापरुद्र होकर जन्म लिया ॥ ११८ ॥

सार्वभौम भट्टाचार्य पहले देवलोक में बृहस्पति थे । श्रीकृष्ण के प्रिय नर्मसरा अञ्जुन तथा पाण्डव अञ्जुन दोनों मिलकर प्रभु के प्रिय रामानन्दराय हुए । इसलिये वे गौरचन्द्र के निकट राधाकृष्ण के भक्तिप्रेमतत्त्व का वर्णन करते थे । कोई कोई महा-

गोप्यऽर्जुनीयया साद्धमेकीभूयापि पाण्डव ।
 अर्जुनो यद्रायरामानन्द इत्यादुरुत्तमा ॥ १२३ ॥
 अर्जुनीयाभवतुर्णमर्जुनोऽपि च पाण्डव ।
 इति पाद्मोत्तरे खण्डे व्यक्तमेव विरानते ।
 तस्मादेतत्त्रय रामानन्तरायमहाशय ॥ १२४ ॥
 ब्रजे भक्ता समासेन कथ्यन्तेऽथ यथामति ॥ १२५ ॥
 पुरा श्रीनामनामासीदभिरामोऽधुना महान् ।
 द्वात्रिंशता जनैरेव चाह काष्ठमुवाह य ॥ १२६ ॥
 पुरा सुदाम नामासीदद्य ठक्कुरसुन्दर ।
 वसुदामसत्पायश्च पण्डित श्रीधनञ्जय ॥ १२७ ॥
 सुवल्लो य प्रियभ्रेष्ठ स गौरीदासपण्डित ।
 कमलाकर पिप्पलाह नाम्नासीद्यो महाबल ॥ १२८ ॥

नुभाव इनको ललिता जी का अवतार मानते हैं। काई कोई ऐसा स्वीकार नहीं करते हैं। क्योंकि गौरचन्द्र भवानन्द के लिय कहते थे, तुम पृथापति पाण्डुराज है। विद्मगण कहते हैं कि पाण्डुपुत्र अर्जुन अर्जुनीया नाम्मी किसी गोपा के साथ मिल कर रामानन्द का जन्म हुआ है। पाद्मोत्तर खण्ड में स्पष्ट ही देखा जाता कि अर्जुन अर्जुनीया हुए हैं। अतएव ललिता अर्जुनीया-गोपी और पाण्डव ये तीनों मिलकर रामानन्दराय नामसे कहे गये हैं ॥ ११६-१२४ ॥

अब ब्रज भक्त गणों का वर्णन करते हैं—पहले जो श्रीदाम नामक गोपाल हुए वे अब अभिराम ठाकुर हैं। वे वत्सीस व्यक्तियों द्वारा उठाने योग्य काष्ठ को वशी करके उठाया ॥ १२५-१२६ ॥

पहले जो सुदाम नामक गोपाल थे अब वे सुन्दरठक्कुर हुए। वसुदाम सत्पा धनञ्जय पण्डित हुए। प्रियतम, सुवल्ल गौरीदास पण्डित तथा महाबल कमलाकर पिप्पलाई हैं ॥ १२७-१२८ ॥

सुनाहुर्यो ब्रजे गोपो दत्त उद्धारणस्वयकः ।
 महेशपण्डितः श्रीमान्महाबाहुर्नजे सरा ॥ १२६ ॥
 स्तोक्कृष्णः सरा प्राग्यो दासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १३० ॥
 सदाशिवसुतो नाम्ना नागरः पुरुषोत्तमः ।
 वैद्यशोद्धवो दामा यो वल्लभो सरा ब्रजे ॥ १३१ ॥
 नाम्नार्जुनः सरा प्राग्यो दासः श्रीपरमेश्वरः ।
 कालः श्रीकृष्णदासः स यो लज्जः सरा ब्रजे ॥ १३२ ॥
 खोलावेचातया रयातः पण्डितः श्रीधरो द्विजः ।
 आसीद्ब्रजे हास्यकारी यो नाम्ना कुसुमासवः ॥ १३३ ॥
 बलदेवसराः कश्चित् प्रबलो गोपनालकः ।
 आसीद्ब्रजे पुरा योऽत्र स हलायुधठक्कुरः ॥ १३४ ॥
 वरूथपः सरा नाम्ना कृष्णचन्द्रस्थ जो ब्रजे ।
 आसीत् स एव गौराङ्गवल्लभो रुद्रपण्डितः ॥ १३५ ॥

ब्रज में जो सुनाहु करके गोप थे वे अब उद्धारणदत्त करके रयात हुए हैं । महानाहु सरा महेश पंडित हैं ॥ १२६ ॥

पहले जो स्तोक्कृष्ण सरा रहे वे पुरुषोत्तमदास हुए । ब्रज में जो वाम नामक गोप रहे वे अब वैद्यवंश उत्पन्न सदाशिव के पुत्र नागर पुरुषोत्तम हैं ॥ १३०-१३१ ॥

ब्रज में जो अर्जुन नामक सरा रहे वे परमेश्वरदास तथा लज्ज-गसरस कालाकृष्णदास हुए ॥ १३२ ॥

ब्रज में हास्यकारी जो कुसुमासव सरा थे वे अब खोलावेचा नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मणवंश में उत्पन्न पंडित श्रीधर हैं । ब्रज में जो बलदेव के सरा प्रबल नामक गोपनालक थे वे अब हलायुध ठाकुर हैं ॥ १३३-१३४ ॥

ब्रज में वरूथप नामक कृष्ण के सरा अब गौराङ्गप्रिय रुद्रप-

गन्धर्वो यो ब्रजे गोप. कुमुदानन्दपण्डितः ॥ १३६ ॥
 पुरा घृन्दायने चेटी स्थितो भृङ्गारभंगुरो ।
 श्रीकाशीश्वरगोविन्दो तौ जातौ प्रमुसेवकौ ॥ १३७ ॥
 घृन्दायने स्थितौ प्राग् यौ भृत्यौ रक्तपत्रकौ ।
 गौरागसेवकाय हृदिदास वृहच्छिद्वशू ॥ १३८ ॥
 पयोदवारिदौ प्राग् यौ नीरसस्कारकारिणौ ।
 तानद्य भृत्यौ रामायिर्नन्दायिरचेति विश्रुतौ ॥ १३९ ॥
 ब्रजे स्थितौ गायकौ यौ मधुकण्ठमधुव्रतौ ।
 मुकुन्दवासुदेवौ तौ दत्तौ गौराङ्गगायकौ ॥ १४० ॥
 नटरचन्द्रमुखः प्राग् यः स करो मकरध्वजः ॥ १४१ ॥
 पुरासीद् यो ब्रजे नाम्ना मृदङ्गी श्रीसुवाकरः ।
 स श्रीशंकरघोषोऽद्य ढम्फवाद्यविशारदः ॥ १४२ ॥
 आसीद् ब्रजे चन्द्रहासो नर्तको रसकोविदः ।
 सोऽयं नृत्यविनोदी श्रीजगदीशारय-पण्डितः ॥ १४३ ॥

पण्डित हैं । गन्धर्वनामक गोप कुमुदानन्द पण्डित हैं ॥ १३५-१३६ ॥

पहले घृन्दायन में भृङ्गार तथा भंगुर नामक दो कृष्ण के भृत्य थे वे अब काशीश्वर-गोविन्द नाम से प्रमु सेवक होकर प्रकट हुए ।
 पहले ब्रज में रक्त-पत्रक करके जो दो भृत्य थे अब वे गौर सेवक हृदिदास वृहच्छिद्वशू हुए । पहले ब्रज में जलसस्कारकारी पयोद तथा वारिद नामक जो दो सेवक थे अब वे रामायी-नन्दायी नाम से ख्यात हुए ॥ १३५-१३६ ॥

ब्रज के मधुकण्ठ और मधुव्रत नामक दोनों गायक मुकुन्द तथा वासुदेवदत्त नाम से महाप्रमु के सेवक हुए ॥ १४० ॥

पहले जो चन्द्रमुख नट थे अब वे मकरध्वजकर हैं । मृदंगिया सुवाकर गौरलीला में ढम्फवाद्य में विशारद शंकरघोष हुए । ब्रज

वेणुञ्च मुरली योऽद्यान्नाम्ना मालावरो ब्रजे ।
 सोऽधुना वनमालारयः पण्डितो गौरवल्लभः ॥ १४४ ॥
 वृन्दावने यौ विख्यातौ शुक्लौ दक्षविचक्षणौ ।
 तावद्य जातौ मञ्जुष्यैश्चैतन्यरामदासकौ ॥ १४५ ॥
 अधुना वल्लवीवर्गा ये ये भूताः प्रमुप्रियाः ।
 ते त एव प्रकाश्यन्ते ययामति यथाश्रुतम् ॥ १४६ ॥
 श्रीराधा प्रेमरूपा या पुरा वृन्दावनेश्वरी ।
 स श्रीगदाधरो गौरवल्लभः पण्डिताख्यकः ॥ १४७ ॥
 निर्णीतः श्रीस्वरूपैर्यो ब्रजलक्ष्मीतया यथा ॥ १४८ ॥
 पुरा वृन्दावने लक्ष्मीः श्यामसुन्दरवल्लभा ।
 साद्य गौरप्रेमलक्ष्मीः श्रीगदाधरपण्डितः ॥ १४९ ॥

मे चन्द्रहास नामक जो रसज्ञ नर्तक हुए थे अब नृत्यविलासी जग-
 दीश पंडित हैं । ब्रज मे कृष्ण के वेणु-मुरली धारणकारी मालावर
 थे अब वे गौरप्रिय वनमाली पंडित हुए ॥ १४४-१४४ ॥

वृन्दावन मे दक्ष विचक्षण नामक जो दोनों शुक पक्षि थे
 अब वे चैतन्य-रामदास रूप से प्रकट हुए । ये दोनों मेरे बड़े भाई
 हैं ॥ १४५ ॥

अब प्रभु की प्रेयसी गोपियों ने जहाँ जन्म लिया उसका यथामति
 जैसा सुना है वर्णन करते हैं ॥ १४६ ॥

पहले वृन्दावनेश्वरी प्रेमस्वरूपिणी श्रीकृष्ण की कान्ता श्रीराविका
 जी है वे अब गौरवल्लभ गदाधरपण्डितगोस्वामी हैं । स्वरूपगोस्थामि
 ने जिनको ब्रज की लक्ष्मी रूप से निर्णय किया है । पहले वृन्दावन
 में श्यामसुन्दर की प्रिया लक्ष्मी अब गौराङ्गप्रेमलक्ष्मी गदाधरपण्डित
 है । जय ललिता राधा की अनुगता है तब वह अनुराग करके रयात
 हैं । अतः ललिता जी का गदाधरपण्डित गोस्वामि में प्रवेश है । यह

रागामनुगता यत्तल्ललिताप्यनुराधिका ।

अतः प्राविशन्नेषां त गौरचन्द्रोदये यथा ॥ १५० ॥

इयमपि ललितैव राधिकाली न गन्तु गदाधर एव भूसुरेन्द्रः ।

हरिरयमथ वा स्वयैव शक्त्या त्रितयमभूत् स सखी च राधिका च

॥ १५१ ॥

ध्रुवानन्दब्रह्मचारी ललिनेत्यपरे जगुः ।

स्वप्रकाशविभेदेन समीचीन मनन्तु तत् ॥ १५२ ॥

अथवा भगवान् गौरः स्वच्छयागात्रिरूपताम् ।

अतः श्रीराधिकारूपं श्रीगदाधरपण्डित ॥ १५३ ॥

राधाविभूतिरूपा या चन्द्रकान्ति पुरा स्थिता ।

साद्य गौराङ्गनिकटे दासवश-गदाधर ॥ १५४ ॥

पूर्णानन्दा ब्रजे यासीद्वलदेवप्रियाप्रणी ।

सापि कार्प्यैवशादेव प्राविशत्तं गदाधरम् ॥ १५५ ॥

पुरा च-गदाधरी यासौ द्ब्रजे कृष्णप्रिया परा ।

अधुना गौडदेशे सा कविराज सदाशिव ॥ १५६ ॥

कथा चैतन्यचन्द्रोदय मे वर्णित है । “यह भूसुर श्रीगदाधर राधिका की प्रियसखी ललिताकी भाँति प्रतीयमान हो रहे हैं । भावार्थ है यह गदाधर नहीं है यह तो ललिता हैं । अथवा श्रीहरि ही निजशक्ति के द्वारा स्वयं, राधिका तथा ललिता इन त्रिविध प्रकार से प्रतीयमान हो रहे हैं” । कोई कोई कहते हैं कि ध्रुवानन्दब्रह्मचारी ललिता जी हैं । निज प्रकाशभेद के हेतु यह मत समीचीन है । किन्त्या भगवान् गौरचन्द्र निज इच्छा से त्रिरूप हुए हैं । अतएव गदाधर पण्डित राधिका स्वरूप हैं ॥ १४७-१५३ ॥

पहले राधिका की भूपणरूपा जो चन्द्रकान्ता थी वह अब गौराङ्ग के निकट दासवश गदाधर हुई । ब्रज में चलराम की प्रियतमा जो

यस्या वक्षसि सुप्ताप कृष्णो वृन्दावने पुर ।
 सा श्रीभद्राद्य गौराङ्गप्रिय शङ्करपण्डित ॥ १५७ ॥
 पुरा श्रीतारकापाल्यौ ये स्थिते व्रजमण्डले ।
 ते साम्प्रतं जगन्नाथश्रीगोमन्तो प्रभो प्रियौ ॥ १५८ ॥
 शै-या यासीद्व्रजे चण्डी स दामोदरपण्डित ।
 छुतरिचत् कार्ग्यतो देवी प्राविशत् सरस्वती ॥ १५९ ॥
 कलामशिक्षयद्राधा या निशाखा व्रजे पुरा ।
 साद्य स्वरूपगोस्वामी तत्तद्भाजित्वासमान् ॥ १६० ॥
 केशत्रिन्यासमकरोद्राधा चित्रा व्रजे पुरा ।
 सेदानीं कचिराज श्रीजनमाली प्रभो प्रिय ॥ १६१ ॥
 श्रीराधाप्राणरूपा या श्रीचम्पकलता व्रजे ।
 साद्य राघवगोस्वामी गोमर्द्धनरुनस्थिति ।
 भक्तिरत्नप्रकाशाद्यग्रयो येन विनिर्मित ॥ १६२ ॥

पूर्णानन्दा थी वह अब कार्ग्यार्थ गदाधर में प्रविष्ट हुई । पहले व्रजमें श्रीकृष्ण की परमप्रिया चन्द्रानली नाम्नी ने सखी थी अब वह गोवर्द्धन म सन्नाशिव कचिराज हुई ॥ १५४-१५६ ॥

पहले श्रीकृष्ण ने जिसके वक्ष में शयन किया वह श्रीभद्राञ्जन गौराङ्गप्रिय शङ्कर पण्डित है ॥ १५७ ॥

पहले व्रजमण्डल में तारका पाली नामक जो दो गापी थीं वह दोनों गोपी अत्र प्रभुप्रिय जगन्नाथ गोपाल हुई । व्रज की चण्डी शै-या सखी दामोदर पण्डित है । किसी कार्ग्य के वक्ष सरस्वतीदेवी ने उसमें प्रवेश किया है । पहले व्रज म जो श्रीनिशाखा राधिका जी को कला मिराती थीं वह अत्र उस उस भाव के मिलासी स्वरूप गोस्वामी जी है । चित्रा नाम सखी जो कि व्रज म पहले राधिका का वेशत्रिन्यास करती थी वह अब प्रभुप्रिय वनमाली कचिराज हैं ।

तुङ्गविद्या ब्रजे यासीत् सर्वशास्त्रे विशारदा ।
 सा प्रबोधानन्दयतिगौराङ्गानसरस्वती ॥ १६३ ॥
 इन्दुलेखा ब्रजे यासीच्छ्रीराधायाः सखी पुरा ।
 कृष्णदासब्रह्मचारी कृतवृन्दावनस्थितिः ॥ १६४ ॥
 रङ्गदेवी पुरा यासीदद्य भट्टो गदाधरः ।
 अनन्ताचार्यगोस्वामी या सुदेवी पुरा ब्रजे ॥ १६५ ॥
 श्रीकाशीश्वरगोस्वामी शशिरेखा पुरा ब्रजे ।
 धनिष्ठा भक्त्यसामग्री कृष्णायदाद्ब्रजेऽमिताम् ।
 सैव सम्प्रति गौराङ्गप्रियो राघवपण्डितः ॥ १६६ ॥
 गुणमाला ब्रजे यासीदमयन्ती तु तत्त्वसा ।
 रत्नरेखा कृष्णदासः कृष्णानन्दः कलावती ॥ १६७ ॥
 गौरसेनी पुरा नारायणराचस्पतिः कृती ।
 पीतान्धरस्तु कावेरी सुकेशी मकरध्वजः ॥ १६८ ॥

श्री राधिका की प्राणस्वरूपा ब्रज की चम्पकलता सखी आज गोव-
 र्द्धन निवासी राघवगोस्वामी है । राघवपण्डित ने भक्तिरत्नप्रकाश
 नामक ग्रन्थ की रचना की थी ॥ १५८—१६२ ॥

ब्रज में सर्वशास्त्र विशारदा पहले जो तुङ्गविद्या सखी थी वह
 अब गौर गुणगान में सरस्वती प्रबोधानन्द सरस्वती है । पहले ब्रज
 में इन्दुलेखा राधिका की सखी थी वह अब कृष्णदासब्रह्मचारी है ।
 इन्होंने वृन्दावन में वास लिया है । रङ्गदेवी सखी अब भट्टगदाधर
 हैं । ब्रज की सुदेवी सखी अब अनन्ताचार्य गोस्वामी है । पहले
 ब्रज में शशिरेखा जी अब श्रीकाशीश्वर गोस्वामी है । ब्रज में पहले
 धनिष्ठा नामक जो सखी रही जो कि श्रीकृष्ण के लिये अपरिमित
 गाय सामग्री प्रदान करती थी वह अब गौराङ्गप्रिय राघवपण्डित है ।
 गुणमाला नामक ब्रज में जो रही वह अब उनकी भगिनी दमयन्ती

माधवी माधवाचार्य इन्दिरा जीवपण्डितः ॥ १६६ ॥
 ब्रजे यासीत सुमधुरा तुङ्गविद्या प्रिया पुर ।
 विद्यावाचस्पतिर्गौरप्रियो ब्रजजनप्रियः ॥ १७० ॥
 चलभद्रारयणो भट्टाचार्यः श्रीमधुरेक्षण ।
 श्रीनाथमिश्रश्चित्राङ्गी कविचन्द्रो मनोहरा ॥ १७१ ॥
 ब्रजे नान्दीमुखी यासीत साग माङ्गलश्रुतः ।
 प्रह्लादो मन्यते कैश्चिन्मत्पिता स न मन्यते ॥ १७२ ॥
 फलकण्ठीमुकण्ड्यो ये ब्रजे गान्धर्वनाटिके ।
 रामानन्दवसु, सत्यराजश्चापि यथायथम् ॥ १७३ ॥
 ब्रजे कात्यायनी यासीदद्य श्रीकान्तसेनकः ॥ १७४ ॥
 ब्रजाधिकारिणी यासीद्वृन्दादेवी तु नामतः ।
 सा श्रीमुकुन्ददासोऽग्निरखण्डरासः प्रभुप्रियः ॥ १७५ ॥

है । रत्नरेखा-कृष्णदास, उलायती कृष्णानन्द है । पहले जो शारसेनी है वह अब नारायण वाचस्पति है । कावेरी पीताम्बर तथा सुन्दरी मकरध्वज है ॥ १६३—१६८ ॥

माधवी माधवाचार्य तथा इन्दिरा जीवगोस्वामी है । पहले ब्रज में जो सुमधुरा नामक तुङ्गविद्या की सरसी रही वह अब गौर-प्रियपति विद्यावाचस्पति है । वे ब्रजजन के प्रिय पति हुए ॥ १७० ॥

ब्रज में जो मधुरेक्षण है वह चलभद्र भट्टाचार्य हुई । चित्राङ्गी श्रीनाथमिश्र और मनोहरा कविचन्द्र है । ब्रज में जो नान्दीमुखी थी वह अब सारङ्गठाकुर है । कोई कोई उन को प्रह्लाद मानते हैं । मेरे पिता का वह मत नहीं है ॥ १७ — १७२ ॥

ब्रज में पहले फलकण्ठी तथा मुकण्ठी नामक गान्धर्व नाटिनी थीं ये दोनों अब रामानन्दवसु और सत्यराज हुई । ब्रज की कात्यायनी देवी श्रीकान्तसेन है । ब्रज की अधिकारिणी वृन्दादेवी अब प्रभु के

पुरा वृन्दावने वीरादूती सत्त्वाश्च गोपिकाः ।
 निनाय कृष्णनिकटं सेदानीं जनको मम ।
 ब्रजे विन्दुमती यासीदद्य सा जननी मम ॥ १७६ ॥
 पुरा मधुमती प्राणसरसी वृन्दावने स्थिता ।
 अधुना नरहर्य्याख्यः सरकार प्रभोः प्रियः ॥ १७७ ॥
 पुरा प्राणसरसी यासीन्नाम्ना रत्नावली ब्रजे ।
 गोपीनाथाख्यकाचार्य्यो निर्मलत्वेन विश्रुतः ॥ १७८ ॥
 वंशी कृष्णप्रिया यासीत् सा वंशीदासठक्कुरः ॥ १७९ ॥
 श्रीरूपमञ्जरी ख्याता यासीद्बृन्दावने पुरा ।
 साद्य रूपाख्यगोस्थामी भूत्वा प्रकटतामियात् ॥ १८० ॥
 या रूपमञ्जरी प्रेष्टा पुरासीद्रतिमञ्जरी ।
 सोच्यते नामभेदेन लवङ्गमञ्जरी बुधैः ॥ १८१ ॥
 साद्य गौराभिन्नतनुः सत्त्वांराध्यः सनातनः ।
 तमेव प्राविशत् कार्यान्मुनिरत्नः सनातनः ॥ १८२ ॥

प्रिय, श्रीखंड ग्राम निवासी मुकुन्ददास है। पहले वृन्दावन में जो वीरा नामक दूती रही जो कि गोपियों को कृष्ण के निकट ले जाती थी वह अब मेरे पिता शिवानन्दसेन है। ब्रज में जो विन्दुमती थी वह अब मेरी माता है ॥ १७३—१७६ ॥

पहले ब्रज में मधुमती नामक जो प्राणसरसी थी वह अब प्रभु के प्रियपात्र नरहरि सरकार ठाकुर है। पहले ब्रज में रत्नावली नामक जो प्राणसरसी थी वह अब परम पवित्र गोपीनाथाचार्य्य हैं। श्रीकृष्ण की प्रिया वंशी अब वंशीदास ठाकुर हुईं। पहले ब्रज में जो रूपमंजरी थी वह अब रूपगोस्थामी होकर प्रकट हुईं। रूपमंजरी की प्रिया रतिमंजरी जो कि नाम भेद से पहिहतगण के द्वारा लवङ्गमंजरी बनी जाती है वह अब गौर के अभिन्नतनु, सत्त्वांराध्य सनातन गोस्थामी

श्रीमल्लवङ्गमञ्जरीः प्रकाशत्वेन विश्रुतः ।
 शिवानन्दचक्रवर्त्ती कृतवृन्दावनस्थितिः ॥ १८३ ॥
 अनङ्गमञ्जरी यासीत् साद्य गोपालभट्टकः ।
 भट्टगोस्वामिनं केचिदाहुः श्रीगुणमञ्जरी ॥ १८४ ॥
 रघुनाथख्यको भट्टः पुरा या रागमञ्जरी ।
 कृतश्रीराधिकाकुण्ड-कुटीरवसतिः स तु ॥ १८५ ॥
 दासश्रीरघुनाथस्य पूर्वाख्या रसमञ्जरी ।
 अमुं केचित् प्रभापन्ते श्रीमती रतिमञ्जरीम् ।
 भानुमत्याख्यया कचिदाहुस्तं नामभेदतः ॥ १८६ ॥
 भूगर्भठक्कुरस्यासीत् पूर्वाख्या प्रेममञ्जरी ।
 लोकनाथाख्यगोस्वामी श्रीलीलामञ्जरी पुरा ॥ १८७ ॥
 कलावती रसोल्लासा गुणतुङ्गा व्रजे स्थिता ।
 श्रीविशाखाकृतं गीतं गायन्ति स्माद्य ता मताः ।
 गोविन्द-माधवानन्द-वासुदेवा यथाक्रमम् ॥ १८८ ॥

हैं। कार्य के लिये मुनिरत्न सनातन का भी इनमें प्रवेश है। शिवानन्द चक्रवर्त्ती लवङ्गमञ्जरी का प्रकाश करने प्रसिद्ध तथा वृन्दावन-वासी हैं ॥ १७७-१-३ ॥

अनङ्गमञ्जरी श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी हैं। इनको कोई कोई गुणमञ्जरी कहते हैं। पहले जो रागमञ्जरी है वह अथ रघुनाथभट्ट है। जो कि राधकुण्ड के तट में कुटीर पर वास करते थे। रघुनाथदास जी का पहिला नाम रसमञ्जरी है। उनको कोई कोई श्रीमती रतिमञ्जरी कहते हैं। कोई कोई नामभेद से भानुमती कहते हैं। भूगर्भठाकुर का पहला नाम प्रेममञ्जरी है। लोकनाथ गोस्वामी पहले लीलामञ्जरी थे ॥ १८४-१८७ ॥

कलावती-रसोल्लासा-गुणतुङ्गा नामक यों व्रज में रहकर विशाखा ,

रागलेखा-कलाकेल्यौ राधादास्यौ पुरा स्थिते ।
 ते ज्ञेये शिखिमाहाती तत्त्वसा मावची क्रमात् ॥ १८६ ॥
 पुलिन्दतनया मल्ली-कालिदासोऽधुनाभवत् ॥ १८७ ॥
 शुक्लाम्बरो ब्रह्मचारी पुरासीदयत्नपत्निका ।
 प्रार्थयित्वा यदन्नं श्रीगौराङ्गो मुक्त्वान् प्रभुः ।
 केचिदाहुर्ब्रह्मचारी याज्ञिकब्राह्मणः पुरा ॥ १८८ ॥
 अपरे यज्ञपत्न्यौ श्रीजगदीश-हिरण्यकौ ।
 एकादश्यां ययोरन्नं प्रार्थयित्वाऽवसत् प्रभुः ॥ १८९ ॥
 मधुरायां पुरा यासीत् सैरन्ध्री कृष्णवत्सला ।
 साद्य नीलाचलावासः कारीमिश्रः प्रभोः प्रियः ॥ १९० ॥
 मालती-चन्द्रलतिका-मञ्जुमेधा-धराङ्गदा ।
 रत्नावली च कमला-गुणचूडा-मुकेशिनी ॥ १९१ ॥
 कर्पूरमञ्जरी-श्याममञ्जरी-श्वेतमञ्जरी ।
 विलाममञ्जरी-कामलेष्वा च मौनमञ्जरी ॥ १९२ ॥
 गन्धोन्मादा-रसोन्मादा-चन्द्रिका कलभाषिणी ।
 गोपाली-हरिणी-काली-कालाक्षी-नित्यमञ्जरी ॥ १९३ ॥
 कलकण्ठी-कुरङ्गाक्षी-चन्द्रिका-चन्द्रशेखरा ।
 या याः स्वयोग्यसेवायां नियुक्ताः सन्ति रावया ॥ १९४ ॥

रचित गीत को गाती थीं अथ वे तीनों यथाक्रम मे गोविन्द, माध-
 वानन्द, वासुदेव नाम से गयान हैं । रागरेखा कलारेखि नामक दोनों
 राधादासी अथ शिखिमाहाती तथा उनकी भगिनी माधव हुईं । पु-
 लिन्दकन्या मल्ली अथ कालिदास हैं । पहले जो यज्ञपत्नी थी वह
 अथ शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हुईं । जिनमे अन्न की प्रार्थना कर गौराङ्ग-
 प्रभु भोजन करने थे । कोई कोई कहते हैं कि ब्रह्मचारी जी पहले
 याज्ञिक ब्राह्मण रहे । अन्य दो यज्ञपत्नी श्रीजगदीश-हिरण्यक हैं ।

गौरेण तत्प्रियैः साद्वर्द्ध धृतपुरुषविग्रहाः ।
 खेलन्ति स्म स्वभावानुसारात्ताः क्रमशो यथा ॥ १६८ ॥
 शुभानन्दो द्विजो ब्रह्मचारी श्रीवरनामकः ।
 परमानन्दगुप्तो यत्कृता कृष्णस्तवावली ॥ १६९ ॥
 रघुनाथो द्विजः करिचद्गौराङ्गानन्यसेवकः ।
 कसारिसेनः सेनः श्रीजगन्नाथो महाशयः ॥ २०० ॥
 सुबुद्धिमिभः श्रीदर्पो रघुमिभो द्विजोत्तमः ॥ २०१ ॥
 रिपवः पट् काममुर्या जिता येन वशीकृताः ।
 यथार्थनामा गौरेण जितामित्रः स निर्मितः ॥ २०२ ॥
 निम्मिता पुस्तिका येन कृष्णप्रेमतरङ्गिणी ।

प्रभु ने एकादशी के दिवस जिन दोनों से अन्न प्रार्थना कर भोजन किया । पहले मथुरा में कृष्णवल्लभा जो सैरिन्ध्री (कुन्जा) थी वह अब नीलाचलवासी, प्रभुप्रिय वाशीमिश्र हैं ॥ १६८-१६७ ॥

मालती, चन्द्रलतिमा, मजुमेया, वराङ्गदा, रत्नावली, कमला, गुणचूडा, सुनेशिनी, कर्पूरमंजरी, श्याममंजरी, श्वेतमंजरी, विलासमंजरी, कामलेखा, मौनमंजरी, गन्धोन्मादा, रसोन्मादा, चन्द्रिका, कलभापिणी, गोपाली, हरिणी, काली, कालाक्षी, नित्यमंजरी, कल-
 ष्ठी, कुरंगाक्षी, चन्द्रिका, चन्द्रशेखरा जो ये सब राधिका के द्वारा निज निज योग्यसेना में नियुक्ता हैं वे सब प्रिय पुरुष शरीर धारण कर निज निज भावानुसार गौरचन्द्र के साथ क्रोड़ा करती हैं । उन सनना नाम यथाक्रम से यह हैं—शुभानन्दद्विज, श्रीधरब्रह्मचारी, कृष्णस्तवावली रचयिता परमानन्दगुप्त, गौराङ्ग के अनन्य सेवक रघुनाथ नामक कोई ब्राह्मण, कसारिसेन, जगन्नाथसेनमहाशय, सुबुद्धिमिश्र, श्रीदर्प, द्विजश्रेष्ठरघुमिश्र, कामान्दिपट्टरिपु जयकारी श्रीगौराङ्ग के द्वारा जितामित्र करके बोले हुए, कृष्णप्रेमतरङ्गिणी के रचयिता

श्रीमद्भागवताचार्यो गौराङ्गात्यन्तवल्लभः ।

सुशीलः पण्डितः श्रीमान् जीवः श्रीवल्लभात्मजः ॥ २०३ ॥

वाणीनाथद्विजश्चम्पहट्टवासी प्रभोः प्रियः ॥ २०४ ॥

ईशानाचार्यकमलौ लक्ष्मीनाथस्य-पण्डितः ।

गङ्गामन्त्री जगन्नाथो मामुपाविर्द्विजोत्तमः ॥ २०५ ॥

श्रीकण्ठाभरणोपाधिरनन्तरचट्टवंशजः ।

हस्तिगोपालनामा च रङ्गवासी च वल्लभः ॥ २०६ ॥

हर्ष्याचार्यो गौरसङ्गी मिश्रः श्रीनयनस्तथा ।

कविदत्तो रामदासरिचरञ्जीव-सुलोचनौ ॥ २०७ ॥

केचिन्महान्तः केचित्स्युर्महान्तरचोपपूर्वकाः ।

उभयेषां गुणस्तुल्यास्तेनामी गणिता मया ॥ २०८ ॥

खण्डवासी नरहरेः साहचर्यान्महत्तरौ ।

गौराङ्गैकान्तशरणी चिरञ्जीव-सुलोचनौ ॥ २०९ ॥

गुरोर्नाम न गृन्हीयादिति शास्त्रानुसारतः ।

श्रीश्रीनाथस्य पूर्व्याख्या मया न प्रकटीकृता ॥ २१० ॥

गौरवल्लभ श्रीमद्भागवताचार्य, सच्चरित्र श्रीवल्लभात्मज पण्डित श्रीजीव, प्रभुप्रिय चम्पाहट्ट निवासी वाणीनाथद्विज, ईशानाचार्य, कमल, लक्ष्मीनाथपण्डित, गङ्गामन्त्री, द्विजोत्तमजगन्नाथ मामुपाधि, चट्टवंशजात कण्ठाभरण उपाधिवाले अनन्त, हस्तिगोपाल, रङ्गवासी वल्लभ, हरि आचार्य, गौरांगसंगी श्रीनयनमिश्र, कविदत्त, रामदास, चिरञ्जीव, सुलोचन हैं ॥ २०७ ॥

इनमें से कोई कोई महान्त कोई कोई उपमहान्त थे । उभय का समान गुण होने के कारण पृथक् रूप से गणना नहीं की गई है ॥ २०८ ॥

खण्डवासी नरहरि के सहायक के कारण चिरंजीव और सुलोचन महत्तर हैं और गौराङ्ग के एकान्त आश्रित हैं ॥ २०९ ॥

व्याचकार परिपाट्याद्यो भागवत-सहिताम् ।

कुमारहृदटे यत्कीर्त्तिं कृष्णदेवो विराजते ॥ २११ ॥

ये ये महान्त कमभङ्गभूतास्ते मेऽपराध कृपया क्षमन्तम् ।

गुणान् प्रिनिर्णीय सता समस्तान् ब्रह्मेशशेषाः कथितुं न शक्ता ॥ २१२ ॥

मीमासकेभ्य शठतार्किकेभ्यो विशेषतो हेतुरस्तेभ्य एष ।

गोप्यं प्रयत्नाद्रसशास्त्रनिर्द्ध्यो देयं सदा गौरपदाभयेभ्य ॥ २१३ ॥

श्रीगौराङ्गगणोद्देशदीपिका रचिता मया ।

दीप्यता परमानन्दसन्दोहभक्तवेशमनि ॥ २१४ ॥

शाके वसुप्रहमिते मनुनैव युक्ते

ग्रन्थोऽयमाविरभवत् कृतमस्य घस्तात् ।

“शास्त्र के अनुसार आदि में गुरु का नाम उल्लेख नहीं करना चाहिये” इसलिये मैंने गुरु श्रीनाथ का पहला नाम नहीं प्रकाश किया है ॥ २१० ॥

जिनने परिपाटी के साथ भागवतसंहिता की व्याख्या की जिन की कीर्त्ति कुमारहृदट में कृष्णदेवनिग्रह रूप से विराजमान हैं । जिन जिन महान्तों का कमभग हुआ है वे सब कृपा कर मेरा अपराध क्षमा करें । क्योंकि ब्रह्मा ईश और शेष भी साधुआ की गुणा बली वर्णन करने में असमर्थ हैं ॥ २१२ ॥

मीमासक, शठ, तार्किक, विशेष करके हेतुनादी इन सब के निकट चल से इस ग्रन्थ का गोपन रखें । गौरपदाभयो रसशास्त्रवेत्ताओं को इसे प्रदान करना चाहिये ॥ २१३ ॥

परमानन्द रानि भक्तों के गृह में हमसे विरचित यह श्रीगौरगणोद्देशदीपिका देदीप्यमान होवे ॥ २१४ ॥

वसु (८) प्रह (६) मनु (१४) से युक्त शब्दाद् में अर्थात् १४६८ शाक में किसी एक दिवस मैंने इस ग्रन्थ की रचना की ।

चैतन्यचन्द्रचरितामृतमग्नचित्तैः

शोध्य. समाकलितगौरगणान्य एषः ॥ २१५ ॥

इति श्रीपुरीदासपरमानन्ददासापरनामधेय

कन्निकर्णपूरधिरचिता श्रीगौरगणोद्देशटीपिका

समाप्ता ॥

महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचन्द्र के चरितामृत में मग्न चित्त विद्वगण मेरा
इस गौरगण नामक ग्रन्थ का सशोधन करेंगे ॥ २१५ ॥

इति गौरगणोद्देशटीपिका का अनुवाद समाप्त हुआ ॥

मङ्गलधार-सप्तमी माघ वदी सम्बत् २०१० स्थान-मथुरा मदनमोहन
जी का मन्दिर में (चक्रतीर्थ) अनुवादक—कृष्णदास ॥

भजन-विताइ गौर राधेश्याम ।



जय-हरैरुगण हरे राम ॥

ॐ श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः ॐ



धृन्दावनेश्वरि ! वयो-गुण-रूप-लीला-
 सौभाग्य-केलि-करुणाजलधे ! ऽवधेहि ।
 दामीभयानि मुखयानि सदा सकान्तां
 त्वामालीभिः परिघृतामिदमेव याचे ॥ १ ॥
 शृंगारयानि भयतीमभिसारयानि
 धीद्वयैव कान्तवदनं परिवृत्य यान्तीम् ।
 घृत्वाञ्जलेन हरिसन्निधिमानयानि
 संप्राप्य तर्जनसुधां हृपिता भयानि ॥ २ ॥
 पादे निपत्य शिरसानुनयानि रुष्टां
 तं प्रत्यपाङ्ग-कलिकामपि चालयानि ।
 तद्दोर्द्वयेन सहसा परिरम्भयानि
 रोमाञ्चकञ्चुकथतीमवलोकयानि ॥ ३ ॥

हे धृन्दावनेश्वरि ! हे वयः, गुण, रूप, लीला, सौभाग्य, केलि, करुणा की समुद्र ! अवधान काजिये । कुछ निवेदन करता हूँ । मैं आपकी दासी बनूँगा । कान्त के साथ सखीमण्डल से परिवृता आप की सेवा कर सुखी करूँगा ॥ १ ॥

मैं आपको विविध विभूषण से भूषित कराकर अभिसार कराऊँगा । जब आप वाम्यता के वश कान्तवदन का अवलोकन कर फिर जाएँगी तब मैं वस्त्राञ्जल धारण कर श्रीहरि के निकट आपको लाऊँगा तथा आप की तर्जना को सुधा की भाँति प्राप्त होकर प्रसन्न प्राप्त करूँगा ॥ २ ॥

आपको रुष्टा देख चरण में पतित होकर अनुनय करूँगा तथा

प्राणप्रिये ! कुसुमतल्पमलङ्कुरु त्व
 मित्यच्युतात्तिमकरन्द-रसं ध्यानि ।
 मा मुञ्च माधव ! सतीमिति गद्गदाद्ध-
 वाचस्तत्रैत्य निकटं हरिमाक्षिपानि ॥ ४ ॥
 वामामुदस्य निजवत्ससि तेन रुद्धा-
 मानन्दप्राप्तिमिता मुहुरुन्मलन्तीम् ।
 व्यस्तालका स्मलितवेणीमवद्धनीवीं
 त्वा वीक्ष्य साधु जनुरेव कृतार्थयानि ॥ ५ ॥
 तल्पे मयैव रचिते बहुशिल्पभाजि
 पौण्ये निवेश्य भवतीं नननेति वाचम् ।
 कृष्ण सुप्तेन रमयन्तमनन्तलीलं
 पातायनात्तनयनैः निभालयानि ॥ ६ ॥

आपका अलक्ष्य में अपाङ्ग चालना सजेत कर श्रीहरि के विशाल
 भुजों के द्वारा आपको परिरम्भित कराऊँगा । उमसे आप रोमाञ्ज
 कञ्चुलिका से युक्त हो जायेंगे । उमे नेत्रकर आनन्दित हो जाऊँगा ॥३॥

आपका हस्तधारण कर "हे प्राणप्रिये ! इस कुसुमगन्ध्या को अ-
 लङ्कन कीजिये" इस प्रकार जब श्रीहरि कहेंगे तब मैं उम मयरन्दरम
 का पान करूँगा । फिर जब आप गद् गद् अर्द्धवचन में कहेंगी
 कि "हे माधव ! मैं सती हूँ मुझे छोड़ दीजिये" तब मैं आनन्द आप
 के समक्ष श्रीहरि का निरस्कार करूँगा ॥ ४ ॥

वाम्य स्वभाववती आपकी हस्तयुगल में उठा कर जब श्रीकृष्ण
 निज वत्सल्य में रोष करेंगे तब आप आनन्द में उन्मलित होकर
 मुग्ध नहीं कह सेंगी । उम समय आपकी अलक्षाली विगल जा-
 णगी, वेणी का बन्धन टूट जाणगा, नीवीन्धन गुल जाणगा । आप
 की इस प्रकार मधुर प्रवस्था देख कर जगम को मफल करूँगा ॥५॥

गुणमे विरचित यद् शिल्पकला विरिष्ट पुष्पाख्या में नदी नहीं

स्थित्वा वह्निर्यजनयन्त्र-निबद्धडोरी-
पार्नित्रिर्नर्पणवशान्मृदु चीनयानि ।
उत्तुङ्ग फेलिकलित-भ्रमप्रिन्दुजाल-
मालोपयानि मणितै स्मितमुद्गीरानि ॥ ७ ॥

श्रीरूपमञ्जरि-मुग्धप्रियकिङ्करीणामादेशमेव सतत शिरसा वहानि ।
तेनैव हन्त तुलसी परमानुष्मपापात्रीभवानि धरवाणि सुखेन सेनाम् ॥
माल्यानि हारकन्कानिमृजा विचित्र-
वर्त्ति शिनाशुघुसृणारुरुचन्दनानि ।
वीनीर्लज्ज गपुरादियुता सखीभि
मार्द्धं मुग्ध प्रिचयानि कला प्रमाश्य ॥ ६ ॥

इस प्रकार धोलने वाली आपको बैठकर अनन्त लीलापरायण श्री
कृष्ण जन आपने साथ विलास करेगे तब मैं गवाक्षरध म नयन द
कर दर्शन करूँगा ॥ ६ ॥

आप दोनों जन विलास से विभ्रान्त होकर अत्युच्च फेलिक्रीडा
से भ्रमित हागे तब मैं घाहिर रह कर व्यनन यन्त्र डोरी का आक-
पण कर मृदु मृदु व्यनन करूँगा तथा घर्म्म कण दूर कराकर मन्द-
हास्य के साथ रतिकृन्तन श्रवण करूँगा ॥ ७ ॥

उस समय श्रीरूपम नरी प्रमुख प्रिय किङ्करीगण आदेश करेंगी
कि “तुम अब डोरि परित्याग कर पुष्पानयन चम्पनघर्षणादि परि-
चर्या म जाओ” । उनका आदेश सर्वत्र मस्तक मे धारण कर त
दानीन्तन सेवा में नियुक्त हाऊँगा तथा आना प्रतिपालन करने के
कारण तुलसीम जरी की परम अनुष्मपा पात्र नरूँगा ॥ ८ ॥

मैं माला का प्रथम, हार केयूरानि अलङ्कार का मार्जन, मकरी-
भङ्गी आदिक निर्माणार्थ विचित्र गती की रचना, कर्पूरकु कुम-
अगुरु-चन्दनादि से अनुलेपन का प्रस्तुत, लज्ज, सुषारि आदि से
ताम्बूल निर्माण करूँगा, तिनसे सखिया के बीच मेरी कला कौशल

त्वां स्तब्धपवसनाभरणां सकान्तां
 वीक्ष्य प्रसादनत्रिधौ द्रुतमुद्यताभिः ।
 श्रीरूप-रङ्ग-तुलसी-रतिमञ्जरीभिः
 दृष्टानयानि तव सम्मुखमेव तानि ॥ १० ॥
 त्वामाशिखाचरणमूढविचित्रवेपां
 स्पृष्टुं पुनरच धृततृष्णामवेक्ष्य कृष्णम् ।
 आयान्तमेव विकट-भ्रुकुटीविभङ्ग-
 हृद्भक्त्युदञ्चितमुरी विनिवर्त्तयानि ॥ ११ ॥
 तत्रेत्य विस्मयवतीं ललितां प्रतीह
 साध्वीत्वकण्टकविनिष्क्रमणार्थमस्याः ।
 प्राप्रं न्यसिद्धदयि ! मामियमेव धूर्त्तं
 त्युक्तिं हरेः स्वहृदलि रसयानि नित्यम् ॥ १२ ॥
 निष्क्रम्य कुञ्जभवनाद्विपिने विहसुं
 वान्तैकवाहु परिरब्धतनुं प्रयान्तीम् ।

का प्रकाश होगा ॥ ६ ॥ केलिविलास से कान्त के साथ आपका स्तब्ध
 घेरा भूपादि देखकर श्रीरूपमंजरी-तुलसी-रतिमंजरीआदिक सरियों
 आपको सजाने के लिये उग्रत होंगी, उनकी दृष्टि निक्षेप से मैं उन
 सब वस्तुओं को आपके सम्मुख लाऊँगा ॥ १० ॥ हे राधिके ! म-
 स्तरु से चरण पर्यन्त विचित्र वेपों से भूषित आपको सतृष्ण श्री-
 कृष्ण स्पर्श करने के लिये जब आँगे तब उस समय मैं मिथ्यारोप
 के घरा विकट भ्रुकुटी नचा कर हुंकार के द्वारा ऊपर मुग्न आ कर
 उन का तिरस्कार करूँगा ॥ ११ ॥

यहाँ श्रीकृष्ण आ कर विस्मयवती ललिता जी को कहेंगे कि हे
 ललिते ! यह मैं राधिका का साध्वीत्व कण्टक दूर करने के लिये
 आया हूँ । परन्तु धूर्त्ता तुम्हारी यह सग्री निषेध करती है । इस प्र-
 कार मनोहर श्रीकृष्ण की उक्ति रूप मधुधारा का मैं निज हृदय म-

त्वामालीभिः सह कथोपकथ्या प्रफुल्ल-
वत् । महं व्यजनपाणिरनुप्रयानि ॥ १३ ॥
गायन्ति ते गुणगणास्तववर्त्मगन्धं
पुष्पास्तरेभ्यः तुलयानि सुगन्धयानि ।
सालीतति, प्रतिपदं सुमनोऽतिवृष्टि
स्वामीन्यहं प्रतिदिशं तनयानि वाढम् ॥ १४ ॥
प्रेम्ण-स्वपानिकृतकौसुम-हारवाञ्छी-
केयूरकुण्डलकिरीटाविराजिताङ्गीम् ।
तानां भूषयानि पुनरात्मवचित्त्व-पुष्पै-
रास्वादयानि रसिवालिततीरिमानि ॥ १५ ॥
चन्द्राशुरुप्य-सलिलैरवनिक्तरोध-
स्वच्छचक्रदम्बसुरभावलिगीतकीर्त्तौ ।

धुकर के द्वारा आस्वादन करूँगा ॥ १३ ॥ हे वृन्दावनेश्वरि ! कुञ्ज
भवन से बाहिर होकर विपिन विहार के लिये गमनोत्प्रेत, श्रीकृष्ण के
बाहु से आलिङ्गित, सखियों के साथ कथोपकथन में प्रफुल्लितहृदया आ-
पके पीछे पीछे व्यजन हाथ में लेकर मैं गमन करूँगा ॥ १३ ॥ हे
स्वामिनि ! मैं निजरचित पङ्क्तियों से आपके गुणगण का गान करूँगा
और जिस मार्ग में आप जायेंगे उस मार्ग में पुष्प बिछाकर कोमल
तथा सुगन्धित करूँगा । सखियों के साथ पद पद में चारों दिशा में
पुष्पों का वर्णन करूँगा ॥ १४ ॥ हे वृन्दावनेश्वरि ! वनविहार स-
मय जत्र प्रियतम अपने हाथों से कुसुम चयन कर उसके द्वारा हार,
वाञ्छी, केयूर, कुण्डल, किरीटादि बनाकर आपको भूषित करेंगे तब
मैं भी कविता कुसुमों से आपको भूषित करूँगा अर्थात् कविता के
द्वारा उसका वर्णन कर उस कविता कुसुम रस से रसिक सखीसमूह
का आनन्द विधान करूँगा ॥ १५ ॥ हे श्रीराधे ! कदम्बों के सुगन्ध
से सुगन्धित, भ्रमरों से गीत कीर्त्ति, चन्द्रकिरण रूप रीप्य जल से

आरध्व-रासरभसां हरिना सह त्वां
 त्वत्पाठितैव विदुषी कल्याणि वीनाम् ॥ १६ ॥
 रासं समाप्य दयितेन समं सम्बीभि
 विभ्रान्तिभाजि नवमालातिमानिकुब्जे ।
 त्वय्यानयानि रसघन् करकाग्ररम्भा-
 द्राक्षादिकानि सरसं परिचेपयानि ॥ १७ ॥
 तल्पं सरोजदलकलुप्तमनङ्गकेलि-
 पथ्याप्तमात्मकलया रचितं तुलस्याम् ।
 त्वां प्रेयसा सह रसादविशाययानि
 ताम्बुलमाराग्यितुमुत्वनमुल्लसानि ॥ १८ ॥
 मम्बाहयानि चरणावलकैः स्पृशानि -
 जिघ्रानि मौरभ-समृद्धचमत्क्रियाब्धिः ।
 अदणोर्द्धधान्युरमिजौ परिरम्भयानि
 चुम्बान्यलक्षितमयेक्षित सौकुमार्याः ॥ १९ ॥

मातों धीत उम यमुना पुलिन में जय आर श्रीहरि के साथ रासारम्भ
 करेंगी तब उम समय आपकी शिक्षिता, वीणावादन में परिटता मैं
 वीणा लेकर बादन करूँगा ॥ १६ ॥ मन्त्रियों के सह प्राणघल्लभ के
 माय जत्र आप रामविहार समापन कर नवीन मालतीकुञ्जमें विभ्राम
 करेंगे तब मैं सरस अनार, आग्र, केला, अंगूरादिक फल लाकर परि-
 चेपण करूँगा ॥ १७ ॥ हे राधे ! तुनमी के द्वारा निजरत्ना प्रकाशन
 पूर्वक कमलदलों से विरचित अनङ्गकीड़ा युक्त शय्या में प्रियतम
 के माय आर हो शयन कराऊँगा तथा परमानन्द से सरस ताम्बुल
 प्राप्ति के लिये उन्नमित होऊँगा ॥ १८ ॥ हे ईश्वरि ! मैं आप का
 चरणकमल युगल की मंघादन (मेवा) करूँगा तथा मंघादन करना
 दृष्ट्या मौरभ का आघाग कर आभार्य्य समुद्र का लाभ करूँगा और
 भी नयनयुगल में लगा कर मनो में परिरम्भन कराऊँगा तथा अ-

निशस्तनुच्यन्तेतरप्रसृतालकाल्या
 ताडङ्क-हारततिगन्धनहाप्रमुक्ता ।
 प्रेष्ठस्य ते तव च सप्रथिता निभाल्य
 तत्रानयानि परमाप्तसखी प्रयोध्य ॥ २० ॥
 ता दर्शयानि सुगन्धिधुपु मञ्जयानि
 ताभ्य प्रसादमतुल सहसा ज्ञानानि ।
 तन्नूपुरादिराणितैर्गतसान्द्रनिद्रा
 शन्योत्थिता सचकिता भजती भजानि ॥ २१ ॥
 हे स्वामिनि । प्रियसखीप्रपयाकुलाया
 कान्ताङ्गतस्तव नियोजितुमपारयन्त्या ।
 न्दप्रन्थयान्यलककुण्डलमाल्यमुक्ता-
 ग्रन्थि निचक्षुण्णतयागुलिशैलेन ॥ २२ ॥
 नाशाप्रत श्रुतियुगान्च प्रियाजयानि
 तद्भूषण मणिसरास्तु तिसूत्रयानि ।

लक्षित रूप से चुम्बन कर उसका सौकुमार्य का आस्वादन करूँगा
 ॥ १६ ॥ हे देवि । रात्रि शेष में आपका और आपके प्रियतम का
 प्रसरणशील अलक, ताडङ्क, हार, बेसर का ग्रन्थन शेष देस कर प-
 रमप्रिय सखियों को जागर्तित कर वहाँ उन वेशों का आनयन पूर्वक
 आपको दिखाऊँगा ॥ २० ॥ सखियों को उहे दिगारर सुखसागर
 में निमज्जित करूँगा तथा उनके अतुलनीय प्रसाद का लाभ करूँगा ।
 सखियों के नूपुर शान्ति से निविड निद्रा प्राप्त अथच चकित होकर
 जागरण करी आपका भजन करूँगा ॥ २१ ॥ हे स्वामिनि । आप
 प्रियसखिया को दस कर लज्जायुक्त हो उठने की चेष्टा करेंगी । परन्तु
 हार कुण्डलादि से ग्रन्थित हो जाने के कारण कान्त के अंग से आप
 वियुक्त होने में असमर्था होंगी उस समय में निचक्षुण्णता से अगुली
 कीशल दिखाकर ग्रन्थि विमोचन करूँगा ॥ २२ ॥ मैं आपके ना-

प्राणध्वुंदाधिकमेव सदा तवैकं
 रोमापे देवि ! क्लयानि कृतावधाना ॥ २३ ॥
 त्वा सालिमात्मसदनं निभृतं व्रजन्ती
 त्यक्त्वा हरेरनुपथं तदलक्षितेत्य ।
 तं खण्डितामनुनयन्तमवेक्ष्य चन्द्रा
 तद्वृत्तमालिततिसंसदि वर्णयानि ॥ २४ ॥
 प्रक्षालयानि चदनं मलिलैः सुगन्धै
 र्दन्तान् रसालजलैस्तथ धारयानि ।
 निर्लेजयानि रसना तनुहंसपद्म्या
 सन्दर्शयानि मुखुरं निपुणं प्रमृज्य ॥ २५ ॥
 स्नानाय सूक्ष्मघसन परिधाययानि
 हाराङ्गनाचपयनादवतारयानि ।
 अभ्यञ्जयाण्यरुणसीरभहृद्यतैलै
 रुद्वर्त्तयानि नवकुङ्कुमचन्द्रचूर्णैः ॥ २६ ॥

साप्र से घेसर, वर्णयुगल मे कूण्डल को उन्मुक्त करूँगा । निज अ-
 ध्वुंदाप्राण से भी अधिक आपका एक एक तनुरुह को सावधानता
 के साथ अलोकन करूँगा ॥ २३ ॥ हे स्वामिनि ! सगियों के साथ
 जब आप निभृत मार्ग से निज गृह को गमन करेंगे उस समय मैं
 आपका संग त्याग कर अलक्षितरूप से श्रीकृष्ण के पश्चात् गमन क-
 रूँगा तथा खण्डिता चन्द्रायली के अनुनय करी उनको देखकर उस
 वृत्तान्त का सगियों की सभा में वर्णन करूँगा ॥ २४ ॥

हे देवि ! मैं सुगन्ध चनों से आपसे गुग्गु का प्रक्षालन, आभ्र-
 दलों से दन्तों का धापन, सूक्ष्म सुवर्ण जिभी से जीभ का सम्मार्जन
 पराऊँगा । उत्तम रूप से गुग्गु का मार्जन करा कर आप के समस्त
 दर्पण रत्न देखूँगा ॥ २५ ॥ स्नान कराने के लिये आरभो सूक्ष्मधे-
 रयस्त्र पद्मिना कर भीअङ्ग से हार-अङ्गनादि अनङ्गार का उतारण

नीरैर्थासुरभिभिः स्नपयानि गात्रा-
 दम्भांसि सूक्ष्मवसनैरपसारयानि ।
 केशान् जवाद्गुरुधूम-कुलेन यत्ना-
 दाशोपयानि रभसेन सुगन्धयानि ॥ २७ ॥
 दासो मनोभिरुचितं परिधापयानि
 सौवर्णकङ्कतिकया चिकुरान् विशोष्य ।
 गुम्फानि वेणीममलैः कुसुमैर्विचित्रा
 मम्रेलसञ्चमरिका मनिजातभाताम् ॥ २८ ॥
 चूडामणि शिरसि मौक्तिकपत्रपास्यां
 भाले विचित्रतिलकं च मुदारचय्य ।
 अङ्गुस्त्वाक्षिणी श्रुतियुगं मणिकुण्डलादयं
 नासामलंकृतघटी करवानि देवि ! ॥ २९ ॥
 गणद्वये मकरिके चिबुके विलिख्य
 कस्तुरिकेऽष्टपतं कुचयोश्च चित्रम् ।

करूँगा तथा अरुणवर्ण मनोहर सुगन्धित तैल से श्रीअङ्ग का उद्घ-
 र्शन कर पीछे कुङ्कुम-कूर्पूरचूर्ण से भूषित कराऊँगा ॥ २६ ॥

उसके अनन्तर महान् सुगन्धि जल के द्वारा स्नान कराकर सूक्ष्म
 वस्त्र के द्वारा श्रीअङ्ग से जल का अपसारण करूँगा । यत्न के साथ
 केश कलाप अगुरुधूम से सुरा कर आनन्द के द्वारा सुगन्धित क-
 रूँगा ॥ २७ ॥ आपके मनो अभिरुचित वस्त्र को पहिनाय कर पीछे
 मुचूर्ण रचित कंधा के द्वारा केशकलाप का संस्कार कर चमरी स्थित
 मणि के द्वारा शोभित वेणी को सुगन्धि पुष्पों से भूषित करूँगा ॥ २८ ॥
 हे श्रीराधे ! आपके ललाट में आनन्द के साथ विचित्र तिलक की
 रचना कर तथा मस्तक में मुक्ता निम्मित ललाटिका और चूडामणि
 को धारण कराऊँगा । हे देवि ! आपके नेत्रों को काजल से रंजित
 तथा कर्णों में मणि कुण्डल का अर्पण कर पश्चात् मुच्यफल से नासा

बाह्योस्तबाह्यदयुगं मनिबन्धयुग्मे
 चूडामसारकलिताः कलयानि यत्नात् ॥ ३० ॥
 पान्यंगुलीः कनकरत्नमयोर्मिकाभि
 रभ्यर्चयानि हृदयं पदकोत्तमेन ।
 मुक्तेत कञ्चुलिकयोरसिजौ विचित्र-
 माल्येन हारनिचयेन च कण्ठदेशम् ॥ ३१ ॥
 काञ्चया नितम्बमथ हंसकनूपुराभ्यां
 पादाम्बुजे दलतति रणदंगुरीयैः ।
 लाक्षारसैररुणमप्यनुरञ्जयानि
 हे देवि ! तत्तलयुगं कृतपुण्यपुञ्जा ॥ ३२ ॥
 अङ्गानि साहजिकसौरभयन्त्यथापि
 देव्यर्चयानि नयमुक्कुमचर्चयैव ।
 लीलाम्बुजं करतले तत्र धारयानि
 त्वां दर्शयानि मणिदर्पणमर्पयित्वा ॥ ३३ ॥

को अलङ्कृत करूँगा ॥ २६ ॥ हे श्रीराधे आपके गण्डयुगल में मकरिका, चिबुक में कस्तूरीविन्दु तथा कुचयुग्म में विचित्र चित्र का अङ्कन करूँगा । और भी बाहु दोनों में अङ्गद तथा मणिवन्ध में इन्द्रनीलमणि के द्वारा चूड़ा का परिधान कराऊँगा ॥ ३० ॥ आपकी हस्तांगुलि समूह मणिमय मुद्रिका के द्वारा, वक्षोदेश उत्तम पद के द्वारा स्तन युगल मुक्ता ग्रथित बंचुकी के द्वारा, कण्ठदेश विचित्र मालाहारों से विभूषित करूँगा ॥ ३१ ॥ नितम्बदेश कांची के द्वारा, पादपद्म दोनों पादकटक तथा नूपुर के द्वारा, अंगुलिममूह शब्दायमान विद्विया के द्वारा मजाकर हे देवि ! कृत पुण्यपुंजा मैं पादपद्म का तलदेश अरुणवर्ण लाक्षारम के द्वारा अनुरञ्जित कराऊँगा ॥ ३२ ॥ हे देवि ! आपके श्रीअंग स्वाभाविक सुगन्धमय हैं । तो भी नवीन सुकुम से मैं उमको चर्चिचत करूँगा । आपके हस्तारविन्द में लीला-

सौन्दर्यमद्भुतमवेक्ष्य निजं स्वकान्त-
नेत्रालिलोभनमवेत्य विलोलगात्रीम् ।
प्राणव्युदेन विधुवर्त्तिकदीपकैश्च
निर्ममञ्जयानि नयनान्घुनिमज्जिताङ्गी ॥ ३४ ॥
गोष्ठेश्वरी प्रहितया सह कुन्दवल्ग्या
प्राभातिकप्रियतमाशनसायनाय ।
यान्तीं समं प्रियसखीभिरनुप्रयानि
ताम्बूलसम्पुटमणिज्यजनादि पाणिः ॥ ३५ ॥
गोष्ठेश्वरी-सदनमेत्य पदे प्रणम्य
तस्यास्तदाप्तभक्तिकां त्रपयाद्युताङ्गीम् ।
प्राता तथा शिरसि तन्मयनाम्बुसिक्तां
त्वां वीक्ष्य तामहमपि प्रणमामि भक्त्या ॥ ३६ ॥

कमल धारण करा कर मणिदर्पण का अर्पण कराऊँगा ॥ ३३ ॥ निज
अद्भुत सौन्दर्य दर्शन कर यह प्राणवल्लभ के नयन भ्रमरो का लोभ-
नीय है ऐसा बोध कर आप चंचलगात्री होंगी तब उस समय मैं अ-
श्रुवारि से सिंचित होकर अर्बुद प्राण के द्वारा कपूर-वत्ती लेकर
निर्ममञ्जन (आरती) करूँगा ॥ ३४ ॥ हे देवि ! आप यशोदा प्रेरित
कुन्दलता के साथ श्रीहरि का प्रातःकालीन भोजन सायनार्थ प्रियस-
गियों के सह जय नन्दालय गमन करेंगे तब उस समय मैं हाथों में ता-
म्बूलपात्र और मणि बीजना लेकर आपका अनुगमन करूँगा ॥ ३५ ॥
गोष्ठेश्वरी के गृह में उपस्थित होकर आप उनके चरण से भूषित
दण्डवत् कर कुशल लाभ करेंगी । यशोदा नयन जल से आपको
सिंचित कर मस्तक का आघ्राण करेंगी । उस समय आप लज्जिता
हो नीचे वदन कर खड़ी रहेगी । मैं इस प्रकार आपको दर्शन करता
हुआ गोष्ठेश्वरी को भक्ति के साथ प्रणम करूँगा ॥ ३६ ॥ हे सुन्दरि

मूर्त्तं तयोऽसि वृषभानुकुलस्य भाग्यं
 गेहस्य मेऽसि तनयस्य च मे वराङ्गि ! ।
 नैरुज्यदास्यमृतपाणिरभूर्वरेण
 दुर्व्वाससो यदिति तद्वचसाहसानि ॥ ३७ ॥
 स्नातानुलिप्तवपुषो दयितस्य तस्य
 तात्कालिके मधुरिमन्यति लोलिताक्षीम् ।
 स्वामिन्यवेत्य भवतीं वचन प्रदेशे
 तत्रैव केन च भिषेण समानयानि ॥ ३८ ॥
 प्रक्षालयानि चरणौ भवदङ्गतः स्त्रब्
 माल्यादिपाकरचनानुपयोगि यत्तत् ।
 उत्तारयानि तदिदं तु तवाऽस्तिवति त्व-
 द्वाचोक्षसानि विकसन्मधुमाधयीव ॥ ३९ ॥

राधिके ! तुम वृषभानु वंश की मूर्त्तिमती तपस्या स्वरूपा है। मेरा
 गृह तथा तनय का मूर्त्तिमान सौभाग्य है। क्योंकि दुर्व्वासा जी के
 घर से तुम अमृत-हस्ता हो। मेरे पुत्र को निरुज्यकारिणी हो। इस
 प्रकार आपके प्रति यशोदा जी का वचन सुनकर मैं हास्य करूँगा ॥
 ३७ ॥ हे स्वामिनि ! स्नानानुलेपनादि के अनन्तर प्रियतम के त-
 ताकालिक माधुर्य आस्वादन से आपको चंचल नयना जान कर यहाँ
 कोई कृष्णदर्शनोपयोगी स्थान में किसी छल से निमिषमात्र के लिये
 आपको लाऊँगा ॥ ३८ ॥ उसके अनन्तर आपके चरण युगल का
 प्रक्षालन कर पाक समय उचित मणि-पुष्पों की मालाओं को श्रीअङ्ग
 से उत्तोलन करूँगा। उस समय पूर्वकृत मेरी चतुराई के वश आप
 श्रीकृष्ण माधुर्य दर्शनानन्द से विमोर होकर “हे दासि ! ये सब आ-
 भरण तुम्हारे हैं तुम इनका प्रहण करो” इस प्रकार कहेंगी। मैं उसे
 सुनकर घसन्तकाल में विकसित माधयीलता की भाँति वल्लसित हो-
 ऊँगा ॥ ३९ ॥ पाक के अनन्तर सुमिष्ट पायस, अन्न, दाल, साग

पस्त्यास्थितां मधुरपायसशावसूप-
 भाजिप्रभृत्यमृतनिन्दि चतुर्विधानम् ।
 त्वां लोक्यानि नननेति मुहुर्बदन्तीं
 गोष्ठेशयापि परिवेशयितुं निदिष्टाम् ॥ ४० ॥
 तृप्युत्थितां प्रियतमाङ्गरुचिधयन्त्या
 वातायनापितदृशः सहसोल्लसन्त्याः ।
 आनन्दजगुतितरङ्गभरे मनोज-
 मञ्जुरुक्ते तव मनो मम मञ्जयानि ॥ ४१ ॥
 राधे ! तवैव गृहमेतदहं च जाते !
 सूनोः शुभे ! किमपरां भवतीमवैमि ।
 तद्भुत्वा सम्मुरामिति व्रजपागिरा त्वत्
 वक्त्रेस्मितं स्वहृदयं रसयानि नित्यम् ॥ ४२ ॥
 यान्तं वनाय सखिभिः सममात्मरान्तं
 पित्रादिभिः सरुदितैरनुगम्यमानम् ।

प्रभृति अमृतनिन्दी चार प्रकार के अन्न के परिवेशनार्थ यशोदा के द्वारा आदिष्टा होकर आप बार बार नहीं नहीं ऐसा बहेगी । मैं इस प्रकार आपका दर्शन करूँगा ॥ ४० ॥ हे भीराधिके ! आप भोजन से तृप्त प्रियतम की अङ्गकान्ति का दर्शन करते हुए ललसिता होकर गवाक्ष में नेत्रार्पण करेंगे । मैं आपके कन्दर्पकृत आनन्द जनित कान्ति तरङ्ग में मन को निमग्न करूँगा ॥ ४१ ॥ “हे राधे ! हे पुत्रि ! हे मङ्गलरूपे ! यह घर तुम्हारा है । मैं अपने पुत्र से तुमको भिन्न नहीं जानती हूँ” । इस प्रकार व्रजराणी का वचन सुनकर आपके श्रीमुख में मन्दहास्य उपज्र होगा । मैं चित्त में उसका आस्वादन करूँगा ॥ ४२ ॥ उसके अनन्तर आपके प्राणवल्लभ सखाओं के साथ पूर्वाह्न समय में वन के लिये गमन करेंगे । पित्रादि गुरुजन रोदन करते हुए उनका अनुगमन करेंगे । उसे देखकर आप अपने घर पर आय

वीक्ष्याप्तगौरवगेहां दिननाथपूजा-
 व्याजेन लब्धवगहनां भवतीं भजानि ॥ ४३ ॥
 कान्तं विलोक्य कुसुमावचये प्रवृत्ता-
 मादाय पत्रपूटीकामनुयान्यहं त्वाम् ।
 का तत्करीयमिति तद्वचसा न कापी
 त्युक्ता सहापितदृशं भवतीं स्मराणि ॥ ४४ ॥
 पुष्पाणि दर्शय कियन्ति हृतानि चोरी !
 त्युक्त्यैव पुष्पपुटिकामपि गोपयानि ।
 तद्वीक्ष्य हन्त मम कक्षतले क्षिपन्तं
 पानि वलात्तमभिमृश्य भवानि दूना ॥ ४५ ॥
 रक्षाय देवि ! कृपया निजदासिकां मा-
 मित्युच्चकतरगिरा शरणं व्रजानि ।
 किं धूर्त ! दुःखयसि मग्ननमित्यमूप्य
 बाहुं करेण तुदतीं भवतीं भवानि ॥ ४६ ॥

कर सूर्यपूजा छल से वन गमन करेंगी । मैं भी आपका भजन कर
 दूँगा अर्थात् आपके साथ वन में गमन करूँगा ॥ ४३ ॥ वनमें जाकर
 आप कान्त का अवलोकन कर पुष्पचयन में प्रवृत्ता होगी । मैं भी
 उस समय पत्र निर्मित पुष्पाधार (फूलदात्री) लेकर आपका अनु-
 गमन करूँगा । श्रीकृष्ण जब मुझसे पूछेंगे हे सखि ! “यह चोरी
 (पुष्पचोरी) क्यों है” तब मैं “कोई नहीं है” कह कर कृष्णार्पितनयना
 आपका स्मरण कराऊँगा ॥ ४४ ॥ हे चोरि ! किनने पुष्पों की चोरी
 की मुझे दिखाओ इस प्रकार श्रीकृष्ण के बोलने पर मैं पुष्पाधार का
 गोपन करूँगा । उसे देखकर श्रीकृष्ण बल प्रकाश के माय मेरे कक्ष
 में दम्तार्पण करेंगे । मैं उसमें व्यथित हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥ हे देवि !
 मैं तुम्हारी दासी हूँ । आज मेरी रक्षा कीजिये” । इस प्रकार कतर
 घास से आपके आश्रय की प्रार्थना करूँगा । आप उस समय “हे

त्यक्तवैव मा भद्रदुरवचचं विरएड्य
 प्राप्ता भजं तत्र गलात् स्वगले निधाय ।
 पुष्पानि चौरि ! मम किं तत्र कण्ठहेतो
 स्तत्कण्ठमेव मुभृश परिपीडयानि ॥ ४७ ॥
 राजास्ति कन्दरतले चल तत्र धूर्त्त !
 तस्याज्ञयैव सहसा च विवस्त्रयिष्ये ।
 ता वीक्ष्य हृष्यति सचेन्निजद्रिष्यमुक्ता-
 माला प्रदास्यति ललाटतटे मनीषे ॥ ४८ ॥
 दोषो न ते व्रजपतेस्तनयोऽसि तस्य
 दुष्टस्य यन्नरपतेः खलु सेवनेऽभू ।
 तद्व्युद्धिरीदृगभवन्मम चात्र साध्या
 भाले किमेतदभवल्लिखित विधात्रा ॥ ४९ ॥

धूर्त्त ! क्यों मेरे जन को दुःख देते हो ? इस प्रकार कह कर निज
 हस्त से श्रीकृष्ण हस्त का पीडन करेगे । मैं भी आपका आश्रय लूँगा
 ॥४६॥ श्रीकृष्ण मेरा परित्याग कर आपके वक्ष स्थल निराजित क-
 ञ्चुक का खण्डन कर आपकी कण्ठस्थ पुष्पमाला को अपने गले में
 धारण कर कहेंगे “हे चौरि ! हमारे ये पुष्पसमूह क्या तुम्हारी माला
 के लिये हैं । अतः उसका परिवर्त्तन मे हम तुम्हारा कण्ठदेश का पीडन
 करेंगे ॥ ४७ ॥ हे धूर्त्त ! इस पर्वत कन्दरा में कन्दर्पराजा विराजमान
 हैं । वहाँ चलो । उनकी आज्ञा से मैं तुमको विवस्त्रा करूँगा । पु-
 ष्पचौरी तुमको देखकर वह प्रसन्न हो मेरे ललाट में अपनी दिव्य
 मुक्तामाला का प्रदान करेगा ॥ ४८ ॥ हे राधे ! आप उस समय
 श्रीकृष्ण को प्रत्युत्तर इस प्रकार करेंगी । हे कृष्ण ! तुम व्रजराज के
 पुत्र होकर उस दुष्ट राजा के सेवक बन रहे हो । इस प्रकार जो तु-
 म्हारी बुद्धि हों गई है उसमें तुम्हारी दोष नहीं है । परन्तु उस दुष्ट
 सग का दोष है । हाय साध्वी मेरे ललाट में क्या विधाता ने ऐसा

इत्यादि वाङ्मयसुखामहहे श्रुतिभ्यां
 स्वाभ्यां ध्यान्युदरपूरमथेक्षणभ्याम् ।
 रूपामृतं तत्र सकान्ततया विलास-
 सीधुञ्च देवि ! वितरान्यऽथमादयानि ॥ ५० ॥
 प्रेष्ठ-सरस्यभिनवां कुसुमैर्विचित्रां
 हिन्दोलिकां प्रियतमेन सहाधिरुद्धाम् ।
 त्वां दोलयान्यऽथकिराणि परागराजि-
 गांयानि चारुमहतीमपि वादयानि ॥ ५१ ॥
 घृन्दायने सुरमहीरुहयोगपीठ-
 सिंहासने स्वरमणेन विराजमानाम् ।
 पाशार्घधूपविधुदीपचतुर्विधान्त-
 स्रग्भूषणादिभिरहं परिपूजयानि ॥ ५२ ॥
 गौषर्द्धने मधुवनेषु मधुत्सवेन
 विद्रावितात्रपसखी शतगाहिनीकाम् ।
 पिष्टातयुद्धमनुक्रान्तजयाय यान्तीं
 त्वां प्रादयानि नच-जातुपशूषिकालीः ॥ ५३ ॥

ही लिला है ॥ ४६ ॥ हे देवि ! मैं आनन्द के साथ इस प्रकार वचन
 सुना से निज कर्णयुगल को पान करा कर पश्चात् नयन दोनों के द्वारा
 कान्त के साथ आपकी विलाससुखा का पान कर आनन्द उन्मत्त हो
 जाऊँगा ॥ ५० ॥ हे देवि ! आप प्रिय सरोवर (राधाकुण्ड) में
 पुष्पनिर्मित अभिनव विचित्र हिन्दोलिका (भूला) में प्रियतम के
 साथ आरोहण करेंगी । मैं आपको मुलाऊँगा, परागों का वर्षण करूँगा,
 गान करूँगा, वीणा बजाऊँगा ॥ ५१ ॥ हे देवि ! घृन्दायन में
 कल्पवृक्ष के मूल में योगपीठस्थ सिंहासन पर प्राणवल्लभ के साथ
 आप विराजमान होने पर मैं पाश, अर्घ्य, कर्पूर, दीप, चतुर्विध
 अन्न, माजा, भूषणादि के द्वारा सर्व प्रकार आपकी सेवा करूँगा ॥ ५२ ॥

अग्रे स्थितोऽस्मि तव निश्चल एव वक्षु
 उद्घाटय कन्दुकचयं क्षिपचेद्वलिष्ठा ।
 उद्घाटय कञ्चुकमुरः किल दर्शयन्ती
 त्वञ्चापि तिष्ठ यदि ते हृदि वीरतास्ति ॥ ५४ ॥
 यत्कथ्यसे तदयमेव तव स्वभावो
 यत्पूर्वजन्मनि भवानजितः किलासीत् ।
 मिथ्येव तत् यदिह भोः कतिशो जितोभू
 न्मतकिङ्करीभिरपि तद्विगतप्रपोऽसि ॥ ५५ ॥
 इत्येवमुत्पुलकिनी कलयानि वाचः
 सिञ्जानकङ्कणफनत्कृतदुन्दुभीकम् ।
 युद्धं मुखांमुखि रदारदि चारुगाहु
 षाहृष्यमन्द नखरानखरिस्तवानि ॥ ५६ ॥

हे राधे ! आप श्रीगोवर्द्धन में वसन्तकान्त-वन प्रदेश में हो-
 लिना उत्सव के द्वारा लज्जारहित होकर सजी सेना के साथ गुलाल
 युद्ध में कान्त की जय करने के लिये गमन करेंगी उस समय मैं
 आपको नवीन कुंकुम कुप्पाओं का ग्रहण कराऊँगा ॥ ५३ ॥ उस
 समय श्रीकृष्ण कहेंगे—मैं वक्षु उद्घाटन कर निश्चलभाव से तुम्हारे
 आगे खड़ा हूँ यदि तुम बलवती हो तब मेरा वक्षुः मैं कन्दुकों का
 क्षण करो । यदि तुम्हारे हृदय में वीरत्व है तब कौचोली (अंगिया)
 उद्घाटन पूर्वक वक्षुः दिख कर मेरे आगे अवस्थित करो ॥ ५४ ॥

श्रीकृष्ण के इस प्रकार वचन सुनकर आप कहने लगेंगी कि हे
 श्रीकृष्ण ! तुम जो आत्मप्रशंसा करते हो यह तुम्हारा स्वभाव है ।
 हम सबने पौरुषमासी जी के मुख से जो सुना है कि—तुम पूर्वजन्म
 में अजित थे यह मिथ्या है । क्योंकि हमारी वासियों से तुम कितनी
 बार पराजित हो गये हो अतएव तुम निर्लज्ज हो ॥ ५५ ॥ मैं तुम
 दोनों के इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त पुलकायमान हो जाऊँगा

कस्याञ्चिदद्रि नृपदिव्यदुपत्यकायां ,
 सप्रेयसि त्ययि सखीशतवेष्टितायाम् ।
 विश्रान्तिर्भाजि वनदेवतयोपनिता-
 नीष्टानि सीधु चपकानि पुयो दधानि ॥ ५७ ॥
 हा किं-किं-किं ध धरणी धु-धु घूर्णनीयं
 धा-धा-ध धावति भयात् वि-वि वृत्तपुञ्जः ।
 भी-भी-भि भीरुरहमत्र कथं जि-जीवा-
 न्येवं लगिष्यसि यदा दयितस्य कण्ठे ॥ ५८ ॥
 त्वत्त्वामिनी प्रलपतीयमिमां गदेन
 हीनां करोमि कलयात्र निरेहिनेतः ।
 इत्युक्तिस्तीधुरसतपितं हृत्तदैव
 निष्क्रम्य जालवित्तौ विदधानि नेत्रे ॥ ५९ ॥

और कङ्कण की झङ्कार के साथ दुन्दुभिवाद्य से युक्त मुखामुखि-
 दन्तावन्ति-हाथाहथि तथा नयानरि युद्ध की स्तुति करूँगा ॥ ५६ ॥
 आप इस गिरिराज की किसी उपत्यका में प्राणवल्लभ के साथ शत-
 शत सखियों से परिवेष्टिता होकर विश्राम करेंगी । मैं उस समय व-
 नदेवी के द्वारा आनीत मधुपात्र समूह को आपके आगे धरूँगा ॥ ५७ ॥
 उस समय मधुपान से आपका वचन स्पलित हो जाएगा । आप
 कहने लगेगी हाय यह ध-धरणी क्या क्या क्या धु-धु घूर्णयमान हो
 रही है । भय से वि-वि वृत्तसमूह धा-धा धावमान हो रहा है । भि-
 भि-भि भीरु मैं किस प्रकार जि-जीवन धारण करूँगी । इस प्रकार
 कहती हुई आप प्रियतम के कण्ठलग्ना हो जायेंगी ॥ ५८ ॥ उस स-
 मय श्रीरूपण हमें कहेंगे-तुम्हारी स्वामिनि राधा प्रलाप कर रही हैं ।
 मैं उनको आरोम्य कर रहा हूँ । तुम यहाँ से मत चली जाओ । उन
 का इस प्रकार क्यामृत रस से मृग हृदय हो यहाँ से निर्गत होकर
 जलाजाल में नयन अर्पण करूँगा अर्थात् आप दोनों का वियाह उ-

घोणाक्षिकर्णवदने जलसेकतया
 कृष्णस्तया जित इतः सहसा निमज्ज्य ।
 माहो भवन् स खलु यत्कुरुते स्म तत्तत्
 वेदान्यहं तव मुखाम्बुजमेव वीक्ष्य ॥ ६० ॥
 अभ्यञ्जयानि ससखीदयितां सहालि
 सत्वां स्नापयानि वसनाभरणैर्विचित्रम् ।
 शृङ्गारयानि मणिमन्दिरपुष्पतल्पे
 संभोजयानि करकाद्य शाययानि ॥ ६१ ॥
 घापीर कुञ्ज इह तिष्ठति कृष्ण ! देवी
 निन्दुत्य मृग्यसि कथं तदितः परत्र ।
 सत्यामिमां मम गिरं तमविश्वसन्तं
 यान्तं मति प्रदर्श्य भवती हर्षयानि ॥ ६२ ॥

तब देखूँगा ॥ ५६ ॥ जलमिहार के समय नासिक-कर्ण-नेत्र और
 मुख में जलसींचन के द्वारा आपके द्वारा पराजित श्रीकृष्ण इठान्
 वहाँ से जल में निगमन हो जाएँगे । पश्चात् माह वन कर जो करेंगे
 उसे मैं आपका मुखपद्म देखकर जान लूँगा ॥ ६० ॥ कान्त और स-
 खियों के साथ आपको मैं अभ्यञ्जन तथा स्नान करा कर विचित्र व-
 सन-आभरण के द्वारा विभूषित कराऊँगा । पश्चात् दाडिम (अनारं)
 फलादि भोजन करा कर मणिमन्दिर में पुष्पशय्या पर शयन करा-
 ऊँगा ॥ ६१ ॥ हे राधे ! आप शयन करते हुए वहाँ उठकर कौतुक
 घरा वानीरकुंज (वेत्र निकुंज) में छिप जाऊँगी । श्रीकृष्ण आपको
 ढूँढने लगेंगे । मैं परिहास कर उनसे कहूँगा । हे श्रीकृष्ण ! देवी
 राधिका इस वानीर कुंज में छुपे हैं । अनएव अन्यत्र क्यों ढूँढ रहे
 हैं । परन्तु श्रीकृष्ण मेरे इस सत्य वचन में अविश्वास कर अन्यत्र
 गमन करेंगे । मैं आपको उसे दिखा कर प्रसन्न कहूँगा ॥ ६२ ॥ तद-

स्वामिन्यसूत्र हरिरस्ति कदम्बकुञ्जे
 निन्दुत्य भृग्यसि कथं तदितः परत्र ।
 सत्यामिमां मम गिरं खलु विश्वसत्याः
 पानौ जयं तव नयानि तमाप्तवत्याः ॥ ६३ ॥
 राधे ! जिता च जयिनी च पूर्णं न दातु
 मादातुमप्यहह चुम्बनमीशिपे त्वम् ।
 नास्तेपचुम्बमधुराधरपानतोऽन्यं
 द्युते ग्लहं रसविदः प्रवरं वदन्ति ॥ ६४ ॥
 गोवर्द्धनेऽत्र मम कापि सखी पुलिन्द-
 कन्यास्ति भृङ्गयत्तितरां निपुणेदृशेऽर्थे ।
 मदप्राणदेय-पणवस्तुनि मन्नियुक्ता
 सा ते गृहीष्यति च दास्यति चोपगृह्णम् ॥ ६५ ॥
 उक्त्वेत्यमात्मदयितं प्रतिवक्षसे मां
 थाहीत्यथोत्पुलकिनी द्रुतपादपाता ।

नन्तर आपसे कहूँगा हे स्वामिनि ! श्रीहरि कदम्बकुंज में छिपे हुए
 हैं अतः अन्यस्थान में क्यों अन्वेषण करती हो । मेरे इस वचन का
 विश्वास कर श्रीकृष्ण को प्राप्त होने पर आपके हस्त में जय समर्पण
 करूँगा ॥ ६३ ॥ उसके अनन्तर पाशक्रीड़ा में श्रीकृष्ण कहेंगे-हे
 राधे ! तुम पराजित अथवा जय युक्ता हो चुम्बनपण का दान किम्बा
 ग्रहण नहीं करती हो । परन्तु रसिकगण पाशक क्रीड़ा में आलिङ्गन-
 चुम्बन और अधर पान के मित्र अन्य किसी पण को भ्रष्ट नहीं
 मानते हैं ॥ ६४ ॥ श्रीकृष्ण को आप उसके उत्तर में कहेंगी—इस
 गोवर्द्धन में भृङ्गी नामक मेरी एक सखी पुलिन्दकन्या है । वह मेरे
 पक्ष में नियुक्ता होकर मेरा प्राण किम्बा देय आलिङ्गनादिपण (शर्त)
 ग्रहण-प्रदान करेगी ॥ ६५ ॥ आप निज वान्त को इस प्रकार कह
 कर मुझे उसको लाने के लिये आज्ञा करेंगी । मैं द्रुतगति से जाकर

तामानयान्युपमुकुन्दमयासयानि
 तं लज्जयानि सुमुग्धीरतिहासयानि ॥ ६६ ॥
 स्वीया क्लृप्तं व्रजपूरे मुरलीं तवैका
 प्राभून्नतामपि भवानवित्तं सभाग्याम् ।
 सा लम्पटापि भवदावरसीधुसिक्ताऽ-
 प्यन्यं पुमांसमिह मृग्यति चित्रमेतत् ॥ ६७ ॥
 वंशीं सतीं गुणवतीं सुभगां द्विपत्योऽ-
 साध्यो भवत्य इह तत् समतामलब्धाः ।
 तां क्वापि घन्धमनयंस्तदहं भुजाभ्यां
 बद्ध्वैव वः शिखरि गह्वर गाः क्तोमि ॥ ६८ ॥
 इत्यागतं हरिमवेक्ष्य रहस्तदीय-
 कक्षादहं मुरलिकां सहसा गृहीत्वा ।

उसको लाऊँगा तथा श्रीकृष्ण के समीप बैठऊँगा । उससे वह ल-
 जिता होगी और सखिगण हास्य करेंगी ॥ ६६ ॥ भृङ्गी दर्शन के
 पश्चात् श्रीकृष्ण चुम्बनादि पण को त्याग कर मुरली का पण करेगे ।
 जब वे द्वार कर मुरली प्रदान करेंगे अथवा सखियों बलपूर्वक मुरली
 ले लेंगी उस समय उनका मुरली अप्राप्त जनित विषाद उपस्थित होगा ।
 उसे देखकर सखीगण परिहास करते हुए कहेंगे हाथ बृन्दावन में एक
 मात्र मुरली आपका धन था आप उस निज भाग्या को वश में नहीं
 कर सके । और भी वह लम्पटा मुरली आपके अधरामृत से सिक्ता
 होकर भी पर पुरुष का अन्वेष्टण करती है । यह अति आश्चर्य की
 बात है ॥ ६७ ॥ सखियों का इस प्रकार वचन सुन कर श्रीकृष्ण
 कहेंगे—सती, गुणवती, सुभगा वंशी के लिये द्रोप वश उसको तुम
 सयने आबद्ध कर रखा है । क्योंकि उसकी समता को तुम सब लाभ
 नहीं कर सकते हो । अतः मैं भुजयुगल से तुम सबको बाँध कर
 गिरि-गह्वर में ले जाऊँगा ॥ ६८ ॥ श्रीकृष्ण इस प्रकार कहकर जब

तां गोपयानि तदलक्षितमात्तचित्र-
 पुष्पेषु सङ्गरसां कलयानि च त्वाम् ॥ ६६ ॥
 ब्रह्मन्निमामनुगृहाण भवन्तमेव
 भास्वन्तमर्चयितुमिच्छति मे स्तुपेयम् ।
 इत्याप्यया प्रणमितां धृत-विप्रवेशे
 कृष्णेऽर्पितां च भवती स्मितभाग् भजानि ॥ ७० ॥
 यान्ती गृहं स्वगुरुनिघ्नतयाति लौल्यात्
 कान्तावलोकनकृते म्रियमानुशन्तीम् ।
 दूरेऽनुयानि यदतोऽनुविर्वात्ततांस्य
 मेहीति वक्ष्यसि तदास्य-रुचो धयन्ती ॥ ७१ ॥
 गेहागतां विरहिनीं नवपुष्पतल्पे
 त्वां शाययानि परंतः किलमूर्मु राभाम् ।

आलिङ्गन के लिये उद्यत होंगे तब मैं उनके अलक्ष्य निर्जन में आप
 के कक्ष से दृठात् मुरली लेकर गोपन (चोरी) करूँगा । आप काम-
 क्रीड़ा में उल्लास लाभ करेंगी । मैं आपका दर्शन करूँगा ॥ ६६ ॥
 सूर्य की पूजा के उपलक्ष्य में आगत विप्रवेशी श्रीकृष्ण को देखकर
 जटिला कहेगी-हे ब्राह्मण ! घघू पर अनुग्रह करो, मेरी घघू सूर्य
 की भाँति तेजस्वी तुमको पुरोहित करने की ईच्छा का है । वह सूर्य
 की पूजा करेगी । इस प्रकार कह कर जटिला आपको विप्रवेशीकृष्ण
 के पास लेकर प्रणाम करायेगी तथा समर्पण करेगी । उससे आप
 हास्ययुक्त होंगी । मैं आपका भजन करूँगा ॥ ७० ॥ आप गुरु आ-
 देश प्राप्त होकर गृह गमन के समय श्री कृष्ण के दर्शन तृष्णा में
 चिन्तायुक्त हो जाएंगी । मैं आपके पीछे पीछे गमन करूँगा । आप
 मुग्न फिरा कर श्रीहरि की मुखवान्ति पान करती हुई मुझको कहेगी
 सखि किन्तु ! चली आओ ॥ ७१ ॥ विरह कातरा आप जय अ-
 पराह में गृह में आगमन करेंगी तब मैं नवीन पुष्पशय्या में आप

तस्मात् परत्र शयनं विसपुञ्जकल्प-
मध्याशयानि विधुचन्दनपङ्कलिताम् ॥ ७२ ॥
आकर्ण्यचन्दन-कलाकथितं ब्रजेशा-
सन्देशमुत्सुकमतेः सहसा सहाय्याः ।
सायन्तनाशनकृते दयितस्य नव्य-
कर्पूरकेलि-वटकादिविनिर्मितौ ते ॥ ७३ ॥
लिम्पानि शुद्धिमथ तत्र कटाहमच्छ-
मारोहयानि दहनं रचयानि दीप्तम् ।
निराज्य खण्डकदलीमरिचेन्दुसीरि
गोधूमचूर्णमुखवस्तु ममानयानि ॥ ७४ ॥
अत्यद्भुतं मलयजद्रवसेकतया
घृद्धिं जगाम यदिदं विरहानलोजः ।
कर्पूरकेलीवटकावलि साधकाऽग्नि-
ज्वालेन स्वस्तिमनयत्तदिति ब्रुवानि ॥ ७५ ॥

को सुख शयन कराऊँगा । आप कुछ कल शयन करेंगी । परचात् प्रियविरह से जब यह शय्या तुपारामि तुल्य हो चठेगी तब मैं मृणाल रचित कर्पूर चन्दन लिप्त अन्य शय्या में आपको शयन कराऊँगा । ॥ ७२ ॥ हे सखि ! आप चन्दनकला के द्वारा कथित ब्रजेश्वरी का आदेश मुन कर प्रियतम के सार्यकालीन नव कर्पूरकेलि आदिक भोजन निर्माण के लिये सखियों के साथ उत्सुकता हो जायेंगी । मैं उस समय आपका (चूल्हे) का विलेपन करूँगा । उसमें पवित्र कड़ाही धर दूँगा तथा अग्नि प्रज्वलित करूँगा । और भी जल, घृत, शर्करा, केला, मिर्च, कपूर, नारियल, गोधूमचूर्णादिक सामग्री का आनयन करूँगा ॥ ७३-७४ ॥ मैं उस समय परिहास करके कहूँगा- चन्दनादि द्रवसमूह के सिंचन से जो विरहानल प्रबल हो - उठा या यह अब लड्डूआदि साधनकारी अग्निज्वाला से किस प्रकार शान्त हो

धूलिर्गवां दिशामरुद्ध हरेः सहाम्वा
 रावत्युदन्तमतुलं मधु पाययानि ।
 तत्पानसन्मदनिरस्त-समस्तकृत्यां
 समुत्थिता सहगणामभिसारयानि ॥ ७६ ॥
 तत्कृष्णवर्त्म निकटस्थलमानयानि
 निर्वापयानि विरहानलमुन्नतं ते ।
 आयात एव इति बलिनिगूढगात्री-
 माकृष्य मह्यमहेश्वरि ! कापयानि ॥ ७७ ॥
 श्रीकृष्णदिङ्मधुलिहौ भवदास्यपद्म
 माघ्रापयान्यति कृपं तव रुक् चकोरीम् ।
 तद्वत्कचन्द्र-विकसनस्मितधारयैव
 संजीवयानि मधुरिम्नि निमज्जयानि ॥ ७८ ॥
 वैवश्यमस्य तव चाद्भुतमीक्षयानि
 त्वमानयानि सदनं ललिता निदेशात् ।

गया है ॥ ७५ ॥ हे स्वामिनि ! हम्म्यारव करते हुए श्रीकृष्ण की गोपों
 आ रही हैं । उनकी धूल दश दिश में छा गई है । आप देखिये ।
 इस प्रकार वृत्तान्तरूप मधुपान करा कर उस आनन्द से समस्त कार्य
 से आपको विरत करा कर सखियों के साथ आपका अभिसार करा-
 डूँगा ॥ ७६ ॥ जिस मार्ग में श्रीकृष्ण का आगमन होगा उस मार्ग
 के किसी स्थान में आपको लाकर विरहानल का निर्वापन (शान्ति)
 करूँगा । हे ईश्वरि ! जन श्रीकृष्ण आयेगे तो मैं आप को दिखाने
 के लिये आवर्णित करूँगा । आप मेरे प्रति कोपयुक्ता होंगी ॥ ७७ ॥
 हे देवि ! श्रीकृष्ण के नयन भ्रमरों के द्वारा आपका मुखपद्म का आ-
 स्वादन कराडूँगा । अति कृष्णयुक्त आनकी नेत्र चकोरी को श्रीकृष्ण
 के मृगचन्द्र की दास्यरूप मुधा के द्वारा भली भाँति जीवित कराडूँगा
 तथा श्रीकृष्ण माधुर्य में मज्जिन कराडूँगा ॥ ७८ ॥

कर्पूरकेल्यमृतकेलिततीः प्रदास्तं
 गोष्ठेश्वरीमनुसरानि समं सखीभिः ॥ ७६ ॥
 गत्वा प्रणम्य तव संकययानि देवि !
 पृष्ट्वा तथाय घटकावलिमीक्षयित्वा ।
 तां हर्षयानि भवद्दमुत सद्गुणाली
 स्तत्कीर्तिता स्ववयसे शृण्वानि हृष्टा ॥ ८० ॥
 वीक्ष्यागतं तनयमुन्नतसम्भ्रमोर्भि-
 मग्नां स्तनाक्षि-पयसामभिपिच्य पूरैः ।
 अभ्यञ्जनादिकृतये निजदासिकस्ता
 साश्चापि तां निदिशतीं मनसा स्तवानि ॥ ८१ ॥
 स्नानानुलेपवसनाभरणैर्विविच-
 शोभस्य मित्रसहितस्य तथा जनन्या ।
 स्नेहेन साधु बहुभोजितपायितस्य
 तस्यावशेषितमलक्षितमाददानि ॥ ८२ ॥

श्रीकृष्ण तथा आपकी अद्भुत विवशता का दर्शन करूँगा । मैं ललिता
 के आदेश से आपको गृहमें लाऊँगा और कर्पूरकेलि तथा अमृतकेलि
 समूह को दिखाने के लिये सखियों के साथ गोष्ठेश्वरी के निकट ग-
 मन करूँगा ॥ ७६ ॥ सायंकाल में गोष्ठेश्वरी के सदन में गमन
 कर उनके द्वारा आलिङ्गिता हो उनसे आपका मङ्गल कहूँगा । उसके
 परचात् लङ्ङ समूह का दर्शन कराकर उन्हें ध्यानन्दित कराऊँगा ।
 यशोदा के द्वारा कीर्तित तुम्हारे अद्भुत गुणवली का सखीसमाज में
 कीर्तन करूँगा ॥ ८० ॥ गोष्ठ से समागत पुत्र को देखकर अति
 सम्भ्रम तरङ्ग में निमज्जित गोष्ठेश्वरी श्रीकृष्ण को नयन जल तथा
 स्नान दुग्धधारा से अभिषिक्त कर परचात् अभ्यञ्जनादि के लिये निज
 दासियों को और मुझको आदेश करेंगी । उस समय मैं ब्रजेश्वरी
 का मन-मन में स्तव करूँगा ॥ ८१ ॥ श्रीकृष्ण अपनी के द्वारा स्नेह

तेनैवकान्तविरहज्वर-भेषजेन
 तत्कालिकेन तदुदन्तरसेन चापि ।
 आगत्य साधु शिशिरीकरवाणि शीघ्रं
 स्वन्नेत्रकर्णरसना हृदयानि देवि ! ॥ ८३ ॥
 स्नानाय पावनतडागजले निमग्नां
 तीर्थान्तरे तु निजबन्धुवृतो जलस्थः ।
 संमज्ज्य तत्र जलमध्यत एत्य स त्वा-
 मालिङ्ग्य तत्र गत एव समुत्थितः स्यात् ॥ ८४ ॥
 तस्मां विदुर्निकटगा अपि ते ननन्द
 प्वस्त्रादयो न किल तस्य सहोदराद्याः ।
 ज्ञात्वाहमुत्पुलकितैव सहालिरेत-
 द्ब्रह्मदुर्घमेत्य ललितं प्रति वर्णयामि ॥ ८५ ॥
 उद्यानमध्य घलभीमधिरुद्ध तत्र
 वातायनार्पित दृशं भवती विधाय ।

से मित्रमण्डल के साथ स्नान, अनुलेपन, वस्त्र, आभरणादि से वि-
 चित्र शोभायमान होकर भोजन-पान कर शयन (किंचित् विश्राम)
 करेंगे । उस समय मैं अलङ्घित रूप से श्रीकृष्ण का अवशेष ग्रहण
 करूँगा ॥ ८२ ॥ हे देवि उस अधरामृत के द्वारा जो कि आपके विरह
 ज्वर का प्रशमन करने वाला है उससे तथा श्रीकृष्ण की स्नान-भोजन
 यात्रादि से मैं आपके रसना कर्ण हृदय की शीतल करूँगा ॥ ८३ ॥
 हे देवि ! प्रीष्मकाल में पावनसरोवर में स्नानार्थ किसी घाट में
 निज बन्धुवर्ग के साथ जलविहार करते करते श्रीकृष्ण अलङ्घितभाष
 से दूधकर अन्यघाट में उठ आपके आलिङ्घित कर फिर पहले के
 घाट में बन्धुवर्ग में उपस्थित होंगे ॥ ८४ ॥ इस विषय को निरुद्धथा
 आपसी ननन्दी आदि कोई नही जानेंगी अथवा श्रीकृष्णके सहोदरा-
 दिक् भी कोई नही जानेंगे । परन्तु मैं उस कृष्ण की चानुरी यात्रा

संदर्श्य तत्प्रियतमं सुरभीर्दुहान-
 मानन्दवारिधिमहोर्मिषु मज्जयानि ॥ ८६ ॥
 गत्या मुकुन्दमय भोजितपायितं तं
 गोष्ठेशया तव दशां निभृतं निवेद्य ।
 सङ्केतकुञ्जमधिगत्य पुनः समेत्य
 स्यां ज्ञापयान्यथि ! तदुत्कलिकाकुलानि ॥ ८७ ॥
 त्वां शुक्लकृष्णरजनीसरसाभिसार-
 योन्यैर्विचित्रवसनाभरणैर्विभूष्य ।
 प्रापय्य कल्पतरुकुञ्जमनङ्गसिन्धौ
 कान्तेन तेन सह ते कलयानि फेलीः ॥ ८८ ॥
 हे श्रीतुलस्युरुकृपाद्युतरङ्गिनीस्त्वं
 यन्मूर्द्धिन् मे चरणपङ्कजमादधास्वम् ।
 यच्च चाहमप्यपिबमन्धु मनाक् तदीयं
 तन्मे मनस्युदयमेति मनोरयोऽयम् ॥ ८९ ॥

को जानकर घर आकर ललिता को सुनाऊँगा ॥ ८५ ॥ उसके अन-
 न्तर पुष्पोद्यान में चन्द्रशाला के ऊपर आपको आरोहित करा कर
 प्रियतम का दर्शन कराऊँगा । आप गवाक्षद्वार में नयन अर्पण कर
 गोदोहनकारी श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगी तथा आनन्द सागर की म-
 हान् तरङ्गों में मग्न हो जावेंगी ॥ ८६ ॥ अनन्तर श्रीकृष्ण गोष्ठेश्वरी
 के द्वारा स्नेह के साथ भोजन कर शयन करेंगे । मैं उस समय उनके
 पास निभृत में जाकर आपकी दशा का निवेदन कर संकेतस्थान जान
 आपके निकट आकर श्रीकृष्ण की उत्कण्ठा का वर्णन करूँगा ॥ ८७ ॥
 उसके अनन्तर ज्योत्स्ना, या अन्यकार रजनी के सरस अभिसार
 योग्य उचित वस्त्राभरण के द्वारा आपको विभूषित कर कल्पवृक्ष के
 कुञ्ज में लेकर कान्त के साथ अनङ्गसमुद्र में क्रीड़ा कराऊँगा ॥ ८८ ॥
 हे अत्यधिक कृपातरङ्गिणी रूप श्रीतुलसि ! आपने मेरे भस्वक में

क्वाहं परशतनिवृत्त्यनुविद्धचेताः
 सङ्कल्प एष सहसा क्व सुदुर्लभेऽर्थे ।
 एकां कृपैव तव मामजहात्युपाधि-
 शून्येव मन्तुमदधत्यगते गति मे ॥ ६० ॥
 हे रङ्गमञ्जरि ! कुरुस्व मयि प्रसादं
 हे प्रेममञ्जरि ! किरात्र कृपादृशं स्वाम् ।
 मामानय स्वपदमेव विलासमञ्ज-
 र्यालीजनैः सममुरीकुरु दास्यदाने ॥ ६१ ॥
 हे मञ्जुलालि ! निजनायपदाब्जसेवा-
 सातत्य सम्पदतुलासि मयि प्रसीद ।
 तुभ्यं नमोऽस्तु गुणमञ्जरि ! मा दयस्व
 मामुद्धरस्व रसिके ! रसमञ्जरि त्वम् ॥ ६२ ॥

चरणपद्म का अर्पण किया है । मैंने भी उस पादपद्म धौत जल का
 अल्पमात्र पान किया । उससे ही मेरा यह मनोरथ उदय हो रहा है ।
 “हे तुलसी !” यह ग्रंथकार के निज मन्त्रदाता गुरु का सिद्ध देहप्राप्त
 नाम का सम्बोधन है ॥ ६० ॥ शताधिक्य शाठ्यता में अनुद्विचिन्त
 वाला मैं कहाँ हूँ ? और हठात् सुदुर्लभ अर्थ में यह मेरा मङ्कल्प
 या कहाँ है ? परन्तु आपकी उपाधिशून्य कृपा ही मेरी भोंति अगति
 की गति है । जो कि अपराध नहीं देखती हुई इस प्रकार सङ्कल्प करा
 रही है ॥ ६० ॥ हे रङ्गमञ्जरि ! मेरे लिये प्रसन्नता प्रदान कीजिये ।
 हे प्रेममञ्जरि ! इस दुर्गत जन में कृपा दृष्टि का क्षण कीजिये । हे
 विलासमञ्जरि ! निज चरणपद्म में रत्न कर सरियों के साथ दास्य
 में अधिकार दीजिये । यहाँ “रङ्गमञ्जरि !” यह ग्रंथकार के परमगुरु का
 सिद्धस्वरूप सम्बोधन है तथा “प्रेममञ्जरि !” परापर गुरु का सम्बो-
 धन है ॥ ६१ ॥ हे मञ्जुलालि ! आप निजनाय की पादपद्म सेवा में

हे भानुमत्य ! नुपम प्रणयान्विमग्ना
स्वस्वामिनोस्त्वमसि मां पदवीं मय स्वाम् ।
प्रेमप्रवाह पतितासि लवङ्गमञ्जरि-
य्यात्मीयतामृतमयीं मयि धेयि दृष्टिम् ॥ ६३ ॥
हे रूपमञ्जरि ! सदासि निबुञ्जयूनाः
केलिक्लृप्तारसविचित्रितचित्तवृत्तिः ।
स्वदत्तदृष्टिरपि यत् समरूपं तत्
सिद्धौ तवैव करुणा प्रभुतामुपैतु ॥ ६४ ॥
राधाङ्गशरदुपगृह्णतस्तद्राप्त-
धर्मद्वयेन तनुचित्तधृतेन देव !

अतुलनीय ममत्ति स्वरूपा हूँ । मेरे लिये प्रसन्न हों । हे गुणमञ्जरि !
आपको प्रणाम करता हूँ । आप दया कीजिये । हे रसिके रसमञ्जरि !
मेरा उद्धार करो । यहाँ “मञ्जुनालि !” श्री लोकनाथ गोस्वामी के
“गुणमञ्जरि !” श्री गोपालभट्ट गोस्वामी जी के “रसमञ्जरि !”
श्री रघुनाथगोस्वामी जी के सिद्ध मञ्जरी देह का सम्बोधन है ॥
६३ ॥ हे भानुमति ! आप स्वामिनी जी के अनुपम प्रणय समुद्र में
निरन्तर भग्ना हैं । आप मुझे अपनी पदवी को प्राप्त कराइये । हे
लवङ्गमञ्जरि ! आप प्रेम-प्रवाह में पतिता हैं एक बार मेरे प्रति
आत्मीयता अमृतमयी दृष्टि को प्रदान कीजिये । यहाँ ‘भानुमति !’
जोव गोस्वामी के “लवङ्गमञ्जरि !” श्री सनातन गोस्वामी जी के
सिद्ध मञ्जरीदेह का सम्बोधन है ॥ ६३ ॥

हे रूपमञ्जरि ! आप निरन्तर श्री राधागोविन्द के केलिक्लृप्त
रस में विचित्रित चित्तवृत्ति वाली हैं । मैंने आप के द्वारा दत्त दृष्टि
होकर जो जो संकल्प किया है, उसकी सिद्धि करने में आप की
करुणा प्रभुत्व प्राप्त हों ॥ ६४ ॥ हे देव नन्दनन्दन ! निरन्तर श्री रा-
धिका के श्री अंग का आलिङ्गन के वश प्राप्त धर्म दोनों, अर्थात्

गौरदयानिधिरभूरयि ! नन्दसूनो !
 तन्मे मनोरथलतां सफलीकुरु त्वम् ॥ ६५ ॥
 श्रीराधिकागिरिश्रुतौ ललिताप्रसाद-
 लभ्यादिति ब्रजवने महतीं प्रसिद्धिम् ।
 श्रुत्वाभयानि ललिते ! तव पादपद्मं
 कारुण्यरञ्जितदृशं मयि हा ॥ निधेहि ॥ ६६ ॥
 त्वं नाम-रूप-गुण-शील-वयोभिरैक्या
 द्राधेव भासि सुदृशां सदसि प्रसिद्धा ।
 आगः शतान्यगणयन्नुररीकुरुष्व
 तन्मां चराङ्गि ! निरुपाधिकृपे ! विशाखे ! ॥ ६७ ॥
 हे प्रेम सम्पदतुला ब्रजनन्दनयूनोः
 प्राणाधिकाः प्रियसग्गाः ! प्रियनर्म्मसख्यः ! ।
 युष्माकमेव चरणञ्जरजोभिषेकं
 साक्षादद्याप्य सफलोऽस्तु ममैव मुदुर्ध्ना ॥ ६८ ॥

तनु और चित्त का धारण में गौर दयानिधि हो रहे हैं । निष्कर्ष यह है कि श्री राधिका के तनु धर्म गौरवर्ण के धारण में गौर तथा चित्त धर्म दया की धारण में दयानिधि, अर्थात् दोनों के धारण में गौरदयानिधि हुए हैं । अतः मेरी मनोरथ लता को सफल कीजिये ॥ ६५ ॥ श्री ब्रजवन में ऐसी प्रसिद्धि है कि ललिता जी की अनुकम्पा से राधा गिरिधारी की प्राप्ति होती है । हे ललिते ! मैंने इसे सुन कर आप के चरण-कमल का आश्रय ले लिया है । आप मेरे ऊपर कृपादृष्टि कीजिये ॥ ६६ ॥ हे विशाखे ! रमणी-समाज में “आप रूप-गुण-नाम और स्वभाव में राधिका की सदृशा हैं” ऐसी परम प्रमिद्धि है । अतः हे अद्वैतकृपामयि ! हे श्रेष्ठाङ्गि ! शत अपराध का प्रदणन कर मुझ को अद्भोक्ता कीजिये ॥ ६७ ॥ हे अमल प्रेम सम्पत्ति के अधिकारी ब्रज नव-युवक दोनों के प्राणाधिक

घृन्दावनीयमुकुट ! व्रजलोकसेव्य !
 गोवर्द्धनाचलगुरो ! हरिदासवर्च्य !
 तत्सन्निधिस्थितियुपो मम हृत्शिलास्व
 प्येता मनोरथलताः सहसोद्भवन्तु ॥ ६६ ॥
 श्रीराधया सम ! त्वदीय सरोवर ! त्व-
 तीरे यसानि समये च भजानि संस्थाम् ।
 स्वश्रीरपानजनिता मम तपवल्लयः
 पाल्यास्त्वया कुसुमिता पलिताश्चः कार्य्या ॥ १०० ॥
 घृन्दावनीयसुरपादपयोगपीठ
 स्वस्मिन् बलादिह निवासयसि स्वयं यत् ।
 तन्मे त्वदीय तलतस्थूप एव सर्व्व-
 सङ्कल्पसिद्धिमपि साधु कुरुष्व शीघ्रम् ॥ १०१ ॥
 घृन्दावनस्थिरचरान् परिपालयित्रि !
 घृन्दे ! तयोरसिकयोरतिसौभगेन ।

प्रिय सखागण ! और प्रिय नर्म सखीगण ! आप सब के पादपद्म
 रजों से अभिषिक्त होकर मेरा भस्तक सफल हो ॥ ६५ ॥ हे घृन्दा-
 वन के मुकुट स्वरूप ! हे व्रजजन सेव्य ! हे गोवर्द्धन ! हे पर्वतगुरो !
 हे हरिदास श्रेष्ठ ! आप के निकट वास करने के कारण प्रस्तर स-
 दृश मेरे इस चित्त में भी यह मनोरथ लता हठात् उठी है ॥ ६६ ॥
 हे रायिका के तुल्य उनके सरोवर श्रीराधाकुण्ड ! मैं तुम्हारे तीर में
 वास कर रहा हूँ । समय आने पर प्राण त्याग भी करूँगा । तुम्हारे
 जल-पान से मेरा हृदय में जो आशा लता उठी है वह तुम्हारे द्वारा
 पालनीया पुष्पिता और फलवती हो ॥ १०० ॥ हे घृन्दावन के कल्प-
 वृक्ष सम्बन्धी योगपीठ ! तुमने अपने स्थान में बल-पूर्वक मुझे वास
 कराया है । अतः तुम्हारे तल स्थित मेरे इस संकल्प का शीघ्र सिद्ध
 कराओ ॥ १०१ ॥ हे घृन्दावन के स्थिर-चर सब की पालयित्रि !

आदपासि तत्कुरु कृपां गणना यथैव
 श्रीराधिकापरिजनेषु ममापि सिद्धेत् ॥ १०२ ॥
 घृन्दायनावनिपते ! जय सोम ! सोम-
 मौले ! सनन्दन-सनातन-नारदेव्य ! ।
 गोपीश्वर ! ब्रजविलासियोगाङ्घ्रिपद्मे
 प्रेम प्रयच्छ निरुपाधि नमो नमस्ते ॥ १०३ ॥
 हिरान्याः किलवासना भजत रे घृन्दायनं सत्रतं
 राधाकृष्णविलासवारिविरसास्वादं न चेत् विन्दथ ।
 त्यक्तुं शक्नुथ न स्पृहामपि पुनस्तत्रैव हृद्युत्तयो !
 विश्रद्धाः श्रयत ममैव सततं संकल्पकल्पद्रुमम् ॥ १०४ ॥
 इति श्रीविरयनाथचक्रवर्तीठक्कुरविरचितः
 श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः सम्पूर्णः ॥

हे श्रीघृन्दे ! तुम रसिक दोनों के अति सौभाग्य से युक्ता हो । तुम
 कृपा करो । जिससे कि श्रीराधिका के परिकर में मेरी गणना सिद्धि
 हो ॥ १०२ ॥ हे घृन्दायनवरिधि के पालक ! हे सोम रूप ! हे चन्द्र-
 मौले ! हे सनन्दन सनातन-नारद पूज्य ! हे गोपीश्वर ! आप जय-
 युक्त हैं । ब्रजविहारी दोनों के चरण कमल में मेरा निरुपाधि प्रेम
 का प्रदान कीजिये । आप को नमस्कार ! नमस्कार है ॥ १०३ ॥ हे
 मेरी चित्तवृत्तियों ! तुम सब गङ्गान्त रूप से-अन्य वासनाओं का
 त्याग कर श्रीघृन्दायन का भजन करो । यदि घृन्दायन में श्रीराधा-
 गोविन्द के विलास समुद्र का रसास्वाद नहीं प्राप्त हुआ हो अथवा
 यदि उस लोभ का परित्याग नहीं करना चाहते हो, तब विशेष भद्रा
 के साथ मेरा हम संकल्पकल्पद्रुम का आभय लेओ ॥ १०४ ॥

हे श्रीसंकल्पकल्पद्रुम का अनुवाद समाप्त ॥

अनुवादक—हृष्णदास ।

• श्रीश्रीराधाकृष्णपादाम्बुजेभ्यो नमः •

ॐ श्रीमन्नजविलासस्तवः ॐ



प्रतिष्ठारज्जुभिर्वद्धं कामाद्यैर्वर्त्मपातिभिः ।

छित्त्वा ताः संहरन्तस्ताम्रघारेः पान्तु मां भटाः ॥ १ ॥

दग्धं वाद्धं कवन्यवद्धिमिलं दष्टं दुरान्ध्याहिना

विद्धं मामतिपावश्यविशिखैः क्रोधादिसिद्धैर्वृतम् ।

स्वामिन् प्रेमसुधाद्रवं करुणया द्राक् पायय श्रीहरे

येनैतानवधीर्य सन्ततमहं धीरो भवन्तं भजे ॥ २ ॥

यन्माधुरीदिव्यसुधारसाब्धेः स्मृतेः कणेनाप्यतिलोलितात्मा ।

पथैर्ब्रजस्थानखिलान् ब्रजञ्च नत्वा स्वनाथौ वत तौ दिदृक्षे ॥ ३ ॥

कामादि लुटेरों के द्वारा प्रतिष्ठारूप रज्जू से मैं बँधा पड़ा हूँ ।

अब अघनाशन श्रीहरि के मार्गरक्षक वीर सेनागण उस बन्धन का छेदन तथा उन लुटेरों का संहार कर मेरी रक्षा करें ॥ १ ॥

वाद्धं क्यरूप घनाग्नि में जलता जा रहा हूँ । उसमें फिर दुरान्ध्य सर्प मुझको दंशन कर रहा है । परवशतारूप बाणसमूह चारों ओर से मुझे बाँध डारते हैं । क्रोधादि सिंहों से मैं घिरा हुआ हूँ । हे स्वामिन् ! हे श्रीहरे ! आप शीघ्र निज करुण्य गुण से प्रेम सुधाद्रव का वर्षण कर मुझे पान कराइये । जिससे कि मैं इन संवका निवारण करता हुआ धीर होकर आपका भजन करूँगा ॥ २ ॥

जिनके माधुरी दिव्य सुधारस समुद्र का कणमात्र स्मरण कर मैं लोलायमान हो रहा हूँ उन निजनाथ श्रीराधा गोविन्द का ब्रज के समस्त और ब्रज को पथों के द्वारा नमस्कार करता हुआ सरसावलोकन करना चाहता हूँ ॥ ३ ॥

प्रादुर्भावसुधाद्रवेण नितरामङ्गित्वमाप्त्वा ययो
 गोष्ठेऽभीक्ष्णमनङ्ग एष परितः क्रीडाविनोदं रसैः ।
 प्रीत्योह्लासयतीह मुग्धमिथुनश्रेणीवतंसाविमौ
 गान्धर्व्या-गिरिधारिणौ वत कदा द्रक्ष्यामि रम्येण तौ ॥ ४ ॥
 वैकुण्ठादपि सोदरात्मजवृत्ता द्वारावती सा प्रिया
 यत्र श्रीशतनिन्दिपट्टमहिपीवृन्दः प्रभुः खेलति ।
 प्रेमक्षेत्रमसौ ततोऽपि मथुरा प्रेष्टा हरेर्जन्मतो
 यत्र श्रीव्रज एव राजतितरां तामेव नित्यं भजे ॥ ५ ॥
 यत्र क्रीडति माधवः प्रियतमैः स्निग्धः सखीनां कुलै
 नित्यं गाढरसेन रामसहितोऽप्यद्यापि गोचारणैः ।
 यस्याप्यद्भुत-माधुरी रसविदां हृद्येव कापि स्फुरेत
 प्रेष्ठं तन्मथुरापुरादपि हेरगोष्ठं तदेवाश्रये ॥ ६ ॥

जिनके प्रादुर्भावरूप सुधाद्रव से निरन्तर सिंचित होकर अनङ्ग
 मानो दिव्य अंग का धारण कर लिया है तथा क्रीडाविनोद रसों से
 उन मुग्ध मिथुन श्रेणी के अवतंस श्रीगान्धर्व्या गिरिधारी की प्रीति
 के साथ उल्लासित कर रहा है । मैं कब उन दोनों का अनुराग के साथ
 दर्शन करूँगा ॥ ४ ॥

वैकुण्ठ से सहोदर तथा पुत्रादिकों से परिवृत्त द्वारकापुरी परम-
 प्रिय है । जहाँ प्रभु श्रीहरि लक्ष्मीशत तिरस्करी पटरानियों के
 साथ क्रीड़ा करते हैं । उस द्वारकापुरी से प्रेम का क्षेत्ररूप श्रीमथुरा
 प्रभु की जन्मभूमि के कारण परमप्रिय है । उस मथुरापुरी में श्रीव्र-
 जमण्डल विशेष भाव से विराजमान है । हम उस मथुरा का नित्य
 भजन करते हैं ॥ ५ ॥

जहाँ श्रीबलदेव के साथ श्रीमाधव निज प्रियतम सखाओं के स-
 हित गाढरस प्रकट से गोचारणादि के द्वारा नित्य क्रीड़ा करते हैं ।
 और जिसकी कोई अद्भुत-माधुरी रसिकों के हृदय में स्फूर्तिशील है

वैदग्ध्योत्तर-नर्म-कर्मकसखीवृन्दः परोतं रसेः
 प्रत्येक तत्कुञ्जवल्हारिगिरिद्रोणीषु रात्रिन्दिवम् ।
 नाना केलिभरणं यत्र रमते तत्क्रययुनोर्गुणं
 तत्पादाम्बुजगन्धवन्धुरतरं वृन्दावनं तद्भजे ॥ ७ ॥
 यत्र श्रीपरितो भ्रमत्यविरतं तास्ता महसिद्धयः
 स्कीताः सृष्टिरलं गवामुदयनी वासोऽपि गोष्टौकताम् ।
 वातसल्यात् परिपालिता विहरते कृष्णः पितृभ्यां सुखै
 स्तन्नन्दीश्वरमालयं ब्रजपतेर्गोष्ठोत्तमाङ्गं भजे ॥ ८ ॥
 पुत्रस्याभ्युदयार्थमादरभरे मिष्टान्नपानोत्कर्षे
 दिव्यानाञ्च गवां मणिब्रजयुजां दानैरिह प्रत्यहं ।
 यो विप्रान् गणशः प्रतोष्यति तद्भव्यस्य वार्त्ता मुहुः
 स्नेहात् पृच्छति यश्च तद्गतमनास्तं गोकुलेन्द्रं भजे ॥ ९ ॥

इस मथुरा से भी ओष्ठ श्रीहरि का गोष्ठ है । मैं उस गोष्ठ का आ-
 भय करता हूँ ॥ ६ ॥

वे नवीन युवा दोनों जहाँ वैदग्ध्यादिक नर्म कर्म में चतुर स-
 खियों के साथ प्रत्येक वृत्त, कुञ्ज, लता, पर्वतकन्दरा में रात्रि-दिन
 नाना केलिपरायण हो रसमय विहार करते हैं तथा उनके चरणकमलों
 की गन्ध द्वारा जो अति सुन्दरतर है हम उस वृन्दावन का भजन
 करते हैं ॥ ७ ॥

जहाँ सदा सर्वदा लक्ष्मीदेवी चार ओर फिरती रहती है, वे सब
 महा-सिद्धियाँ जहाँ मौजूद रहती हैं, जहाँ गो प्रचार सेवा की सृष्टि
 है तथा जो ब्रजवासियों का निवासस्थान है, जहाँ श्रीकृष्ण पिता-माता
 के द्वारा वातसल्य सुख से परिपालित होकर विहार करते हैं, गोष्ठराज
 श्रीनन्द जी के गोष्ठ से उत्तम उस नन्दीश्वर गृह का हम भजन करते
 हैं ॥ ८ ॥

पुत्र श्रीकृष्ण अभ्युदय (मङ्गल) के लिये जो आदर के साथ

पुत्रस्नेहभरैः सदास्तुतकुचद्वन्द्वा तदीयोच्छल-
 दघर्मस्यापि लवस्य रत्नगणविधौ स्वप्राणदंहाव्युदः ।
 आसत्ता क्षणमात्रमप्यकलनात् सद्यः प्रसूतेव गौ
 व्यग्रा या विलपत्यलं बहुमयात् सा पातु गोष्ठेश्वरी ॥ १० ॥
 पुत्रादुच्चैरपि हलधरात् सिञ्चति स्नेहपुरे
 गोविन्दं याऽद्भूतरसवतीप्रक्रियासु प्रवीणा ।
 सख्यश्रीभिर्न जपुरमहाराजराज्ञीं नयैस्तद्
 गोपेन्द्रं या सुखयति भजे रोहिणीमीश्वरीं ताम् ॥ ११ ॥
 उदयच्छुभ्रांशुकोटिदयुतिनिकरतिरस्कारकार्युज्ज्वलश्री-
 दुर्व्वारोदाम-धाम-प्रकररिपुघटोन्मादविध्वसिगन्धः ।

दिव्य मिष्टान्न-पान तथा मणियों से भूषित गौओं का दान से प्रतिदि-
 यत गणसह विभों को प्रसन्न करते हैं और कृष्णगत प्राण जो स्नेह
 से उनको पुत्र की मङ्गलवार्त्ता बार बार पूछते रहते हैं उन गोकुलेन्द्र
 श्रीनन्द का हम भजन करते हैं ॥ ६ ॥

पुत्रस्नेहातिशय के घरा जिनके स्तनयुगल निरन्तर क्षरण होते
 रहते हैं जो श्रीकृष्ण के माँ-गों का उच्छलित घर्म लय का भी रक्षण
 में निज अर्घ्युद प्राण-देहों के द्वारा मानो निरन्तर व्यग्र रहती हैं,
 जो श्रीकृष्ण के क्षणमात्र अनवलोकन से सद्यः प्रसूता गौ की तरह
 उत्कण्ठित हो जाती हैं तथा बहु भय की शङ्का से विलाप करती हैं वे
 गोष्ठेश्वरी श्रीयशोदा रक्षा करें ॥ १० ॥

जो निज पुत्र हलधर में भी अधिक स्नेहधारा के द्वारा श्रीगोविन्द
 का मिञ्चन करती हैं तथा अद्भुत रन्ध्रन परिपाटी में प्रवीण हैं, जो
 सख्यताभिर्यों के द्वारा व्रज-महाराज की रानी यशोदा जी को तथा
 नीति के द्वारा श्रीव्रजराज को सुख देती हैं उन ईश्वरी रोहिणी माता
 का हम भजन करने हैं ॥ ११ ॥

जो उदयशील शुभांशु चन्द्रमा कोटि की वान्तिसमूह तिरस्कार-

स्नेहादप्युन्निमेप निजमनुजमितोऽरण्यभूमौ स्ववीत
तद्वीर्य्यज्ञोपि यो न क्षणमपनयते स्तौमि तं धेनुकारिम् ॥१२॥
पञ्जन्यनामा निजनप्तृगर्वं पञ्जन्यलक्ष्मणमितो विनिन्दन् ।
यो नर्म तन्वन् रमतेऽस्य ऋणं नमाम्यहो कृष्णपितामह तम् ॥१३॥
प्रियस्य नप्तु सुखतोऽतिगर्वात् पादौ न यस्या पतत पृथिव्याम् ।
नमामि नर्मन्निर्चितनप्तृचन्द्रा वरायसी कृष्णपितामही ताम् ॥१४॥
श्वेतश्मश्रु भरेण सुन्दरमुख श्याम वृत्ती मन्त्रणा-
भिह्न ससादि सन्तत व्रजपते जुर्वन् स्थितिं योऽर्चिचत ।
स्वप्राणान्बुदखण्डनैर्मुग्धभिः श्रुत सुत तोषयेत्
साहारे निरसन् स गोष्ठमवतान्नाम्नोपनन्द सदा ॥१५॥

कारी अत्युज्ज्वल श्रीविशिष्ट हैं, जो हेला मात्र से दुर्वार अति पराक्रम-
शाली रिपुओं का उन्माद विध्वंस करने वाले हैं, निज अनुज श्री-
कृष्ण का पराक्रम जानते हुए भी जो अत्यन्त स्नेह से अरण्य-भूमि
में निमेषकाल के लिये उनका पारत्याग नहीं करते ह उन धेनुकारि
श्रीवलदेव की स्तुति करता हूँ ॥ १२ ॥

पञ्जन्य नामक जो श्रीकृष्ण के पितामह निज नाती के गर्व से
मानो पञ्जन्यलक्ष (मेघलक्ष) का तिरस्कार करते हैं तथा जो श्रीकृष्ण
के साथ नर्म परिहास करने वाले हैं उन श्रीकृष्ण के पितामह से न-
मस्कार है ॥ १३ ॥

प्रिय नाती श्रीकृष्ण के सुख के द्वारा अतिगर्व से जितके चरण
युगल पृथ्वी में नहीं पड़ते थे, नाती श्रीकृष्ण की नर्मकारिणी उन
वरीयसी नाम्नी श्रीकृष्ण की पितामही को नमस्कार करता हूँ ॥१४॥
जो शुभ्र दाढ़ीसे सुन्दर मुख वाले तथा श्यामवर्ण हैं, जो मन्त्रणादि म
परम चतुर हैं, जो व्रजराज की सभा में रह कर पूजित हैं, जो भ्राता
के पुत्र श्रीकृष्ण को निज अबुद प्राण से भी सुख देने वाले हैं तथा
जिनका वासस्थान साधार में है वे उपनन्द जी सर्वदा गोष्ठ की रक्षा

गौरः कोमलधीन्द्राचरितः स्निग्धो ब्रजेन्द्रानुजः
 श्यामश्मश्रु रत्नं तदीयचरणे भक्तः सुनन्दापिता ।
 ॥ प्राणैः परिमञ्चय माधवसुखं दध्ना महिष्याः परं ।
 सन्नन्दस्तनुते स पातु नितरां नः कासरीणां पतिः ॥ १६ ॥
 श्यामः सूक्ष्ममतिर्युवातिमधुरो ज्योतिर्विदामग्रणीः
 पारिडत्यैर्जितगीस्पतिर्ब्रजपतेः सव्ये कृतावस्थितिः ।
 कृष्णं पालयतीह यः प्रियतया प्राणान्बुद्धिं द्रव्यं
 मन्त्रेणाप्युपनन्दसूनुमिह तं प्रीत्या सुभद्रं नमः ॥ १७ ॥
 दैत्याद्वीतेरतिविकलधीः कोमलाङ्गस्य सूनोः
 कृष्णस्योच्चैः सततमवने वत्सला व्यग्रचित्ता ।
 कृच्छ्रं रम्यां बहुभिरभितो हन्त सन्तोष्य शूरं
 दैत्यघ्नं या सुतमजनवत् सांभिका पातु धात्री ॥ १८ ॥

करें ॥ १५ ॥

जो गौरवर्ण हैं, जिनकी बुद्धि अति कोमल है तथा जो उदार-
 चरित्र वाले और स्निग्ध हैं, जिनकी श्यामवर्ण दाढ़ी है, वे ब्रजराज
 के भक्त अनुज सन्नन्द हम सबकी रक्षा करें। सन्नन्द जी कासरियों
 के पति हैं। उन्होंने माधव के सुख के लिये प्राण का निर्मलच्छन
 किया है ॥ १६ ॥

श्यामवर्ण, सूक्ष्मबुद्धि वाले, अतिमधुर, ज्योतिर्विदों के अग्रगामी,
 पारिडत्य से वृहस्पति को जीतने वाले तथा ब्रजराज के घाम भाग में
 रहने वाले, उपनन्द के पुत्र सुभद्र जी को प्रीति के साथ हम नमस्कार
 करते हैं। जो मन्त्रणादि के द्वारा परम प्रीति के साथ निज अर्चुं द
 प्राण से भी श्रीकृष्ण का पालन करते थे ॥ १७ ॥

वह धात्री सांभिका रक्षा करें। वत्सला जो दैत्यों से भयभीत
 होकर अतिव्याकुल हो जाती थीं तथा कामलांग पुत्र श्रीकृष्ण की
 रक्षा करने में सर्वदा व्यग्रचित्ता रहती थीं। जिसने अनेक कठिन व्र-

नान्दर्यस्य स्फुटति परितो दिव्यविध्यण्डकोटिः
 के ते तावत् किल दितिसुताः क्षुद्रकात् क्षुद्रजीवाः ।
 स्नेहान्मात्रा विजयमभितो रक्षणे सन्नियुक्तं
 कृष्णस्यारात् परमिह भजे हन्त धात्रीसुत तम् ॥ १६ ॥
 मन्त्रन्यासैरिह मुररिपोस्तत्पुरोधाः पुरस्तात्
 सर्वार्थानि प्रकटनिगमो भागुरियोऽभिरक्ष्य ।
 आशीर्भिश्च प्रतिदिनमहो तच्छिरो जिघ्रतीदं
 वन्दे तावन्मुनिसुरपतेस्तस्य पादब्जयुग्मम् ॥ २० ॥
 कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः संप्रवीणः सखीनां
 श्यामाङ्गस्तत् समगुणवयो-वेश-सौन्दर्य्य-दर्पः ।
 स्नेहाद्वन्द्वोः क्षणमकलनाज्जायते योऽवधूतः
 श्रीदामानं हरिसहचरं सर्व्वदा तं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

तादि के द्वारा देवता को प्रसन्न कर दैत्यनाश करी सुत श्रीकृष्ण का
 जन्म कराया ॥ १८ ॥

माता के द्वारा श्रीकृष्ण के निकट में रक्षा के लिये नियुक्त, उस
 धात्रीसुत विजय का हम विशेष रूप से भजन करने हैं। जिसके शब्द
 से मानों दिव्य ब्रह्माण्ड कांठि छिन्न भिन्न भयभीत हो जाते थे। क्षुद्र
 से क्षुद्र जीव दैत्यगण कौन हो सकने हैं ॥ १६ ॥

उन सुरपति मुनि भागुरि नामक पुरोहित जी के चरण दोनों की
 धन्दना करते हैं। जो मन्त्रों के न्यास के द्वारा श्रीकृष्ण के आगे आगे
 रह कर समस्त अङ्गों का रक्षण करते थे तथा प्रतिदिन आशीर्वादों
 के द्वारा श्रीकृष्ण के मस्तक का आघ्राण करते थे ॥ २० ॥

श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रणयपात्र, सखाओं में अतिप्रवीण, श्याम-
 वर्ण, श्रीकृष्ण के समान गुण, वयः, वेश, सौन्दर्य्य, अभिमान वाले
 उनके सहचर श्रीदामा के सर्व्वदा हम शरण में हैं। जो स्नेह के वश
 प्रिय श्रीकृष्ण के क्षणमात्र अनवलोकन से अवधूत की भाँति हो जाते

गाढानुरागभरतो विरहस्य भीत्या स्वप्नेऽपि गोमुखविधोर्न जहाति हस्तम् ।
यो राधिकाप्रणयनिर्भरसिक्तचेतास्तं प्रेमविह्वलतनुं सुवलं नमामि ॥ २२ ॥

वृत्तैकत्र गवां कुलानि परितः कृष्णेन सार्द्धं मुदा
हस्ताहस्ति विनोदनर्मकथनैः खेलन्ति मित्रोत्कराः ।
प्रेमाम्भोषिविधौतगौरवमहापङ्कस्तदङ्कार्चिता
स्तत्पादार्पित-चित्तजीवितकला ये तान् प्रपद्यामहे ॥ २३ ॥
मूर्त्तो हास्यरसः सदैव सुमनाः कामं वुमुक्षतुः
प्राणप्रेष्ठवयस्योरनुदिनं वाग्देहभङ्ग्युत्करैः ।
हास्यं यो मधुमङ्गलः प्रकटयन् संभ्राजते कीतुकी
तं वृन्दावनचन्द्रनर्मसचिवं प्रीत्या सुवन्दामहे ॥ २४ ॥

धे ॥ २१ ॥

जो गाढानुराग के बरा विरहभय से स्वप्न में भी श्रीकृष्णचन्द्र का हस्त को नहीं छोड़ते थे तथा जो श्रीराधिका के प्रणय निर्भर से निरन्तर सिञ्चित रहते हैं उन प्रेम से विह्वल अङ्ग वाले सुवलजी को हम नमस्कार करते हैं ॥ २२ ॥

जो सब सखागण गौओं को एकत्र कर श्रीकृष्ण के साथ आनन्दतिशय से हस्ताहस्ति (हाथापाई) विनोद-नर्म बचनों से क्रीड़ा करते हैं, जिन्होंने प्रेमसागर में गौरव महापङ्क को धो डाला है तथा श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त-जीवन-विद्या को अर्पण कर दिया है, उन सब सखागण के हम शरण में आ रहे हैं ॥ २३ ॥

उन वृन्दावनचन्द्र के नर्मसखा प्रिय मधुमङ्गल जी की हम सुवन्दना करते हैं । जो मानो मूर्त्तिमान् हास्यरस स्वरूप तथा सदा सर्वदा निर्मल हृदय वाले हैं । वे भोजन में परम पटु हैं जो वाणी-देह की अति मज्जि के द्वारा निरन्तर प्राण प्रिय वयस्य श्रीकृष्ण-वल-देव को हँसाते रहते हैं तथा परम कीतुकी हैं ॥ २४ ॥

गूढं तत्सुविदग्धतार्क्षितसखीद्वारोन्नयन्ती तयोः
 प्रेम्णा सुष्ठु विदग्धयोरनुदिनं मानाभिसारोत्सवम् ।
 राधामाधवयोः सुखामृतसं यैवोपमुडक्ते मुहु-
 गोष्ठे भव्यविधायनीं भगवतीं तां पौर्णमासीं भजे ॥ २५ ॥
 खर्व्वश्मश्रुमुदारमुज्जलकुलं गौरं समानं स्फुरत्
 पञ्चाशत्तमवपवन्दितवयः क्रान्तिं प्रवीणं व्रजे ।
 गोष्ठेशस्य सखायमुन्नततर-श्रीदामतोऽपि प्रिय-
 श्रीराधं वृषभानुमुद्गट-यशोव्रातं सदा तं भजे ॥ २६ ॥
 अनुदिनमिहमात्रा राधिकामव्यवार्त्ताः,
 क्लयितुमतियत्नात् प्रेप्यन्ते धात्रिकायाः ।
 दुहितृयुगलमुच्चैः प्रेमपूरप्रपञ्चै
 विक्लमति ययाऽसौ कीर्त्तिदा साऽवतान्नः ॥ २७ ॥

गोष्ठ में मङ्गलविधायनी उन पौर्णमासी भगवती जी का हम
 भजन करते हैं । जो गूढभाव से प्रीति के साथ विदग्धा सखियों के
 द्वारा प्रतिदिन विदग्ध श्रीराधा-माधव का मिलन कराकर दोनों का
 मान-अभिसारादि आनन्द उत्सव के सुखामृत रस का उपभोग क-
 रती हैं ॥ २५ ॥

उद्गट यश वाले श्रीकृष्ण के सखा श्रीदाम से भी श्रीराधिका
 को प्रीति करने वाले पिता श्री वृषभानु जी का सदा सर्व्वदा हम भ-
 जन करते हैं । जो खर्व्वायमान दाढ़ी विशिष्ट तथा गौरवर्ण हैं जिन
 का कुल परम उज्ज्वल है । उनका वयःक्रम पचास वर्ष का है, तथा
 जो व्रज में प्रवीण हैं ॥ २६ ॥

वह राधिका की माता श्रीकीर्त्तिदा देवी हम सब की रक्षा करें ।
 जो प्रतिदिन अत्यन्त यत्न के साथ राधिका की कुशलधार्या को जानने
 के लिये धावू की दुहितृ दोनों को भेजती थीं तथा प्रेम प्रवाह विस्तार
 के द्वारा विक्ल बुद्धि हो जाती थी ॥ २७ ॥

प्रथमरसविलासे हन्त रोपेण तावत्,
 प्रकटमिव विरोधं सन्दधानापि भङ्गया ।
 प्रवलयति सुखं या नव्ययूनोः स्वनप्तोः,
 परमिह मुखरा तां मुर्ध्नि वृद्धां वहामि ॥ २८ ॥
 सान्द्रप्रेमरसैः प्लुता प्रियतया प्रागल्भ्यमाप्ता तयोः
 प्राणप्रेष्ठव्यस्ययोरनुदिनं लीलाभिसारं क्रमैः ।
 वैदग्ध्येन तथा सखीं प्रति सदा मानस्य शिक्षां रसै
 र्येयं कारयतीह हन्त ललिता गृह्णातु सा मां गणैः ॥ २९ ॥
 प्रणयललितनर्मस्फारमूमिस्तर्योर्या
 व्रजपुरनवयुनेर्या च कण्ठान् पिक्वानाम् ।
 नयति परमघस्तादिव्यगानेन तुष्ट्या
 प्रथयतु मम दीक्षां हन्त सेयं विशाखा ॥ ३० ॥

हम केवल मस्तक के द्वारा उन वृद्धा मातामही मुखरा का बहन करते हैं । जो पहले रसविलास में रोप दिखा कर विरोध करती हुई पश्चात् भक्ति के द्वारा निज नष्ट नवीन युवा राधा माधव के अति सुख का विस्तार करती थी ॥ २८ ॥

वह श्री ललिता मुझे अपने गणों में रखें । जो निविड़ प्रेमरसों के द्वारा परिप्लुता हैं तथा जो दोनों की अत्यधिक प्रियता के कारण प्रागल्भता को प्राप्त हुई हैं । जो निज वैदग्ध्य दक्षता के साथ प्राणप्रेष्ठ व्यस्य दोनों का लीला-भिसारादिक क्रम से कराती रहती हैं तथा जो रस के साथ निज सखी राधिका को मान की शिक्षा देती हैं ॥ २९ ॥

हाय ! वह श्रीविशाखा मेरी दास्य दीक्षा का विस्तार करें । जो व्रज नवीनयुवा दोनों की प्रणय-ललित-नर्मविस्तार की भूमी स्वरूपा हैं । जो दिव्यातिदिव्य गान से कोकिलों का कंठ को तिरस्कार करती हैं ॥ ३० ॥

प्रतिनवनकुञ्जं प्रेमपूरेण पूर्णं
 प्रचुरसुरभिपुष्पैर्भूषयित्वा क्रमेण ।
 प्रणयति वत वृन्दा तत्र लीलोत्सवं या
 प्रियगणवृत्त-राधाकृष्णयोस्तां प्रपद्ये ॥ ३१ ॥
 सम्ध्येनालं परमरुचिरा नर्मभन्व्येन राधां
 पाकार्यं या व्रजपतिमहिष्याक्षया सन्नयन्ती ।
 प्रेम्णा शशवत् पथिपथि हेरवार्त्तया तर्पयन्ती
 तुष्यत्वेतां परमिह भजे कुन्दपूर्वी लतां ताम् ॥ ३२ ॥
 व्रजेश्वर्यानीतां वत रसवतीकृत्यविधये
 मुदा कामं नन्दोश्वरगिरिनिकुञ्जे प्रणयिनी ।
 छलैः कृष्णं राधां दयितममि तां सारयति या
 धनिष्ठां तत्प्राणप्रियतरसखीं तां किल भजे ॥ ३३ ॥
 अवन्तीतः कीर्त्तैः श्रवणभरतो मुग्धहृदया
 प्रगाढोत्कण्ठाभिर्ब्रजभुवमुरीकृत्य किल या ।

जो श्रीवृन्दा प्रचुर कल्पवृक्षों के पुष्पों से प्रत्येक नवीन कुञ्ज को सजाती हैं तथा जो प्रेमधारा से परिपूर्णा हैं । जो प्रियगण से परिवृत्त श्रीराधा-कृष्ण की लीला उत्सव का विधात्री हैं, उनकी हम शरण लेते हैं ॥ ३१ ॥

हम केवल कुन्दलता का भजन करते हैं । वे प्रसन्न होवें । जो नर्म, परिहास सख्य में परम रुचिरा हैं तथा जो पाक करने के लिये व्रजराणी यशोदा की आश्रमा से श्रीराधा को नित्य नन्दालय में लाती थी । मार्ग में श्रीहरि की वार्त्ता से श्रीराधिका को प्रसन्ना करती हैं ॥ ३२ ॥ राधिका की प्राणप्रियसखी धनिष्ठा का हम भजन करते हैं । प्रीतिपात्री वह धनिष्ठा जब रन्धनकार्य विधि में व्रजेश्वरी के द्वारा आनीता राधिका लग जाती थी तब नाना छल दिखा कर नन्दीश्वर पर्वत के निकुञ्ज में राधिका जी को श्रीकृष्ण के निकट पहुँचाती थी ॥ ३३ ॥

मुदा राधाकृष्णोज्ज्वलरसमुखं वदयति तां
 मुखीं नान्दीपूर्वा सततमभिवन्दे प्रणयतः ॥ ३४ ॥
 मुदा राधाकृष्ण-प्रचुर-जलकेली-रसभर-
 स्खलत्कस्तूरीतदधुसृण-धनचच्चार्चिचतजला ।
 प्रमोदात्तो फेनस्मितमुदितमूर्मिस्फुटकर-
 थ्रिया सिञ्चन्तीव प्रथयतु सुखं नस्तरणिजा ॥ ३५ ॥
 सर्वानन्दकदम्बकेन हरिणा प्राग्याचिता अप्यमूः
 स्वैरं चारु रिरंसया रहसि याः क्रोधादनादृत्य ताम् ।
 प्राणप्रेष्ठसखीं निजामनुदिनं तेनेव सार्द्धं मुदा
 राधां संरमयन्ति ताः प्रियसखीमूर्ध्ना प्रपद्ये तराम् ॥ ३६ ॥
 प्रेम्णा ये परिवर्तनेन कलिताः सेवाः सदैवोत्सुकाः
 कुर्व्याणाः परमादरेण सततं दासा वयस्योपमाः ।

हम प्रीति के साथ निरन्तर उन नान्दीमुखी की अभिवन्दना करते हैं । जो यश भवण से मोहित होकर प्रगाढ़ उत्कण्ठा के द्वारा अ-
 वन्ती को छोड़कर व्रजभूमि में वास करने लगी तथा जो श्रीराधा-
 कृष्ण के उज्ज्वलरस मुख को बढ़ाने वाली हैं ॥ ३४ ॥

श्रीराधा-कृष्ण की अत्यधिक जलक्रीड़ा रसभर से पतित कस्तूरी-
 कुंकुम-चन्दनादि रज से व्याप्त जलवाली यह यमुना सबका सुख
 विधाक करें । जो अत्यन्त प्रमोद से मानो फेन रूप स्मित के साथ
 तरंगरूप हस्तलक्ष्मी के द्वारा दोनों का सिञ्चन करती हैं ॥ ३५ ॥

उन सब प्रियसखियों का मस्तक नम्रता के साथ हम शरण लेते
 हैं । जो सब सर्वानन्द कदम्ब स्वरूप श्रीहरि के द्वारा पहले प्रार्थित
 होकर भी स्वच्छन्द मनोहर रमण करने में इच्छुका निज प्राण प्रेष्ठ
 सखी राधिका को अनुदिन उन श्रीहरि के साथ रमण कराती हैं ॥ ३६ ॥

वयस्य तुल्य पत्रिमुख्यादि दासगण का हम भजन करते हैं । जो
 सब निरन्तर उत्सुक होकर प्रेम के साथ बाँट कर परम आदरता से

वंशी-दर्पणदूत्यनारि-विलसताम्बूलवीणादिभिः
प्राणेश परितोषयन्ति परितस्तान् पत्रिभूख्यान् भजे ॥ ३७ ॥

ताम्बूलार्पण-पादमर्दन-पयोदानाभिसारादिभिः
वृन्दारण्यमहेश्वरी प्रियतया यास्तोषयन्ति प्रिया ।

प्राणप्रेष्ठसखीकुलादपि किलासङ्कोचिता भूमिकाः

केलीभूमिषु रूपमञ्जरिमुखास्ता दासिकाः सश्रये ॥ ३८ ॥

तशीकृत्य स्फारं सुरजलधिसारं स्फुटमपि
स्नकीयं प्रेम्णा ये मम-निरुनम्रा मुररिपोः ।

सुखाभासं शशवत् प्रथयितुमल प्रौढकृतकृद

यतस्ते तान् धन्यान् परमिह भजे माधवगणान् ॥ ३९ ॥

तस्याः क्षणादर्शनतो म्रियन्ते सुखेन तस्याः सुखिनो भवन्ति ।

स्निग्धाः परं ये वृत्तपुन्यपुञ्जाः प्राणेश्वरीप्रेष्ठगणान् भजे तान् ॥ ४० ॥

सेवा करते हैं। ये सब वंशी, दर्पण, दूत्य, जल, ताम्बूल, वीणादि
के द्वारा प्राणेश का परितोष करते हैं ॥ ३७ ॥

अब हम रूपमञ्जरी प्रमुख उन प्राणेश्वरी की दासियों का आ-
श्रय करते हैं। जो सब ताम्बूल-प्रदान, पादमर्दन, जलप्रदान, अभि-
सारादि के द्वारा प्रियता के साथ वृन्दायनेश्वरी राधिका की प्राणप्रेष्ठ
सखियों से भी असंकोचित होकर क्रीड़ाभूमि में प्रसन्नता विधान
करती हैं ॥ ३८ ॥

हम केवल उन माधव के गणों का भजन करते हैं। जो सब
निज सुरसागर को भी वृण की भाँति देखते हैं तथा जो श्रीकृष्ण
के प्रेमभर से नम्र हैं। निरन्तर प्रौढ कौतुक के द्वारा यह दिखाते हैं
कि जगत् में सब कुछ सुखभास से युक्त है केवल कृष्णप्रेम ही सुर
समुद्र स्वरूप है ॥ ३९ ॥

अब प्राणेश्वरी के उन प्रियगणों का हम भजन करते हैं। प्राण-
ेश्वरी राधिका के क्षणकाल अदर्शन से जो मृतप्राय हो जाते हैं तथा

साफन्योच्चप्रज्यदुज्ज्वलरसस्योच्चैः समुद्रवृद्धये
 गौभाग्योद्भटगर्जविभ्रमभूतः श्रीराधिकायाः स्फुटम् ।
 गोविन्दः स्मरफुल्लवह्नवधूतर्गरेण येन क्षणं
 क्रीडत्येव तमत्र विस्तृतमहापुण्यं च वन्दामहे ॥ ४१ ॥
 ब्रह्माण्डात् परमुच्चलत् मुखमरं तत्कोटिसंख्यादपि
 प्रेम्णा कृष्णमुरचिताः प्रतिमूहः प्राप्ताः परं निर्वृताः ।
 कामं तत्पदपद्ममुन्दरनखप्रान्तस्सलत्रेणुका-
 रक्षान्वग्रधियः स्फुरन्ति मित्त ये तान् गोपवर्ष्यान् भजे ॥ ४२ ॥
 प्राणैर्म्योऽप्यधिकैः प्रियैरपि परं पुत्रैर्मुकुन्दस्य याः
 स्नेहात् पादस्तोजयुग्मविगलदधर्मस्य विन्दोः कणम् ।
 निर्म्मञ्ज्योरुशिखण्ड सुन्दरशिरश्चुम्बति गोप्यरिचरं
 तासां पादरजासि सन्ततमहं निर्म्मञ्जयामि स्फुटम् ॥ ४३ ॥

उनके सुख से सुखी होते हैं । वे सब परम स्निग्ध कृत-पुण्यपुंज-
 शाली हैं ॥ ४० ॥

उन विस्तृत महापुण्यशाली गोपवधूवर्ग की हम वन्दना करते
 हैं । कन्दर्परस से उफुलित जिनके साथ श्रीगोविन्द क्षणकाल क्रीड़ा
 करते हैं । उसे सौभाग्य से उद्भट गर्ज विभ्रम धारणकारी श्रीराधिका
 के स्पष्टतारूप से साफल्य से उत्कर्ष प्राप्त उज्ज्वल रस की अत्यन्त बुद्धि
 के लिये जानना चाहिये ॥ ४१ ॥

हम उन गोपश्रेष्ठों का भजन करते हैं । वे सब ब्रह्माण्ड सुख
 से कोटि संख्या में अधिक परम महासुख से सुखी हैं तथा श्रीकृष्ण
 के द्वारा रचित परम निर्वृत्तशील हैं । फिर भी वे सब श्रीकृष्ण के
 चरणरुमलों की सुन्दर नख प्रान्त के स्सलित रजकण की संरक्षा में
 व्यग्रचित्त रहते हैं ॥ ४२ ॥

उन गोपियों के चरण रजों का हम निरन्तर निर्म्मञ्जुन देते हैं ।
 जों सब प्राणों से अधिक प्रिय निज पुत्रों से भी अत्यधिक श्रीकृष्ण

इन्द्रनीलखुराजिताः पर स्पर्णवद्धवरशृङ्गरञ्जिताः ।
 पाण्डुगण्डगिरिगर्वसन्निवृत्ताः यान्तु न सपदि कृष्णधेनवः ॥ ४४ ॥
 यासां पालनदोहनेत्सवरतः साद्धं वयस्योत्कर्तैः
 कामं रामविराजितः प्रतिदिनं तत्पादरेणुज्ज्वलः ।
 प्रीत्या स्फीतवनोरुपर्वतनदीकण्ठेषु वद्धस्पृहो
 गोष्ठाखण्डलनन्दनो विहरते ताः सौरमेयीर्मजे ॥ ४५ ॥
 मणिखचितसुवर्णशिलाष्ट-शृङ्गद्वयश्री-
 रसितमणि-मनोह-ज्योतिस्त्वत्खुराढ्यः ।
 स्फुरदरुणिमगुच्छान्दोल-विद्योतिकण्ठः
 स जयति वक्रशत्रोः पद्मगन्धः कुकुब्बी ॥ ४६ ॥
 मृदु-नवतृणमल्पं सस्पृहं वक्तुमर्ह्ये
 क्षिपति परमयत्नादल्पकण्डूच्च गात्रे ।

में प्रेम करती थी। जो चरण कमल युग्म से विगलित घर्म्मकण का-
 निर्म्मच्छन देकर प्रचुर मयूरपंख से मुन्दर श्रीकृष्ण का मस्तक चु-
 म्बन करती हैं ॥ ४३ ॥

वे सब श्रीकृष्ण की धेनुगण हम सबकी रक्षा करें। जिनके गुर
 इन्द्रनीलमणि से जड़ित हैं तथा जो सुवर्ण से संयुक्त शृङ्गों से रंजित
 हैं ॥ ४४ ॥

वयस्यों के साथ श्रीबलदेव जी से विराजमान होकर जिनके च-
 रण रज से उज्ज्वल प्राप्त व्रजराज नन्दन श्रीकृष्ण पालन-दोहनादि
 उत्सव में रत रहते हैं तथा वन, पर्वत, नदीतटादि में वद्धस्पृह हां
 कर विहार करते हैं उन सब गौत्रों का हम भजन करते हैं ॥ ४५ ॥

वकारि श्रीकृष्ण के वह पद्मगन्ध नामक नृपभ जययुक्त हों। जो
 मणि खचित सुवर्ण से युक्त शृङ्ग दोनों की शोभा से मनोहर हैं
 तथा असितमणि की भौति मनोहकान्ति विशेष है। जिसका गुर
 उठा हुआ है तथा कंठदेश अरुणिम गुंछ से दोलायमान है ॥ ४६ ॥

प्रथयति मुरवैरी हन्त यद्वत्सकानां

सर्पदि किला दिदृक्षे तत्तदाट्टीकनानि ॥ ४७ ॥

नत्तन्दिवं मुररिपोरधरामृतं या स्मीता पिबत्यलमवाधमदो सुभाग्या ।

श्रीराधिकाप्रथितमानमर्पाह दिव्यनांदरचो नयति तां मुखीं नमामि ॥ ४८ ॥

दूतीभिर्वहुचाटुभिः सखिकुलेनालं वचोभिर्द्विभिः

पादान्ते पतनैर्ब्रजेन्द्रतनयेनापि क्रुधालिगणैः ।

राधाया सहि शक्यते दवयितुं यां नैव मानो यया

फुरकृत्यैव निरस्यते सुकृतिनीं वंशीं सखीं तां नुमः ॥ ४९ ॥

स्मीतस्ताण्डविको हेरमुरलिकानांदन नृत्योत्सवं

धूर्वाञ्चालशिखण्डकलमु सस्सीतारे निकुञ्जगग्रतः ।

तन्वन् कुञ्जविहारिणोः सुखभरं सम्पादयेद् यस्तयोः

स्मृत्वा तं शिखिराजमुत्सुकतया वाढं दिदृक्षामहे ॥ ५० ॥

जिनके मुख में श्रीमुरारि स्पृह। युक्त होकर अल्प अल्प मृदुल नवीन तृष्णप्राप्त का अर्पण करते हैं तथा परम आदर से शरीर का फण्डयन करते हैं उन गो वत्सों का कूदना-उछलना लीला को हम कब देखेंगे ॥ ४७ ॥

जो दिनरात श्रीमुरारि के अधरामृत को बाधा रहित होकर पान करती है तथा जो अति भाग्यवती है, जो अपने नादों से श्रीराधिका के उच्चतर मान को नीचे दवा देती है उस मुखी को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४८ ॥

जो मान चाटुबाज्यों से दूतियों के द्वारा, सखियों के वचन परिपाटी के द्वारा, व्रजराजतनय के चरण पतन के द्वारा, क्रोधित आलीगण के द्वारा भी नहीं प्रशम होता था राधिका के उस मान को जो सुकृतिनी वंशीसखी फूत्करमात्र से ही नाश कर देती थी उस वंशी को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४९ ॥

उस ताण्डविक नामक शिखिराज मयूर का हम कब उत्सुकता

सप्ताह मुरमर्दन प्रणयतो गोष्ठैः ऋक्षोत्सुको
 विभ्रन्मानमुदारपाणिरमणैर्यस्मै सलिल ददौ ।
 गान्धर्व्यामुरभिद्विलासविगलित्काशमीरज्यदग्दुह-
 स्तरसद्रूपितरत्नसुन्दरशिलो गोमर्दन पातु व ॥ ५१ ॥
 नीपैश्चम्पकूपालिभिर्नगराशोके रसालोत्कटे.
 पुन्नागेर्वकुलेर्लवङ्गलतिकानासन्तिरुभिर्नृते ।
 हृद्य तत्प्रियकुण्डयोस्तटमिलनमध्यप्रदेश परं
 राधामाधवयो प्रियस्थलमिदं केह्यस्तदेनाश्रमे ॥ ५२ ॥
 श्रीवृन्दाविपिन सुरम्यमपि तच्छ्रीमान् स गोमर्दन
 सा रसस्थलीनाप्यल रसमयी किं तावदन्यत् स्थलम् ।

के साथ युगल दोनों का स्मरण कर अवलोकन करेंगे । जो राधाकुण्ड
 के तट पर निष्ठु ज के आगे श्रीहरि के मुरलीराज से प्रफुल्ल होकर
 मनोहर परम को घुमाता हुआ वह जविहारी निहारिणी के परमसुख का
 विधान करता है ॥ ५० ॥

चार ओर खाट की भोंति रत्नमय सुन्दर शिला विशिष्ट श्रीगो-
 मर्दन हम सबकी रक्षा करें । श्रीमुरारि ने गोष्ठरक्षामे अति उत्सुक
 होकर प्रणय के साथ उगार हस्तकमल से एक सप्ताह पर्यन्त धारण
 कर निसर्ग मान बढ़ाया है तथा जो श्रीगान्धर्व गिरिधारी के वि-
 लासों से विगलित काश्मीरादि से शोभायमान गुहा वाला है ॥ ५१ ॥

श्रीराधा माधव का उस तेलि प्रियस्थल नामक परम स्थल का हम
 आश्रय करते हैं । जो नीप चम्पका से, नरान भेष्य अशोकवृक्षों से,
 आभ्र समूह से, पुन्नाग, वकुल, लवङ्गलता, वासन्तिकादियों से परम
 मनोहर है तथा राधामाधव के प्रियकुण्ड श्रीराधाकुण्ड रयामकुण्ड के
 मिलन स्थल मध्य प्रदेश में है ॥ ५२ ॥

वह श्रीवृन्दाविपिन तथा वह श्रीमान गोमर्दन परम सुन्दर है ।
 वह रसमयी रसस्थली भी ऐसी परम सुन्दर ही है । अन्यान्य सरल

यस्याप्यंशलेन नार्हति मनाक् माम्यं मुकुन्दस्य तत्
 प्राणोभ्योऽप्यधिकप्रियेव दयितं तत्कुण्डमेवाश्रये ॥ ५३ ॥
 स्फीते रत्नसुवर्णमौक्तिकभरैः सन्निर्मिते मण्डपे
 श्रुत्कारं विनिधाय यत्र रमसात्तौ दम्पती निर्भरम् ।
 तन्वाते रतिनाथनर्मसचिवौ तद्राज्यचर्चा मुदा
 त राधासरसीतटोज्ज्वलमहाकुञ्जं सदाहं भजे ॥ ५४ ॥
 कान्त्या हन्त मिथः स्फुटं हृदितटे सन्निवृत्तं द्योतते
 प्रीत्या तन्मिथुनं मुदा पदकवद्रागेषु त्रिभुवयोः ।
 धात्रा भाग्यभरंशु निर्मिततरे त्रैलोक्यलक्ष्म्यास्पन्दे
 गौरश्यामतमे इमे प्रियतमे रूपे कदाहं भजे ॥ ५५ ॥
 नेत्रोपान्त-विधूर्यनैरलाघु तटोर्मूल-सञ्चालनै
 रीपद्मास्तरसैः सुधाधरधयैश्चुम्बैर्दालिङ्गनैः ।

स्थान सुन्दर है । परन्तु वे सब श्री मुकुन्द के प्राणों से भी अधिक प्रिया श्रीराधिका की तरह परम प्रिय श्रीकुण्ड अर्थात् राधाकुण्ड का लव अंश का साम्य नहीं प्राप्त हो सकते हैं उस राधाकुण्ड का हम आश्रय लेते हैं ॥ ५३ ॥

राधाकुण्ड के तट पर उस उज्ज्वल महाकुञ्ज का हम निरन्तर भजन करते हैं । रत्न, सुवर्ण, मौक्तिकों से विनिर्मित विस्तृत मण्डप में अन्य सबका श्रुत्कार करते हुए कन्दर्पनर्म सचिव दम्पती दोनों जहाँ कन्दर्पराज्य चर्चा का विस्तार करते हैं ॥ ५४ ॥

गौर-श्याम इन प्रियतम रूप का हम कब भजन करेंगे । कान्ति के द्वारा दोनों दोनों के हृदयतट में प्रतिविम्बित हो रहे हैं । मानो पदक की भाँति अथवा पदक के छल से दोनों दोनों को धारण कर रहे हैं । दोनों विधाता के भाग्य के वश निर्मित हुए हैं तथा त्रैलोक्यलक्ष्मी के आस्पद स्वरूप हैं ॥ ५५ ॥

उस उज्ज्वल महापत्र की अर्थात् दिव्य शृङ्गार हस्तराज की हम

ऐतैरिष्टमहोपचारनिचयैस्तन्नययुनोयुगं

प्रीत्या य भजते तमुज्ज्वलमहाराज प्रनन्दामहे ॥ ५६ ॥

नेत्रे दैर्घ्यमपाङ्गयो कुटिलता वक्षोज-वक्ष स्थले

स्थौल्य तन्मृदु वाचि वक्रिमगुरा श्रोणी पृथुस्फारता ।

सर्वाङ्गे वरमाधुरी स्फुटमभूदयनेह लोफुत्तरा

राधामाधवयोरेला नयनयसन्धि सदा तं भजे ॥ ५७ ॥

दुष्टारिष्टत्रये स्वय समुदभूत कृष्णाङ्घ्रिप्रपन्नादिद

स्फीत यन्मरुतन्दनिस्तृतिरिन्नारिष्टाख्यमिष्टं सरः ।

सोपानैः परिरञ्जित प्रियतया श्रीराधया कारितैः

प्रेम्णालिङ्गदिव प्रियासर इद तन्नीत्य नित्यं भजे ॥ ५८ ॥

वन्दना करते हैं । जो नेत्रोपान्त का विघूर्णनो से, विशाल भुजामूल के मञ्जालनों से, ईपत् हास्य रसों से, अधरसुखा का पानों से, चुम्बनो से, दृढ़ आलिङ्गनों से, इन सब इष्ट महोपचार से उन नवीन युवा युगल का प्रीति के साथ भजन करना है ॥ ५६ ॥

श्री राधा माधव की उस नवीन वय सन्धि का हम भजन करते हैं । जिसमें नेत्र में दीर्घता, अपाङ्ग में कुटिलता, वक्षोज तथा वक्षः स्थल में स्थूलता, मृदुवचन में वक्रिम की अतिशयता, शोणि में विस्तारता, सर्वाङ्ग में वरमाधुरी ये सब अलौकिक भाव स्फुट रूप से प्रकाशित होते हैं ॥ ५७ ॥

उस श्यामकुण्ड का हम नित्य भजन करते हैं । जो दुष्ट अरिष्टा-गुर का वध के समय श्रीकृष्ण के चरण कमलों से ऊपन्न हुआ है । मानो श्रीकृष्ण के चरणकमलों का मकरन्द रस का विस्तार होकर अरिष्टकुण्ड नाम से प्रसिद्ध हो गया है । श्रीराधिका के द्वारा प्रीति के साथ परिनिर्मित सोपानों से जो परिरञ्जित हो रहा है तथा प्रियता से राधाकुण्ड का आलिङ्गन कर रखा है ॥ ५८ ॥

कदम्बानां ब्रातैर्मधुपमुलभङ्गार-ललितैः
 परीते यत्रैव प्रिय-सलिललीलाहृतिमिपैः ।
 मुहुर्गोपेन्द्रस्यात्मजमभिसरन्त्यम्बुजदृशो
 विनोदेन प्रीत्या तदिदमवतात् पावनसरः ॥ ५६ ॥
 पञ्चर्जन्येन पितामहेन नितरामाराध्य नारायणं
 त्यक्तं वाहारमभूदपुत्रक इह स्वीयात्मजे गोष्ठपे ।
 यत्रावापि सुरारिहा गिरिधरः पौत्रो गुणैकाग्रः
 क्षुण्णाहारतया प्रसिद्धमवनौ तन्मे तडागं गतिः ॥ ६० ॥
 साद्धं मानसजाह्नवीमुखनदी-वर्गैः सरङ्गोत्कर्षैः
 सावित्र्यादि-सुरीमुखैश्च नितरामाकाशवाण्या विधेः ।
 वृन्दादण्डयवरेण्यराज्यविषये श्रीपौर्णमासी मुदा
 राधा यत्र सिपेच सिञ्चतु सुख सोन्मत्तराधास्थली ॥ ६१ ॥

वह पावनसरोवर हम सबकी रक्षा करे । जो मधुप भ्रमरों के कङ्कार से ललित कदम्बों का समूह से परिव्याप्त है । जहाँ अम्बुजनयना गोपियों जल आनयन छल से बार बार विनोद के साथ श्रीकृष्ण का अभिसार करती हैं अर्थात् उनसे मिलती हैं ॥ ५६ ॥

पृथिवी में क्षुण्णाहार नाम से प्रसिद्ध वह सरोवर मेरी गति हो । जहाँ पर पितामह पञ्चर्जन्य ने “निज आत्मज, अपुत्रक, व्रजराज का सन्तान की कामना से आहारादि परित्याग कर नारायण की नित्य आरावना की थी तथा गुणों के रान, सुरों का शत्रुनाशन, पौत्र गिरिधर को प्राप्त हुए थे ॥ ६० ॥

वह उन्मत्त राधास्थली सुख का सिञ्चन करे । जहाँ श्रीपौर्णमासी भगवती ने मानसगङ्गा प्रमुख नदियों के जल से तथा सरस्वति आदिक तीर्थों से अत्यन्त उत्सुकर्ण से निरन्तर ब्रह्मा की आकाशवाणी के साथ वृन्दावन के श्रेष्ठ राज्याधिकार विषय में राधिका का अभिपेक्ष सिञ्चन किया है ॥ ६१ ॥

प्रीत्या नन्दाश्रमगिरितटे स्फारपापाणमुन्द
 श्चातुष्कोणयेज्जुहतिगुरुभिनिर्मिता या त्रिदग्धै ।
 रेमे कृष्ण ससिपर्वितो यत्र नर्मणि तन्त्र-
 द्वास्थानी ता हरिपदलसत् सौरभात्त प्रपद्ये ॥ ६२ ॥
 त्रैदग्ध्योज्ज्वलज्जलगुल्लवप्रधूमणेण नृत्यन्नसौ
 हित्वा तं मुजिदसेन रहसि श्रीराधिकां मण्डयन् ।
 पुष्पालकृतिसङ्घयेन रमते यत्र प्रमदेत्कृतं
 इन्द्रलोन्याद्भूतमाधुरी परिवृता सा पातु रासस्थली ॥ ६३ ॥
 गान्धर्विकांमुरविमर्दननादिहार-लीला विनोदरस निर्भर भोगिनीयम् ।
 गोपद्वानोज्ज्वलशिलाकुलमुन्नयन्ती वीचीभरेरवतु मानसजाह्नवी माम् ॥ ६४ ॥
 येषां क्वापि च माधवो त्रिहरे स्निग्धैर्नयस्योत्करै
 स्तद्धातुद्रवपुञ्जचित्रिततैस्तैस्तै स्त्रय चित्रित ।

हम श्रीहरि के पञ्चकमल सौरभ से रचित आस्थानी नामक मनो-
 हर स्थल का शरण म आ रहे हैं । जो नन्दीश्वर पर्वत के तट पर है
 तथा विस्तार पापाण समूह से चतुष्कोण आकार विशिष्ट है । जहाँ
 श्रीकृष्ण सगवियों से परिवृत होकर विदग्धता से नर्म परिहास करते
 हुए मीठा करते हैं ॥ ६२ ॥

वह राधास्थली सनकी रक्षा करे । जहाँ श्रीमुरारि रस त्रैदग्ध्य
 परमोज्ज्वल मनोहर गोपनधूम्र के साथ नृत्य करते हुए उसका प-
 रित्याग कर रहस्यस्थल पर पुष्पों के अलङ्कार समूह से श्रीराधिका
 को मूर्पित कर रमण करते हैं ॥ ६३ ॥

वह मानसगङ्गा मेरी रक्षा करें । जो गान्धर्वी मुरनाराज के नौ-
 वाविहार रूप लीलाविनोद रसाधिपति का भोग करने वाली है तथा
 जो तरंगों से गोवर्धन के अत्युज्ज्वल शिलासमूह को उन्मज्जित करती
 है ॥ ६४ ॥ उन पर्वतराज श्रीगोपद्वान का हम भजन करते हैं । जहाँ
 राधिका के साथ श्रीमाधव उसके गैरिकादि धातुओं से चित्रित स्निग्ध

खेलामिः किल पालनैरपि गवां कुत्रापि नमोऽस्मैः
 श्रीराधासहितो गुहासु रमते तान् शैलवर्यान् भजे ॥ ६५ ॥
 स्फीते यत्र सरित्सरोवरकुले गाः पालयन्निवृत्तो
 ग्रीष्मे वारिविहार-केलिनिबहौ गोपेन्द्रदिव्यात्मजः ।
 प्रीत्या सिञ्चति मुग्धमित्रनिवसान् हर्षेण मुग्धः स्वयं
 काङ्क्षन् स्वीयजयं जयार्थिन इमान्नित्यं तदेतद्भजे ॥ ६६ ॥
 येषां कच्छपिकालसन्मुरलिकानादेन हर्षितकरैः
 सस्ताडस्तृणगुच्छ एष नितरां वक्तुं पु संस्तम्भते ।
 सख्येनापि तयोः परं परिवृता राधा-वकट्टे पिणो
 स्ते हृद्या मृगयूथपाः प्रतिदिनं मां तोषयन्तु स्फुटम् ॥ ६७ ॥
 गुञ्जदभृङ्गकुलेन जुष्टकुसुमैः सन्नद्ध-मञ्जुश्रियां
 कुञ्जानां निकरेषु येषु रमते सौम्यविस्तारिणाम् ।
 उद्यत् कामतरङ्ग-रङ्गितमनस्तन्नव्ययनोयुगं
 तेषां विस्तृतकेशपाशनिकरैः कुर्यामहो माज्जनम् ॥ ६८ ॥

वयस्यों के द्वारा स्वयं चित्रित होकर विविध क्रीड़ा तथा गौश्रों का पालन के द्वारा, कहीं वा नर्म उत्सव के द्वारा विहार करते हैं ॥ ६५ ॥

जहाँ भ्रजराजनन्दन ग्रीष्मकाल में विस्तृत नदी तथा सरोवर समूह में गौश्रों का पालन करते हुए उससे निवृत्त होकर जल विहार क्रीड़ा से स्वयं मुग्ध हो अपने जय की इच्छा करते हुए जयार्थी इन मुग्धमित्रसमूह को सिञ्चन करते हैं उन श्रीगोवर्द्धन का हम भजन करते हैं ॥ ६६ ॥

श्रीराधा-वकारि के वे मनोहर मृगयूथप प्रतिदिन मुझे स्पष्ट रूप से प्रसन्न करें । वीणा और मुरलीनाद से परम हर्षित जिनके मुखों में पतित अर्द्धचर्वित तृण गुच्छ गले के नीचे नहीं जाता है तथा जो सब तृणप्रास भूलकर परम सख्यता से उन दोनों को घिर जाते थे ॥ ६७ ॥

येषा चास्तलेषु शीतनिविडञ्छायेषु सत्रिन्दिव
 पुष्पाणां निगलितपरागविलम्बितलेषु क्लृप्ताश्रयम् ।
 प्रीत्या स्निग्धमधुव्रनैर्मधुक्रणौ ससेवित तन्नर
 यूनोयुग्मतर मदा विहरते ते पान्तु मां भूत्वा ॥ ६६ ॥
 गान्धर्वामुरैरिणो प्रणयिणो पुष्पाणि सचिन्वतो
 स्मैर स्मेरसखीकृतेन वृतयोरीवतस्मितेन द्वयो ।
 दृष्ट्वा केलिकलं तयोर्नयनव हास्येन पुष्पञ्चलै
 काम या विलसन्ति ता किल लता सेव्या पर प्रेमभि ॥ ७० ॥
 परिचयरसमग्ना काममारात्तयोर्मे मधुरतरस्नेनोल्लासमुल्लासयन्ति ।
 त्रजभूमि नयनो सुप्रिया पक्षिणस्ते प्रिदधतु मम सौख्य
 स्फारमालोदनेन ॥ ७१ ॥

अहो ! उन सत्र कुंजों का विस्तृत केश कलाप से मैं मार्जान क-
 रूँगा । गुञ्जित भृङ्गसमूह से युक्त पुष्पों से परम मनोहर, शोभाप्राप्त,
 सुगन्ध विस्तारकारी चिन कुंजों के समूह में उद्बलित कामतरङ्ग से
 अनुरक्त चित्त वे नवीन युवा दोनों रमण करते हैं ॥ ६८ ॥

वे सत्र घृक्षगण मेरी रक्षा करें । मनोहर शीतल घनद्राया बाले
 जिन घृक्षों के नीचे निगलित पराग पुष्पों के तलों में दिन रात वि-
 राजमान करते हुए स्निग्ध मधुक्रों के मधुक्रणों से ससेवित वे नवीन
 युवक दोनों आनन्द के साथ विहार करते हैं ॥ ६९ ॥

वे सब लतायें परम प्रेम से मेरी सेवनीया हैं । ना ईषत् हास्य से
 सखियों के साथ स्वेच्छा पूर्वक पुष्प चयनकारी, प्रणयी, गान्धर्व-
 मुरारी दोनों का नवीन-नवीन केलिकलाह देख पुष्पों के दल से हँसती
 हुई विलास करती है ॥ ७० ॥

वे पक्षिण विस्तार दर्शन दान से मेरा मुख विधान करें । जो
 त्रजभूमि में उन नवीन युवा दोनों के परिचय रस में मग्न रहते हैं
 तथा मधुरतर शब्द से दोनों को उल्लासित करते हैं ॥ ७१ ॥

चेत्येषु रुद्रमयेषु वकुलान्येषु वृक्षेषु
 प्रीत्या माधविकादिप्रह्लिषु तथा भाङ्गनादेर्द्वयो ।
 ये भृङ्गा परितस्तयो मुरमर विस्तारयन्ति स्फुट
 गुञ्जन्तो वत निभ्रमण नितरा तानेव वन्दामहे ॥ ७२ ॥
 पुष्पैर्यस्य मुदा स्वय गिरिधर स्वैर निरुञ्जेश्वरी
 पुष्पां पुलतरैरमण्डयदल पुष्पो निरुञ्जेश्वर ।
 ईदृग्नेत्र मिधूणनेन कलितस्त्राधीन उच्चैस्तया
 श्रीमान् स प्रथयत्यहो मम दृशोः सौख्य रुद्रम्वेश्वरः ॥ ७३ ॥
 नीचै प्रौढभयात् स्वय मुरपति पादौ त्रिधृत्येह ये
 स्वर्गाङ्गास्तलिलैश्चक्रात् सुरभिद्वारभिषेकोत्समम् ।
 गोविन्दस्य नव गङ्गाधपता राज्ये स्फुटं कीतुना-
 रौर्यदप्रादुरभूत् सदा स्फुटत् तद्गोविन्दकुण्ड दृशो ॥ ७४ ॥

उन भृङ्गों की इस वन्दना करते हैं । जो आश्र-वदन्व-वकुल तथा
 अन्यान्य वृक्षों में और माधविकादि लताओं में प्रीतिवश गु जनकारी
 भङ्गार नादों से उन युगल दोनों का सर्वप्रभार मुरम विस्तार करते
 हैं ॥ ७२ ॥

अहो ! वह अति उच्चता से श्रीमान् रुद्रम्वराज मेरे नेत्रों का मुरम
 विस्तार करें । निरुञ्जेश्वर स्वाधीन श्री गिरिधर प्रपुल्ल होकर स्व-
 चन्द्र ने जिसके पुष्पों के द्वारा प्रसन्ना निरु जेश्वरी श्रीराधिका को
 उत्सुक से ईषत् नेत्र धूर्णन के द्वारा मण्डित करते हैं ॥ ७३ ॥

वह श्री गोविन्दकुण्ड मेरे नेत्रों में सर्वदा स्फुट हो । अत्यन्त
 भयभीत स्वय इन्द्र ने नम्र होकर चरण पर सुरभि के द्वारा मुरधुनी
 के जलों से गौओं का आधिपत्य राज्य में गोविन्द का नवीन अभि-
 षेक उत्सव किया था । उस समय कीतुक से गोविन्दकुण्ड का
 प्रादुर्भाव हुआ है ॥ ७४ ॥

ब्रजेन्द्रवर्यार्पितभोगमुच्चैर्घृत्वा वृहत्कायमधारिस्तकः ।
 वरेण राधां छलयन् विमुङ्क्तो यत्रान्नकूटं तदहं प्रपद्ये ॥७५॥
 गिरिन्द्रवर्योऽपि हारिरूपी हरिः स्वयं यत्र विहारकारी ।
 सदा मुदा राजति राजभोगैर्हरिस्थलं तत्तु भजेऽनुरागैः ॥७६॥
 घट्टक्रीडाकुतुकिमना नागरेन्द्रो नवीनो
 दानो भूत्वा मदन्नपतेर्गव्यदानच्छलेन ।
 यत्र प्रातः सखिभिर्भितो वेष्टितः संस्रोध
 श्रीगान्धर्व्या निजगणवृतां नौमि तां कृष्णवेदीम् ॥ ७७ ॥
 निभृतमजनि यस्माद्दाननिवृत्तिरस्मि
 तन्न इदमभिधानं प्रापयत् तत्सभायाम् ।
 रसविमुखनिगूढे तत्र तज्ज्ञं कवेद्ये
 ससि भवतु वासो दाननिर्वर्त्तनेन ॥ ७८ ॥

उस अन्नकूट स्थान के हम शरण जाते हैं । जहाँ अधारि ने उ-
 त्कण्ठित हो वृहत् शरीर धारण के द्वारा वर से राधिका को छलना क-
 रते हुए ब्रजराज के द्वारा अर्पित भोग उपहार का धारण कर अन्नकूट
 का भोजन किया है ॥ ७५ ॥

उस हरिस्थल का अनुराग के साथ हम भजन करते हैं । जिस
 श्री गिरिराज के ऊपर हाररूप होकर स्वयं श्रीहरि विहार करते हैं तथा
 सदा सर्वदा विविध राजभोगों से विराजमान रहते हैं ॥ ७६ ॥

उस कृष्णवेदी को हम नमस्कार करते हैं । जहाँ घाटीक्रीडा में
 कीतुक्रमना होकर नव-नागरेन्द्र ने दानी बन कर काम-नृपति कां
 गव्यदान के छल से प्रातःकाल सखायों से परिवेष्टित होकर निज
 गणों से परिवृत राधिका का संरोध किया है ॥ ७७ ॥

उस दान निर्वर्त्तन नामक सरोवर में मेरा वास हो । यहाँ नि-
 भृत में दान निर्वर्त्तन लीला हुई थी, अतः सखी समाज में ऐसा ही
 नाम पड़ गया । वह स्थान असिकों के लिये परम निगूढ़ तथा

सीरिब्रह्म-कदम्बखण्ड-सुमनोरुद्राप्सरो-गौरिका
 ज्योत्स्नामोक्ष-माल्यहार-विबुधारीन्द्रध्वजाद्याख्यया ।
 यानि श्रेष्ठस्रांसि भान्ति परितो गोवर्द्धनान्नेरम्
 नीडे चक्रतीर्थ-दैवतगिरि-श्रीरत्नपीठान्यपि ॥ ७६ ॥
 अहो दोलाखेलान्सवरभरोत्फुल्लवदनौ
 मुहुः श्रीगान्धर्व्यागिरिवरधरौ तौ प्रतिमधु ।
 सखीवृन्दं यत्र प्रकटितमुदान्दोलयति तत्
 प्रसिद्धं गोविन्दस्थलमिदमुदारं वत भजे ॥ ८० ॥
 प्रियात्प्रियप्राणवयस्यवर्गे धृतापरार्धं किल कालियं तम् ।
 यत्रार्द्धयत् पादतलेन नृत्यन् हरिर्भजे तं किल कालियं हृदम् ॥ ८१ ॥
 सूर्यैर्द्वादशभिः परं मधुरिपुः शीतात्तं उग्रातपै
 र्भक्तिप्रेमभैरुदारचरितः श्रीमान्मुदा सेवितः ।

रसिकों के लिये वेद्य है ॥ ७८ ॥

श्रीगोवर्द्धन के चार ओर ये सब श्रेष्ठ मरोवर विराजमान हैं । जिनके नाम-सीरि (बलदेवकुण्ड) ब्रह्मकुण्ड, कदम्बखण्डी, कुसुमसरोवर, रुद्रकुण्ड, अप्सराकुण्ड, गौरीकुण्ड, ज्योत्स्नामोक्ष-कुण्ड, मालहारकुण्ड, विबुधारिकुण्ड, इन्द्रध्वजादि है । इन सब की तथा चक्रतीर्थ, दैवतगिरि, श्रीरत्नपीठ की भी हम स्तुति करते हैं ॥ ७६ ॥

उस प्रसिद्ध उदार गोविन्दस्थल का हम अवश्य भजन करते हैं । अहो ! सखीगण दोलाखेल (मूला) के रसवश से उफुल्ल मुख श्रीगान्धर्व्या-गिरिधारी को प्रति दिन बार-बार आनन्द प्रकाश करते हुए झुलाते हैं ॥ ८० ॥

उस कालियहृद का हम भजन करते हैं । जहाँ श्रीहरि ने प्रिय से प्रिय प्राणवयस्य वर्ग में अपराधकारी उस कालियनाग को नृत्य करते करते चरणों से दमन किया है ॥ ८१ ॥

यत्र स्त्रीपुरुषैः कवणतपशुकुलैरावेष्टितो राजते
 स्नेहैर्द्वादशसूर्यनाम तदिदं तीर्थं सदा संश्रये ॥ ८२ ॥
 अत्यन्तातपसेवनेन परितः सञ्जातघर्मोत्कै
 गोविन्दस्य शरीरतो निपतितैर्यत्तीर्थमुच्चैरभूत् ।
 तत्तत् कोमलसान्द्रसुन्दरतर-श्रीमत् सदङ्गोच्छल-
 द्रन्वैर्हारि सुचारि सुद्युति भजे प्रस्वन्दनं वन्दनैः ॥ ८३ ॥
 कात्यायन्यतुलार्चनार्थममले कृष्णाजले भजतः
 कन्यानां प्रभृतस्य चौरनिरुं संरक्षितं तीरतः ।
 हृत्वारुह्य कदम्बमुज्ज्वल-परिहासेन तं लज्जयन्
 स्मेरस्तं प्रददौ सुमङ्गिमुरजित चौरघट्टं श्रये ॥ ८४ ॥

उस द्वादश आदित्य स्थल का हम आश्रय करते हैं । जहाँ शी-
 तार्त होकर उदारचरित श्रीमान् गोविन्द भज के स्त्री-पुरुष गौओं से
 परिवेष्टित हो भक्ति-प्रेम के साथ द्वादश सूर्यों के उग्र ताप के द्वारा
 सेवित होकर विराजमान हुए थे । उसी कारण से यह स्थान द्वादश
 आदित्य टीला नाम से प्रसिद्ध हो गया है ॥ ८२ ॥

उस प्रस्वन्दन नामक तीर्थ का वन्दनाओं के द्वारा भजन क-
 रते हैं । अत्यन्त धूप का सेवन से घर्म उत्पन्न होकर श्रीगोविन्द का
 श्रीअंग से श्रमजल वहन लगा । उससे वह सुन्दर तीर्थ बन गया ।
 श्रीगोविन्द के शोभायमान सुन्दरतर कोमल श्रीअंग के उच्छलित
 गन्धों से उस का जल मनोहर हो रहा है ॥ ८३ ॥

उस चौरघाट का हम आश्रय करते हैं । जहाँ जमुना के पवित्र
 जल में कात्यायनी देवी की अर्चना करने वाली कन्याओं का वस्त्र
 समूह तीर से लेकर मुरारी ने परिहास करते हुए कदम्बवृक्ष में आ-
 रोहण कर उन को लज्जित किया तथा रंग परिहास के द्वारा वर
 प्रदान किया था ॥ ८४ ॥

सीरित्रह-कन्दम्बखण्ड-सुमनोद्ग्राप्सो-गौरिका
 ज्योत्स्नामोक्ष-माल्यहार-विबुधारीन्द्रध्वजाद्याख्यया ।
 यानि श्रेष्ठसंसि मान्ति परितो गोवर्द्धनाद्वैरम्
 नीडे चक्रवर्तीर्थ-देवतगिरि-श्रीरत्नपीठान्यपि ॥ ७६ ॥
 अहो दोलाखेला-रसवरभरोत्फुल्लवदनौ
 मुहुः श्रीगान्धर्वगिरिवरधरौ तौ प्रतिमयु ।
 सखीवृन्दं यत्र प्रकटितमुदान्दोलयति तत्
 प्रसिद्धं गोविन्दस्थलमिदमुदारं वत भजे ॥ ८० ॥
 प्रियात्प्रियप्राणवयस्यवर्गे धृतापराधं किल कालियं तम् ।
 यत्राहं यत् पादतलेन नृत्यन् हरिर्भजे तं किल कालियं हृदम् ॥ ८१ ॥
 सूर्यैर्द्वादशभिः परं मधुरिषुः शीतात्तं उग्रातपै
 भक्तिप्रेमभरैरुदारचरितः श्रीमान्मुदा सेवितः ।

रसिकों के लिये वेश्य है ॥ ७८ ॥

श्रीगोवर्द्धन के चार ओर ये सब श्रेष्ठ मरोवर विराजमान हैं । जिनके नाम—सीरि (यलदेवकुण्ड) ब्रह्मकुण्ड, कन्दम्बखण्डी, कुसुमसरोवर, रुद्रकुण्ड, अप्सराकुण्ड, गौरीकुण्ड, ज्योत्स्नामोचन-कुण्ड, मालहारकुण्ड, विबुधारिकुण्ड, इन्द्रध्वजादि है । इन सब की तथा चक्रतीर्थ, देवतगिरि, श्रीरत्नपीठ की भी हम स्तुति करते हैं ॥ ७६ ॥

उस प्रसिद्ध उदार गोविन्दस्थल का हम अवश्य भजन करते हैं । अहो ! सखीगण दोलाखेल (मूला) के रसवश से उफुल्ल मुख श्रीगान्धर्वगिरिधारी को प्रति दिन बार-बार आनन्द प्रकाश करते हुए मुलाते हैं ॥ ८० ॥

उस कालियहृद का हम भजन करते हैं । जहाँ श्रीहरि ने प्रिय से प्रिय प्राणवयस्य वर्ग में अपराधकारी उस कालियनाग को नृत्य करते करते चरणों से दमन किया है ॥ ८१ ॥

यत्र स्त्रीपुरुषैः क्वणत्पशुमुल्लेखवेष्टितो राजते
 स्नेहैर्द्वादशसूर्य्यनाम तदिदं तीर्थं सदा संश्रये ॥ ८२ ॥
 अत्यन्तातपसेवनेन परितः सञ्जातघर्मोत्तुर्गै
 गौविन्दस्य शरीरतो निपतितैर्यत्तीर्थमुच्चैस्मूत ।
 तत्तत् कोमलसान्द्रसुन्दरतर-श्रीमत् सदङ्गोच्छल-
 द्रन्ध्रैर्हारि सुवारि सुद्युति भजे प्रस्कन्दनं वन्दनैः ॥ ८३ ॥
 कात्यायन्यतुलाच्चर्चनार्थममले कृष्णजले मज्जतः
 कन्यानां प्रस्नस्य चोरनिर्गमं सरच्चितं तीरतः ।
 हृत्वास्त्र कदम्बमुज्ज्वल-परिहासेन तं लज्जयन्
 स्मेरस्त प्रददौ सुभङ्गिमुज्जितं चीरघट्टं श्रये ॥ ८४ ॥

उस द्वादश आदित्य स्थल का हम आश्रय करते हैं । जहाँ शी-
 तार्त होकर उदारचरित श्रीमान् गोविन्द व्रज के स्त्री पुरुष गौओं से
 परिवेष्टित हो भक्ति-प्रेम के साथ द्वादश सूर्यों के उप ताप के द्वारा
 सेवित होकर विराजमान हुए थे । उसी कारण से वह स्थान द्वादश
 आदित्य टीला नाम से प्रसिद्ध हो गया है ॥ ८२ ॥

उस प्रस्कन्दन नामक तीर्थ का वन्दनाओं के द्वारा भजन क-
 रते हैं । अत्यन्त धूप का सेवन से घर्म डलन होकर श्रीगोविन्द का
 श्रीअंग से श्रमजल यहन लगा । उससे वह सुन्दर तीर्थ बन गया ।
 श्रीगोविन्द के शोभायमान सुन्दरतर कोमल श्रीअंग के उच्छलित
 गन्वां से उस का जल मनोहर हो रहा है ॥ ८३ ॥

उस चीरघाट का हम आश्रय करते हैं । जहाँ जमुना के पवित्र
 जल में कात्यायनी देवी की अर्चना करने वाली कन्याओं का वस्त्र
 समूह तीर से लेकर मुरारी ने परिहास करते हुए कदम्बवृक्ष में आ-
 रोहण कर उन को लज्जित किया तथा रंग परिहास के द्वारा वर
 प्रदान किया था ॥ ८४ ॥

हेपाभिर्जगतीत्रयं मदभौस्तकम्पयन्तं परैः
 फुल्लन्नेत्रविधूर्णनेन परितः पूर्णं दहन्तं जगत् ।
 तं तावत्तृणवद्विदीर्य्यं वक्रमिद्विद्वे पिणं केशिनं
 यत्र क्षालितवान् करौ स रुधिरौ तत् केशितीर्य्यं भजे ॥ ८५ ॥
 अन्नैर्यत्रचतुर्विधैः पृथुगुणैः स्वैरं सुधानिन्दिभिः
 कामं रामसमेतमच्युतमहो स्निग्धैर्वयस्यैर्वृतम् ।
 श्रीमान् याज्ञिकविद्भिसुन्दरवधूवर्गः स्वयं यो मुदा
 भक्त्या भोजितवान् स्थलं च तदिदं तच्चापि वन्दामहे ॥ ८६ ॥
 मुदा गोपेन्द्रस्यात्मज-भुजपरिष्वङ्ग-निधये
 स्फुरद्गोपीवृन्दैर्यमिह भगवन्तं प्रणयिभिः ।
 भुजद्विस्तैर्भक्त्या स्वमभिलापितं प्राप्तमचिराद्
 यमीतीरे गोपीश्वरमनुदिनं तं क्लृप्तं भजे ॥ ८७ ॥

उस केशितीर्य का हम भजन करते हैं । जहाँ अति मत्तता से
 हेली के द्वारा तीन जगत् को कँपाता हुआ तथा बड़े बड़े नेत्रों के
 विधूर्णन से जगत् का मानो दहन करता हुआ विद्वेपि केशि दैत्य
 आया । बकारि श्रीकृष्ण ने उस को तृण की भाँति विदीर्ण कर
 सरुधिर हस्त कमल का वहाँ धोत किया था ॥ ८५ ॥

हम उस याज्ञिकस्थल तथा उन यज्ञपत्नियों की वन्दना करते हैं ।
 जहाँ श्रीमान् यज्ञपत्निवर्ग ने गुणों से सुधा निन्दि चार प्रकार के
 अन्न के द्वारा स्निग्ध वयस्यों से वेष्टित श्रीराम के साथ श्रीगोविन्द
 को प्रीति से भोजन कराया है ॥ ८६ ॥

यमुना के तीर में विराजमान उन श्रीगोपीश्वर महादेव का हम
 निश्चय भजन करते हैं । गोपीवृन्दों ने श्रीव्रजराजनन्दन के भुज
 आलिङ्गन रूप धन की प्राप्ति के लिये भक्ति के द्वारा जिन का भजन
 कर निज अभिलापित वस्तु का प्राप्त किया ॥ ८७ ॥

भयात् कंसस्यारात् सदयमचिराच्छन्तनुपदे
 विनिक्षिप्ता राधा रहसि किल पित्रा प्रकृतितः ।
 स्फुरन्तं तं दृष्ट्वा कमपि धनपुञ्जाकृतित्वं
 तमेवात्तं यत्रादयमभजत सूर्योऽवतु स नः ॥ ८८ ॥
 आविर्भावमहोत्सवे मुरारिपोः स्वर्णोर्मुक्ताफल-
 श्रेणीविभ्रममण्डिते नवगवीलक्ष्णे ददौ द्वे मुदा ।
 दिव्यालङ्कृतिरत्नपर्वततिल-प्रस्थादिकञ्चादरा
 द्विप्रेम्यः किल यत्र स ब्रजपतिर्वन्दे बृहत्काननम् ॥ ८९ ॥
 गान्धर्व्याया जनिमणिरभूत् यत्र सङ्कीर्त्तिताया-
 मानन्दोत्कैः सुरमुनिनरैः कीर्त्तिदागर्भस्वन्याम् ।
 गोपीगोपैः सुरभिनिर्कैः संपरीतेऽत्रमुख्ये
 रावलाख्ये वृषरविपुत्रे प्रीतिपुरे ममास्ताम् ॥ ९० ॥
 यस्य श्रीमच्छरणकमले कोमले कोमलापि
 श्रीराधोच्चैर्निजसुखकृते सन्नयन्ती कुचाग्रे ।

वह सूर्यदेव हम सब की रक्षा करें। कंस के भय से पिता ने
 रहस्य स्थल पर श्रीराधिका को रखा था। क्योंकि स्वमाय से वे रा-
 धिकावत्सल थे। श्री राधिका ने उस सूर्यदेव को मेघपुञ्जाकार
 देख कर श्रीकृष्ण ज्ञान से उसकी प्राप्ति के लिये भजन किया है॥८८॥

उस बृहद्वन (महावन) की हम वन्दना करते हैं। जहाँ ब्रज-
 राज ने मुरारि के आविर्भाव महोत्सव में स्वर्ण मुक्ताओं से मण्डित
 नवीन दो लक्ष गोश्रों का तथा दिव्यातिदिव्य अलङ्कार-रत्न पर्वत-
 तिलप्रस्थादि का आदर से विप्रों को दान दिया था ॥ ८९ ॥

रावल नामक वृषभानुपुर में मेरी परम प्रीति हो। जहाँ आ-
 नन्दित सुर-मुनि-नरों से कीर्त्तित कीर्त्तिदा के गर्भरूप स्त्रि से
 श्रीराधिका की जन्मरूप मणि हुई है। जो स्थान गोपी-गोप-धेनुओं
 से परिपूर्ण है ॥ ९० ॥

भीताऽप्यारादथ नहि दधत्यस्य कार्कश्य-दोषात्
 स श्रीगोष्ठे प्रथयतु सदा शेषशायी स्थितिं नः ॥ ६१ ॥
 यत्र कामसरः साक्षाद्गोपिकारमणं सरः ।
 राधामाधवयोः प्रेष्टं तद्वनं काम्यकं भजे ॥ ६२ ॥
 मल्लीकृत्य निजाः सखीः प्रियतमा गर्वेण सम्भाविता
 मल्लीभूय मदीश्वरो रसमयी मल्लत्वमृत्कण्ठ्या ।
 यस्मिन् सम्यगुपेयुषा वक्रमिदा राधा नियुद्धं मुदा ।
 कुर्वाणा मदनस्य तोषमतनोद्गारहीरकं तं भजे ॥ ६३ ॥
 आकृष्टा या कुपितहलिना लाङ्गलाग्रे या कृष्णा
 धीरा यान्ती लवणजलधौ कृष्णसम्बन्धहीना ।
 अद्यापीतृथ सकलमनुजैर्दृश्यते सैव यस्मिन्
 भक्त्या वन्देऽद्भुतमिदमहो रामघट्टप्रदेशम् ॥ ६४ ॥

वे शेषशायी श्रीगोष्ठ में हम सब की स्थिति प्रदान करें । को-
 मलाङ्गी श्रीराधिका अपने सुख के लिये स्तनाग्र में जिन के चरण-
 कमल का धारण कर फिर परम आनन्दता से स्तनों में काठिन्यता
 समझ कर भीना हो परित्याग करने की इच्छा करती हैं ॥ ६१ ॥

जहाँ साक्षात् कामसरोवर तथा गोपिकारमण सरोवर विराज-
 मान् है । उस राधामाधव के परम प्रिय काम्यकवन का हम भजन
 करते हैं ॥ ६२ ॥

उस भाण्डीरवट का हम भजन करते हैं । जहाँ रसमयी मेरी
 ईश्वरी श्रीराधिका ने गर्व के साथ निज प्रियतम सखियों को मल्ली
 (योद्धा) बना कर स्वयं मल्ली (योद्धा) बन कर यक्षरि के साथ
 युद्ध कर अतनु मदन का तोष विधान किया है ॥ ६३ ॥

अहो परम अद्भुत इस रामघाट प्रदेश की भक्ति के साथ
 वन्दना करते हैं । कृष्ण सम्बन्ध से रहित धीर नदियाँ लवण-सागर
 में मिलती हैं । परन्तु “कृष्णप्राण जमुना पेसा क्यों करेगी” इस

प्राणप्रेषवयस्य-वर्गमुदरे पापीयसोऽघासुर-
 स्यात्सयोद्धट-पावकोत्कट-विपैर्दुष्टे प्रविष्टं पुरः ।
 व्यग्रः प्रेक्ष्य स्या प्रविश्य सहसा हत्वा खलं तं वली
 यत्रैनं निजमारुह्य गुरजित् सा पातु सर्पस्थली ॥ ६५ ॥
 द्रष्टुं साक्षात् स्वपतिमहिमोद्रे कभृतकेन घात्रा
 वत्सप्राते द्रुतमपहृते वत्सपालोत्क्रे च ।
 तत्तद्रूपो हरिरथ भवन् यत्र तत्तत् प्रसूनां
 मोदं चक्रे ष्णनमपि भजे वत्सहारस्थली ताम् ॥ ६६ ॥
 वादं वत्सरुवत्सपालहृतितो जातापराधाद्भयै
 ब्रह्मा सास्त्रमपूर्वपद्यनिवैर्यस्मिन्निपत्यावना ।
 तुष्टावाद्भुतवत्सर्पं ब्रजपतेः पुत्रं मुकुन्दं मनाक्
 स्मेरं भीरुचतुर्मुखाख्यमनिशं शेषं प्रदेशं नुमः ॥ ६७ ॥

कारण से मानो हलधर ने कुपित होकर हलाप्र से यमुना का आकर्षण किया है। यहाँ यमुना जी उलटी बहती हैं। अभी भी सकल लोक-भक्ति दृष्टि से उसे देखते हैं ॥ ६४ ॥

यह सर्पस्थली मेरी रक्षा करें। जहाँ पापी अघासुर का उद्धट अग्नि की भाँति उत्कट विषों से दूषित उदर में प्राणप्रिय वयस्यों का प्रवेश देख कर अत्यन्त व्यग्र मुरारि ने क्रोधित हो स्वयं उस में प्रवेश किया तथा उस दुष्ट को मार कर निज गण की रक्षा की ॥ ६५ ॥

उस वत्सहार स्थल का हम भजन करते हैं। जहाँ ब्रह्मा जी ने निज पति श्रीहरि की महिमा-उद्रेक को देखने के लिये उत्सुक होकर वत्ससमूह तथा वत्सपालक समूह का अपहरण किया था। परचात् श्रीहरि उन उन स्वरूपों का धारण कर उन उन माताओं को आनन्दित देने लगे तथा उसी प्रकार भोजनादि किये थे ॥ ६६ ॥

यह चतुर्मुखा प्रदेश (चौमुहा) को नमस्कार करते हैं। जहाँ

गन्धव्याकुलभृङ्गसञ्चयचमूंसंघृष्टपुष्पोत्करै-
 भ्राजत्कल्पलतापलाशि-निकरैर्विभ्राजितानि स्फुटम् ।
 यानि स्फारतङ्गाग-पर्वतनदीवृन्देन राजन्त्यहो
 कृष्ण-प्रेष्ठवनानि तानि नितरां वन्दे मुहुर्द्वादश ॥ ६८ ॥
 पूर्णः प्रेमासैः सदा मुररिपोर्दासः सखा च प्रियं
 स्वप्राणाव्बुदतोऽपि तत्पदयुगं हित्वेह मासान् दश ।
 प्रीत्या यो निवसस्तदीयकथया गोष्ठं मुहुर्जावय-
 त्यायातं किल पश्य कृष्णमिति तं मूर्ध्ना वहाम्युद्धवम् ॥ ६९ ॥
 मुदा यत्र ब्रह्मा तृणनिकर-गुल्मादिषु परं
 सदा काङ्क्षन् जन्मार्पितविविधकर्मोप्यनुदिनम् ।

बार-बार घास-वस्सपालों का हरण के जात अपराध से भयभीत
 ब्रह्मा ने रोदन करते हुए पृथ्वी में पतित होकर अपूर्व पथों से अद्भु-
 त वस्सप, मजराजके पुत्र, ईषत् हास्ययुक्त मुकुन्द की स्तुति की थी ॥ ६७ ॥

उन श्रीकृष्ण के प्रिय द्वादश घनों की निरन्तर वन्दना करते हैं ।
 जो गन्ध से व्याकुल भृङ्गों से संसर्गित पुष्पों से परिव्याप्त कल्पलता
 और पलासादि घृहों से शोभायमान हैं तथा जो विस्तार तडाग-पर्वत-
 नदीगण से विराजमान हैं ॥ ६८ ॥

उन उद्धव जी को हम मस्तक में धारण करते हैं । जो सर्वदा
 प्रेम-रसों से परिपूर्ण हैं तथा जो श्रीकृष्ण के सेवक, सखा भी हैं ।
 जिन्होंने निज अर्बुद प्राणों से भी परम प्रिय श्रीकृष्ण के चरण-
 युगल का त्याग कर दश मास पर्यन्त व्रज में निवास किया तथा
 श्रीकृष्ण की वार्ता से “श्रीकृष्ण आ रहे हैं उन का दर्शन करो”
 इत्यादि प्रबोधन के द्वारा गोष्ठ को जीवित रखा है ॥ ६९ ॥

जहाँ ब्रह्मा जी ने आनन्दातिशय के चरण गुल्मादिकों में
 जन्म लेने की इच्छा की । उस व्रज में जो प्रियजन समूह दास व-

क्रमादये तत्रैव व्रजभुवि वसन्ति प्रियजना
मया ते ते वन्द्याः परमविनयात् पुण्यखचिताः ॥ १०० ॥
पुरा प्रेमोद्रे कैः प्रतिपदनवानन्दमधुरैः
कृत श्रीगान्धर्व्याच्युतचरणवर्यार्चनवलात् ।
निकामं स्वामिन्याः प्रियतरसस्तीरभुवने
वसन्ति स्फीता ये त इह मम जीवातव इमे ॥ १०१ ॥
यत्किञ्चित् रागुल्मक्रीकटमुखं गोष्ठे समस्तं हि तत्
सर्वानन्दमयं मुकुन्ददयितं लीलानुकूलं परम् ।
शास्त्रै रैव मुहुर्मुहुः स्फुटमिदं निर्गृह्यत याचत्रया
ब्रह्मादेरपि सस्पृहेण तदिदं सर्वं मया वन्द्यते ॥ १०२ ॥
भ्रमन् कच्छे कच्छे क्षितिधरपतेर्वक्रिभगतै
र्लपन् राधे कृष्णोत्पन्नवरतमुन्मत्तवदहम् ।
पतन् क्वापि क्वाप्युच्छलितनयनद्वन्द्वसलिलैः
कदा केलिस्थानं सख्यलमपि सिञ्चामि विक्लः ॥ १०३ ॥ -

रते हैं मैं क्रम से परम नम्रता के द्वारा उन सब की वन्दना करता
हूँ । ये सब परम वन्दनीय, महान् पुण्यशाली हैं ॥ १०० ॥ ।

श्रीगान्धर्व्या-गिरिधारी के चरण-कमलों की श्रेष्ठ उपासना के
बल से प्रतिपद में नवायमान आनन्द मधुर प्रेमोद्रेक के द्वारा पहले
से जो सब स्वामिनी जी के परमप्रिय सरोवर (श्रीराधाकुण्ड) के
तट भूमी में निवास कर रहे हैं, वे सब मेरे जीवनानार हैं ॥ १०१ ॥
गोष्ठ में तृण गुल्म-कीटादिक जो कुल्ल हैं, वे सब सर्वानन्द

स्वरूप, मुकुन्दप्रिय केवल लीलानुकूल विशिष्ट हैं । समस्त शास्त्र में
बार-बार इस का निर्णय हो रहा है । जिन की चाञ्छा ब्रह्मादि देव-
ताओं ने रष्टा के साथ की है । उन सब की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १०२ ॥
हाय ! कब मैं गोवर्द्धन पर्वत के तट (तरहटी) में इधर-उधर

न ब्रह्मा न च नारदो न हि हरो न प्रेमभक्तोत्तमाः
 सम्यग् ज्ञातुमिहाञ्जसार्हति तथा यस्योच्छलन्माधुरीम् ।
 किन्त्वेको बलदेव एव परितः सार्द्धं स्वमात्रा स्फुटं
 प्रेम्णाप्युद्धत एष वेत्ति नितरां किं स ब्रजो वर्यते ॥ १०४ ॥
 अन्यत्र क्षणमात्रमच्युतपुरे प्रेमाभूताम्भोनिधि-
 स्नातोऽप्यच्युतसज्जनैरपि समं नाहं वसामि क्वचित् ।
 किन्त्वत्र ब्रजवासिनामपि समं येनापि केनाप्यलं
 संलापैर्मम निर्भरः प्रतिमुहुर्वासोऽस्तु नित्यं मम ॥ १०५ ॥
 रागेण रूपमञ्जय्या रक्तीकृतमुरद्विषः ।
 गुणराधितराधायाः पादयुगलं गतिर्मम ॥ १०६ ॥

दोड़ता हुआ उन्मत्त की भाँति "श्रीरावे कृष्ण" ऐसा अन्तर्गत क-
 होता हुआ कहीं मूर्छित होकर गिर जाऊँगा तथा कहीं वा उच्छलित
 नेत्र दोनों की धाराओं से बिकल होकर केलिस्थान समूह का सिञ्चन
 करूँगा ॥ १०३ ॥

जिस की उच्छलितमाधुरी को न ब्रह्मा न नारद न हर न उत्तम
 प्रेमीभक्त सम्यग् प्रकार जानने में समर्थ होते हैं । परन्तु निज
 माता जी के साथ एक मात्र बलदेव जी सर्व प्रकार से जानते हैं ।
 प्रेम से उद्धत इस जन के द्वारा वह ब्रज क्या वर्णित हो सकता है ॥ १०४ ॥

अन्यत्र कहीं अच्युतवाम में अच्युत सज्जनों के साथ प्रेमाभूत
 सागर में निमज्जित होकर भी क्षण काल के लिये वास नहीं करूँ-
 गा । परन्तु इस ब्रज में ब्रजवासियों के साथ येन केन प्रकार से आ-
 लापादि करता हुआ नित्य प्रतिमुहुः वास करूँगा । अर्थात् ब्रज में
 मेरा वास क्षण भर के लिये विच्युति नहीं होवे ॥ १०५ ॥

गुणों से आराधित श्रीराधिका के चरण-युगल मेरी गति हों ।
 जो रूपमञ्जरी के द्वारा अनुराग से रञ्जित है ॥ १०६ ॥

इमं नियतमादराद् ब्रजविलासनाम स्तवं
सदा ब्रजजनोल्लसन्मधुरमाधुरी-चन्द्रम् ।
मुहुःकुतूहलसम्भृताः परिपठन्ति ये वल्लु तत्
समं परिकरदृढं मिथुनमत्र पश्यन्ति ते ॥ १०७ ॥

* इति श्री श्री ब्रजविलासस्तवः
॥ समाप्तः ॥

जो व्यक्ति कौतुहल से निरन्तर आदर के साथ इस “ब्रजवि-
लास नामक स्तव का जो कि ब्रजजनों की उल्लसित मधुर-माधुरी
से सुन्दर है उसका बार-बार पाठ करते हैं, वे मनोहर परिकरों के
साथ उन मिथुन युगल का दर्शन करेंगे ॥ १०७ ॥

अनुवादक—कृष्णदास ।

अथ राधाविरहः ॥

श्रीकृष्णविरहाविष्टा श्रीराधा प्रियवल्लभा ।

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति महानन्दावदद्रहः ॥ १ ॥

सुन्दरास्य कमलासितेक्ष्ण क्वासि भासि मम वल्लभ प्रिय ।

दर्शनीयमुखचन्द्रशोभया शीतल कुरु महोष्णलोचनम् ॥ २ ॥

प्राणप्रियः क्वासि मत्प्राणनाथः कृत्स्नकण्ठे गुरानन्दमूर्तिः ।

पीताम्बरः सुन्दराङ्गाङ्गदीप्तिः श्रीसामरोज्यलौक्यशोभाभरश्च ॥ ३ ॥

लासन्मौलिमालालिराजानुवाहुर्मदोन्मत्तगन्धद्रुतथीधरश्च ।

चलन्पूरे ममैवात्कारयुक्तो जयज्जानुजंघाल्लसद्यौवनश्च ॥ ४ ॥

त्वदर्शनेनैव मे जीवनं स्याद्वाक्यामृतेनैव कर्णातिरुतिः ।

एवं वदन्ती धरन्ती च कृष्णे रतिविह्वलासील्लसन्ती वने सा ॥ ५ ॥

प्राणनाथ मधुरानन माधव माधुरीधुर घराद्भुत माधव ।

श्यामसुन्दर मदोन्मद माधव परम मां मदनमोहन माधव ॥ ६ ॥

माधवस्य विह्वल्यथातुरा माधवेति मुहुराह राधिका ।

तन्मनस्कम्बुमेव माधवो राधिकैकविरहातुरोऽभवत् ॥ ७ ॥

नित्यानन्दस्य कृष्णस्य घ्यायन्ती मुरापङ्कजम् ।

तादात्म्यं संगता तस्मिन् संशति स्म सु विस्मिता ॥ ८ ॥
(केनचित्)

अथ कृष्णविरहः ॥

राधिकातिविरहार्दितो मुहुर्माधवो वदति राधिके प्रिये !

कुञ्जपुञ्जवनवीथिषु भ्रमन् विह्वलो भवति भाति तन्मना ॥ १ ॥

विस्मृतं च कलवेणुवादनं भ्रूविलासललनाप्रकर्षणम् ।

सस्मितं च समेदक्ष्णं मुदा मदगजेन्द्रगमनं च लीलया ॥ २ ॥

वैपरीत्यवनदामदामिनोवस्त्रमौलिमणिवस्त्रभूषणः ।

विस्मृतं व तनुगन्धलेपनं दर्पणे च मुखदर्शनं मुदा ॥ ३ ॥

राधिकेऽसि मम नेत्ररूपिणी राधिकेऽसि मम प्राणवल्लभा ।

राधिकेऽसि मम कंठभूषणं क्वासि भागि मम मित्रवल्लभा ॥ ४ ॥

दर्शनं देहि मे राधिके श्रीमति ! स्पर्शनं ते कदा संकरिष्याम्यहम् ।

दीनदीनाय मे प्रेमपूर्णक्ष्णं प्रोहसत्सुदरास्येन्दुभां दर्शय ॥ ५ ॥

उल्लससि नैव मे त्वां विना मधुरमोहनी मूर्तिरसि रसवलितलोचने ।

मानसं कुसुमशरविद्धमवुना प्रिये चन्द्रचन्दन सुरभि-

कंजजलमौषायदम् ॥ ६ ॥

संयतोऽतिकुञ्जपुञ्जान्तरशारेन्दुर्मे मुखं प्रियाया हरिरीपदैक्षत् ।

सगद्गदं कंजजलाश्रुलोचनं तदाह्वदानन्दमहोदयोऽभवत् ॥ ७ ॥

ततः पुनः प्राणपतेर्मुखाभ्युज समीक्ष्य राधा मिलनोत्सुकाऽभवत् ।

परस्परं प्रीतिरवद्धं तादृता तयोर्महानन्दकदम्बसंमृतोः ॥ ८ ॥

कुञ्जान्तरगतौ तो द्वौ दम्पती राधिका हरी ।

विश्लेषविरहौ यातस्तयोरारम्भैकप्राणयोः ॥ ९ ॥

दंपती विरहसंपदो मया कंपतो विरचिता उपासकाः ।

यः पंडेद्विरहपूर्वकं स्तव तन्मयो भवति निश्चितं तयोः ॥ १० ॥

इति श्रीराधाकृष्णकुञ्जान्तरविश्लेषविरहमिलनमौतुकं समाप्तम् ।

(केनचित्)